Impact Factor (IIFS): 6.875 ISSN: 2394-0654

Published in accordance with the new guidelines of the UGC

SHODH KHANIJ

January-March 2026 Volume: 12 Issue: 45

A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal
www.muditeducation.com/ShodhKhanij

Impact Factor (IIFS): 6.875 ISSN: 2394-0654

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

UGC Approved Journal No. 63693 (old)

शोध खनिज Shodh Khanij

A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal

जनवरी-मार्च 2026 वर्ष - 12 अंक - 45

प्रधान संपादक

डॉ. अमृत कुमार

जनसंचार विभाग, झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय

चेरी-मनातू, कामरे, रांची (झारखंड) पिन – 835 222

सह-संपादक

डॉ. पंकज कुमार सिंह

मुदित शिक्षा संस्था, त्रिमूर्ति नगर

वर्धा (महाराष्ट्र). पिन– 442 001

संपर्क

बी. 6, बालाजी अपार्टमेंट, फ़ूटा रोड 41

मंदिर वाली गली, संत नगर, बुरारी, दिल्ली. पिन – 110 084

Contact: **9823696685** **shodhkhanij@muditeducation.com**

www.muditeducation.com/ShodhKhanij

© शोध खनिज में व्यक्त विचार और सर्वाधिकार लेखकों के अपने हैं। प्रकाशित विचारों से संपादक व संपादक-मंडल की सहमति अनिवार्य नहीं है। उक्त सभी पद अवैतनिक हैं। किसी भी वाद-विवाद का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

स्वामित्व, प्रकाशक: अमृत कुमार, एल 1, ए 19, मोहन गार्डन, उत्तम नगर दिल्ली द्वारा प्रकाशित और मुद्रक: मुदित शिक्षा संस्था, वर्धा. प्रधान संपादक : अमृत कुमार

संपादक मंडल

सलाहकार समिति

प्रो. (डॉ.) अनिल कुमार राय
कुलपति
पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय
सीकर (राजस्थान) पिन 332024

प्रो. (डॉ.) मोहम्मद फरियाद
प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग
मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी
गच्चीबौली – हैदराबाद. पिन-500032

प्रो. (डॉ.) संजय सिंह बघेल
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन - 110021

श्री अजीत कुमार
एसोशिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
आत्मा राम सनातन धर्म महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन - 110021

डॉ. बच्चा बाबू
एसोशिएट प्रो., यूनिवर्सिटी स्कूल ऑफ मास कम्युनिकेशन
गुरु गोबिंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय, दिल्ली - 110078

पुनरीक्षण समिति

डॉ. इन्दु दत्ता
पी.जी.डी.ए.वी. महाविद्यालय (प्रातः)
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली - 110065

डॉ. गजेंद्र प्रताप सिंह
सहायक प्रोफेसर
स्कूल ऑफ़ मीडिया & कम्युनिकेशन स्टडीज़
गलगोटिया विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.) - 203201

पुनरीक्षण समिति

डॉ. अमिता
एसोशिएट प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर
(छतिसगढ़) पिन 495009

डॉ. उमेश तिवारी
सहायक प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और
पुरातत्व विभाग, तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार) पिन -812007

डॉ. अभिषेक सिंह
प्रभारी, राजनीति विज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय,
वर्धा (महाराष्ट्र)- 442001

डॉ. विवेक विश्वास
सहायक प्रोफेसर, जनसंचार विभाग
महाराजा अग्रसेन महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली. पिन 110096

डॉ. धीरेन्द्र कुमार राय
सहायक प्रोफेसर, पत्रकारिता एवं जनसंप्रेषण विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ. प्र.) - 221005

डॉ. रुद्रेश नारायण मिश्र
सहायक प्रोफेसर, हिंदी पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
श्री गुरु नानक देव खालसा कॉलेज
(दिल्ली विश्वविद्यालय) दिल्ली. पिन 110005

डॉ. उमेश कुमार सिंह
वर्धा समाज कार्य संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र). पिन-442001

स्वामित्व, प्रकाशक: अमृत कुमार, एल 1, ए 19, मोहन गार्डन, उत्तम नगर दिल्ली द्वारा प्रकाशित और मुद्रक: मुदित शिक्षा संस्था, वर्धा. प्रधान संपादक : अमृत कुमार

संपादकीय

'शोध खनिज' के जनवरी-मार्च 2026 अंक में आपका हार्दिक स्वागत है! यह अंक भारतीय ज्ञान परंपरा की गहनता, सामाजिक-राजनीतिक विमर्शों की प्रासंगिकता, सांस्कृतिक विविधताओं की समृद्धि और शिक्षा के परिवर्तनकारी आयामों को समेटे हुए एक बहुआयामी यात्रा प्रस्तुत करता है। इस अंक में प्रकाशित शोध पत्र, अपने विविध विषयों और गहन विश्लेषणों के माध्यम से, विद्वानों के ज्ञानोदय और समकालीन समाज की जटिलताओं को समझने की हमारी प्रतिबद्धता को दर्शाते हैं।

इस अंक का प्रारंभ मनोज भाटी और डॉ. अखिलेश कुमार सिंह के "तालिबान शासन के अधीन अफगान महिलाओं के मानवाधिकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" से होता है। यह शोध पत्र वर्तमान समय के सबसे संवेदनशील मुद्दों में से एक पर प्रकाश डालता है, जहाँ एक दमनकारी शासन के तहत महिलाओं के मौलिक अधिकारों का हनन हो रहा है। यह लेख उन चुनौतियों और संघर्षों का एक मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है जिनका सामना अफगान महिलाएँ कर रही हैं, और मानवाधिकारों के वैश्विक एजेंडे पर एक महत्वपूर्ण विमर्श को जन्म देता है।

संस्कृति और समाज के अध्ययन को आगे बढ़ाते हुए, डॉ. शिव कुमार का "सोनभद्र की बैगा जनजाति में पारंपरिक नृचिकित्सा पद्धति : वैयक्तिक अध्ययन" एक अनमोल अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। यह अध्ययन हमें बैगा जनजाति की समृद्ध पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों से परिचित कराता है, जो न केवल उनके सांस्कृतिक ताने-बाने का हिस्सा हैं, बल्कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के लिए भी महत्वपूर्ण ज्ञान का स्रोत हो सकती हैं।

साहित्यिक विमर्श के क्षेत्र में, डॉ. नीरू गर्ग का "Retelling Myths, Rewriting Identities: Queer Voices and Resistance in Devdutt Pattanaik's Work" एक अत्यंत प्रासंगिक विषय को उठाता है। यह पत्र देवदत्त पटनायक के कार्यों में क्वीयर आवाजों के पुनर्कथन और प्रतिरोध के माध्यम से पहचान निर्माण की पड़ताल करता है, जो साहित्य और समाज में समावेशिता की बढ़ती आवश्यकता को रेखांकित करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में, दिव्या का "Multilingualism in Education in Context of NEP 2020: A Review" और डॉ. चित्रालेखा साहू एवं प्रो. चित्तरंजन दास अधिकारी का "NEP 2020: A Transformative Vision for Holistic and Inclusive Education in India" राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के महत्वपूर्ण आयामों पर प्रकाश डालते हैं। ये पत्र बहुभाषी शिक्षा के महत्व और NEP 2020 द्वारा प्रस्तुत समग्र तथा समावेशी शिक्षा के परिवर्तनकारी दृष्टिकोण का गहन विश्लेषण करते हैं, जो भारत के शैक्षिक भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में उभर रहा है।

डॉ. संगीता का "चेतना-विज्ञान और भारतीय ज्ञान परंपरा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समावेसी दृष्टि" एक और महत्वपूर्ण आयाम जोड़ता है, जो चेतना-विज्ञान को भारतीय ज्ञान परंपरा से जोड़ते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति के समावेशी दृष्टिकोण को रेखांकित करता है। यह पत्र ज्ञान की पारंपरिक धाराओं को आधुनिक शिक्षा में एकीकृत करने की आवश्यकता पर बल देता है। समकालीन राजनीति और समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में, दत्तात्रय निवृत्ती रावण और डॉ. अभिषेक सिंह का "महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" भारतीय संघवाद और चुनावी राजनीति की जटिलताओं को समझने में सहायक है। यह अध्ययन क्षेत्रीय दलों के बढ़ते महत्व और राष्ट्रीय राजनीति पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करता है।

इतिहास और साहित्य के संगम पर, उमाकांत यादव का "1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण का विकास" भारतीय नवजागरण के साहित्यिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रकाश डालता है। यह पत्र बताता है कि कैसे 1857 के स्वतंत्रता संग्राम ने हिन्दी साहित्य के विकास को प्रेरित किया। इसी प्रकार, डॉ. बृजेश रावत और शोभित कुमार पाण्डेय का "उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य का उद्भव और विकास (प्रारंभ से गुप्तकाल तक)" एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक

अध्ययन है, जो प्राचीन भारत की स्थापत्य कला और सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाता है। डॉ. रेनू देवी का "हुमायूँनामा के ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में विश्लेषण : एक अध्ययन" भी इतिहास के एक महत्वपूर्ण स्रोत का मूल्यांकन करता है।

डॉ. कमला चौधरी अपने "जनचेतना के कवि नागार्जुन" के माध्यम से हिंदी साहित्य के एक महान कवि की सामाजिक चेतना और उनके काव्य की प्रासंगिकता को उजागर करते हैं। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में विस्तार करते हुए, डॉ. रीता अनिल कुमार का "बैगा जनजाति में मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ" एक महत्वपूर्ण सामाजिक-नृवंशविज्ञान अध्ययन प्रस्तुत करता है, जो आदिवासी समुदायों की सांस्कृतिक प्रथाओं और विश्वासों पर प्रकाश डालता है। डॉ. अर्चना त्रिपाठी का "नदियाँ जीवन का आधार" पर्यावरणीय चेतना और नदियों के महत्व पर एक आवश्यक विमर्श प्रस्तुत करता है।

राजनीतिक इतिहास के दृष्टिकोण से, सन्तोष कुमार सिंह का "प्रधानमंत्री के पद पर चन्द्रशेखर की भूमिका : एक अवलोकन" भारत के राजनीतिक इतिहास के एक महत्वपूर्ण दौर का मूल्यांकन करता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, शेरीन शाहिद और एस. जयकुमार का "Floristic Diversity and Economic Significance of Mangroves and Associated Plants in Shoal Bay, South Andaman, India" अंडमान के मैंग्रोव पारिस्थितिकी तंत्र की जैव विविधता और आर्थिक महत्व का विस्तृत वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। मयंक कुमार और डॉ. गोपाल राम का "नवीकरणीय ऊर्जा का आर्थिक विकास पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" आज के युग की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक, यानी सतत विकास और नवीकरणीय ऊर्जा के बीच संबंध की पड़ताल करता है। प्रवीण मिंज का "Role of Commerce in Indian Knowledge System (IKS): A Comprehensive Study with Contemporary Perspectives" भारतीय ज्ञान प्रणाली में वाणिज्य की भूमिका का एक व्यापक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान के विषय में, रितेश कुमार बंजारे और डॉ. अजय कुमार सिंह का "पाण्डो जनजाति कि सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान" हमें एक और महत्वपूर्ण आदिवासी समुदाय की जीवनशैली से परिचित कराता है। डॉ. ए. शशांक राव का "बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्था का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन" पर्यटन के माध्यम से आर्थिक विकास के एक व्यावहारिक मॉडल का विश्लेषण करता है। स्त्री विमर्श और सामाजिक यथार्थवाद के धरातल पर, डॉ. अनिता कुमारी ठाकुर का "एक पत्नी के नोट्स : भारतीय दाम्पत्य जीवन का यथार्थ" भारतीय वैवाहिक जीवन के अनछुए पहलुओं को सामने लाता है। रजिता दूबे और प्रो. यशवंत कुमार वीरोदय का "पोस्ट बॉक्स नं.203- नाला सोपारा : किन्नर समाज के प्रति मानवीय संवेदना" समाज के हाशिए पर पड़े किन्नर समुदाय के प्रति संवेदनशीलता और मानवीय सरोकारों की आवश्यकता पर बल देता है। डॉ. स्वाती सुरेश खळेकर का "डॉ. मधु धवन के नाटक "आज की पुकार" में समकालीन यथार्थ का चित्रण" आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य के यथार्थवादी चित्रण का विश्लेषण करता है। शरद कुमार नेताम का "विलियम शेक्सपियर और मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन" दो महान साहित्यकारों की कृतियों में सामाजिक यथार्थवाद की तुलनात्मक पड़ताल करता है। उषा का "अनीता भारती की कहानियों में दलित नारी अस्मिता और नारी संघर्ष" दलित साहित्य और नारी विमर्श के महत्वपूर्ण क्षेत्र को संबोधित करता है।

इसके अतिरिक्त, प्रभाकर प्रकाश और प्रो. वज्रांग प्रताप केसरी का "रामचरितमानस में लोक संस्कृति और लोक संघर्ष" भारतीय महाकाव्यों में निहित लोक संस्कृति और संघर्षों की पड़ताल करता है। डॉ. चाँदनी का "समकालीन समाज में राज्य, सत्ता और शासनशीलता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण" आधुनिक समाज में सत्ता और शासन के ताने-बाने को समझने का एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। डॉ. मयांगलंबम सदनंदा सिंह का "Wari Leeba Tradition in The Cultural Revival Among Meiteis of Manipur" मणिपुर के मैतेई समुदाय की सांस्कृतिक पुनरुद्धार की एक विशिष्ट परंपरा का अध्ययन है। डॉ. तेजराम पाल का "वसुधैवकुटुम्बकम् से अभिप्रेरित लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर का शासन" भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों और उनके व्यावहारिक अनुप्रयोग का एक प्रेरणादायक उदाहरण प्रस्तुत करता है।

UGC Approved Journal No. 63693 (old) ISSN: 2394-0654
Impact Factor (IIFS): 6.875 यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

शोध खनिज Shodh Khanij

A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal

जनवरी-मार्च 2026 वर्ष (Vol.): 12 अंक (Issue): 45

अनुक्रम

संपादकीय पृष्ठ संख्या

- तालिबान शासन के अधीन अफगान महिलाओं के मानवाधिकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **_मनोज भाटी _डॉ. अखिलेश कुमार सिंह** 01-10
- सोनभद्र की बैगा जनजाति में पारंपरिक नृचिकित्सा पद्धति : वैयक्तिक अध्ययन **_डॉ. शिव कुमार** 11-17
- Retelling Myths, Rewriting Identities: Queer Voices and Resistance in Devdutt Pattanaik's Work **_Dr. Neeru varshney** 18-25
- Multilingualism in Education in Context of NEP 2020: A Review **_Divya** 26-31
- NEP 2020: A Transformative Vision for Holistic and Inclusive Education in India **_Dr. Chitralekha Sahu _Prof. Chittaranjan Das Adhikary** 32-39
- जनचेतना के कवि नागार्जुन **_डॉ. कमला चौधरी** 40-44
- चेतना-विज्ञान और भारतीय ज्ञान परंपरा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समावेसी दृष्टि **_डॉ. संगीता** 45-48
- महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन **_दत्तात्रय निवृत्ती रावण _डॉ. अभिषेक सिंह** 49-56
- 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण का विकास **_उमाकांत यादव** 57-63
- सामान्य प्रवृत्तियों का शैक्षिक महत्व **_डॉ. रवेन्द्र राजपूत** 64-73
- बैगा जनजाति में मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ **_डॉ. रीता अनिल कुमार** 74-78
- नदियाँ जीवन का आधार **_डॉ. अर्चना त्रिपाठी** 79-81
- प्रधानमंत्री के पद पर चन्द्रशेखर की भूमिका : एक अवलोकन **_सन्तोष कुमार सिंह** 82-85
- हुमायूँनामा के ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में विश्लेषण : एक अध्ययन **_डॉ. रेनू देवी** 86-89
- Floristic Diversity and Economic Significance of Mangroves and Associated Plants in Shoal Bay, South Andaman, India **_Shareen Shahid _S. Jayakumar** 90-105
- पाण्डो जनजाति कि सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान **_रितेश कुमार बंजारे _डॉ. अजय कुमार सिंह** 106-108

UGC Approved Journal No. 63693 (old) ISSN: 2394-0654
Impact Factor (IIFS): 6.875 यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

शोध खनिज Shodh Khanij

A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal

जनवरी-मार्च 2026 वर्ष (Vol.): 12 अंक (Issue): 45

- बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्था का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन _**डॉ. ए. शशांक राव** 109-113
- उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य का उद्भव और विकास (प्रारंभ से गुप्तकाल तक) _**डॉ. बृजेश रावत _शोभित कुमार पाण्डेय** 114-120
- एक पत्नी के नोट्स : भारतीय दाम्पत्य जीवन का यथार्थ _**डॉ. अनिता कुमारी ठाकुर** 121-124
- पोस्ट बॉक्स नं.203- नाला सोपारा : किन्नर समाज के प्रति मानवीय संवेदना _**रजिता दूबे _प्रो.यशवंत कुमार वीरोदय** 125-128
- डॉ. मधु धवन के नाटक "आज की पुकार" में समकालीन यथार्थ का चित्रण _**डॉ. स्वाती सुरेश खळेकर** 129-131
- रामचरितमानस में लोक संस्कृति और लोक संघर्ष _**प्रभाकर प्रकाश _प्रो. वज्रांग प्रताप केसरी** 132-136
- समकालीन समाज में राज्य, सत्ता और शासनशीलता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण _**डॉ. चाँदनी** 137-144
- Wari Leeba Tradition in The Cultural Revival Among Meiteis of Manipur _**Dr. Mayanglambam Sadananda Singh** 145-152
- नवीकरणीय ऊर्जा का आर्थिक विकास पर प्रभाव : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन _**मयंक कुमार _डॉ. गोपाल राम** 153-156
- Role of Commerce in Indian Knowledge System (IKS): A Comprehensive Study with Contemporary Perspectives _**Praveen Minj** 157-163
- हिंदी सिनेमा का स्वरूप और विकास _**डॉ. सिद्धेश्वर वि. गायकवाड** 164-168
- अनीता भारती की कहानियों में दलित नारी अस्मिता और नारी संघर्ष _**उषा** 169-179
- विलियम शेक्सपियर और मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन _**शरद कुमार नेताम** 180-185
- वसुधैवकुटुम्बकम् से अभिप्रेरित लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर का शासन _**डॉ. तेजराम पाल** 186-190
- NOTES FOR AUTHORS

तालिबान शासन के अधीन अफगान महिलाओं के मानवाधिकार: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

(Afghan Women's Human Rights under the Taliban Regime: An Analytical Study)

मनोज भाटी* **डॉ. अखिलेश कुमार सिंह†**
bhatimanoj96@gmail.com **drakhilesh@madhavuniversity.edu.in**

सारांश (Abstract)

अगस्त 2021, अफगानिस्तान में तालिबान के पुनः सत्ता में वापसी के पश्चात् महिलाओं और किशोरियों के मानवाधिकारों की स्थिति को लेकर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गंभीर चिंता का प्रश्न बना हुआ है। जैसा कि विदित है पूर्ववर्ती तालिबान शासन (1996–2001) महिलाओं के विरुद्ध कठोर, दमनकारी तथा अमानवीय नीतियों के क्रियान्वयन के लिए जिम्मेवार रहा है। वर्ष 2021 के पश्चात् तालिबान द्वारा सत्ता पर पुनः नियंत्रण स्थापित किए जाने के साथ ही महिलाओं के अधिकारों में तीव्र और व्यापक गिरावट देखी गई है। शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक सहभागिता, आवागमन तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जैसे मूलभूत क्षेत्रों में यह विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है।

*यह शोध-पत्र तालिबान शासन के अंतर्गत अफगानी महिलाओं के मानवाधिकारों की स्थिति पर एक समालोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि तालिबान की नीतियाँ किस प्रकार अफगानिस्तान द्वारा अनुमोदित प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों; विशेष रूप से महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर अभिसमय (Convention on the Elimination of All Forms of Discrimination against Women – **CEDAW**), नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र (International Covenant on Civil and Political Rights – **ICCPR**), आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रतिज्ञापत्र (International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights – **ICESCR**), बाल अधिकारों पर अभिसमय (Convention on the Rights of the Child – **CRC**) तथा यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार अथवा दंड के विरुद्ध अभिसमय (Convention against Torture and Other Cruel, Inhuman or Degrading Treatment or Punishment – **CAT**) आदि प्रावधानों के प्रतिकूल हैं। यह अध्ययन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना, तालिबान की वैचारिक पृष्ठभूमि तथा समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अफगानी महिलाओं की स्थिति का मूल्यांकन करता है। अंततः शोध-पत्र अफगान महिलाओं और बालिकाओं की वर्तमान दुर्दशा को कम करने हेतु व्यावहारिक, नीतिगत एवं मानवाधिकार-आधारित सिफारिशें भी प्रस्तुत करता है।*

मुख्य शब्द (Keywords):

तालिबान, अफगान महिलाएं, मानवाधिकार, लैंगिक भेदभाव, अंतरराष्ट्रीय कानून, CEDAW, अफगानिस्तान।

---

* **शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय, माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही, राजस्थान – 307026**

† **शोध निर्देशक, सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान संकाय माधव विश्वविद्यालय, पिण्डवाड़ा, सिरोही, राजस्थान – 307026**

1. प्रस्तावना (Introduction)

अफगानिस्तान में तालिबान का सत्ता में पुनरागमन न केवल एक राजनीतिक परिवर्तन था, बल्कि यह परिवर्तन महिलाओं और बालिकाओं के जीवन में गंभीर मानवीय संकट का संकेत भी था (Human Rights Watch, 2022)। अगस्त 2021 में अमेरिकी और नाटो सेनाओं की वापसी के पश्चात् तालिबान ने अत्यंत अल्प अवधि में काबुल सहित पूरे देश पर नियंत्रण स्थापित कर लिया, जिसने राज्य की पंगु सुरक्षा-संरचना और कमजोर शासन तंत्र को उजागर किया (Maizland, 2022)। इस परिवर्तन ने 1990 के दशक की उन भयावह स्मृतियों को पुनर्जीवित कर दिया, जब तालिबान शासन के दौरान महिलाओं को लगभग पूर्णतः सार्वजनिक जीवन से प्रतिबंधित और बहिष्कृत कर दिया गया था (Schulz & Schulz, 1999; Skaine, 2010)।

तालिबान शासन के दौरान महिलाओं एवं किशोरियों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी जैसे बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा गया। उन्हें बिना पुरुष अभिभावक (महाम – Mahram)[‡] के घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी, सार्वजनिक स्थानों पर ड्रेस कोड संबंधी नियम लागू थे और जिनकी अवहेलना करने पर कठोर सार्वजनिक दंड दिए जाते थे (Amnesty International, 1999; Cole, 2003)। 2021 के पश्चात् तालिबान ने यह दावा किया कि उनका शासन पहले की तुलना में अधिक उदार, मानवीय और आधुनिक होगा, किंतु व्यवहार में लागू की गई नीतियों और प्रशासनिक निर्णयों ने इन दावों को खोखला सिद्ध किया है (Graham-Harrison, 2021; UN Women, 2021)। अफगानिस्तान अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून का एक पक्षकार राज्य है और उसने महिलाओं के अधिकारों से संबंधित अनेक संधियों; विशेषकर CEDAW को अनुमोदित किया है, जिनके अंतर्गत राज्य पर यह दायित्व है कि वह महिलाओं को विधि के समक्ष समानता, शिक्षा, रोजगार और गरिमापूर्ण जीवन जीने को सुनिश्चित करे (Farhoumand-Sims, 2009; Belkner, 2011)। यद्यपि तालिबान को अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त सरकार नहीं कहा जा सकता, फिर भी *de facto* (जो स्थिति कानूनन घोषित न हो, लेकिन व्यवहार में मौजूद हो) सत्ता होने के कारण वह अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दायित्वों से मुक्त नहीं हो जाता है (UN Human Rights Council, 2022)।

इस शोध-पत्र का केंद्रीय प्रश्न यह है कि तालिबान शासन के अधीन अफगानी महिलाओं और बालिकाओं के मानवाधिकारों का भविष्य क्या है? यह अध्ययन विश्लेषित करता है कि तालिबान की नीतियाँ किस प्रकार महिलाओं के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करती हैं और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार व्यवस्था के समक्ष कौन-कौन सी कानूनी, नैतिक और संस्थागत चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं।

2. अफगानी महिलाएं: पृष्ठभूमि (1920–1996)

अफगानी महिलाओं के अधिकारों का इतिहास अत्यंत उतार-चढ़ाव से भरा रहा है। विभिन्न राजनीतिक शासनकालों में महिलाओं की स्थिति नेतृत्व एवं भू-राजनीतिक परिस्थितियाँ धार्मिक व्याख्याओं और सामाजिक संरचनाओं के अनुसार बदलती रही हैं (Ahmed-Ghosh, 2003; English, 2013)। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, राजा अमानुल्लाह खान (1919–1929) के शासनकाल को अफगानी महिलाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण सुधारवादी युग माना जाता है। इस अवधि में महिलाओं की शिक्षा को प्रोत्साहन मिला, बहुविवाह पर रोक लगाई गई और महिलाओं को सार्वजनिक जीवन में भागीदारी के अवसर प्रदान किए गए (Kandiyoti, 2007)। किंतु इन सुधारों का पारंपरिक और धार्मिक नेतृत्व द्वारा तीव्र विरोध हुआ, जिसके परिणामस्वरूप राजा अमानुल्लाह को सत्ता छोड़नी पड़ी (Suhrke, 2007)।

1950 और 1960 के दशक में अफगानिस्तान ने एक सीमित किंतु महत्त्वपूर्ण आधुनिकीकरण का अनुभव किया। 1964 के संविधान ने पुरुषों और महिलाओं के बीच विधिक समानता की घोषणा की और महिलाओं को मतदान तथा शिक्षा का अधिकार प्रदान किया (Constitution of Afghanistan, 1964; Fleming, 2004)। इस काल में महिलाएं चिकित्सा, शिक्षा, प्रशासन और न्यायपालिका जैसे क्षेत्रों में सक्रिय रूप से कार्यरत थीं (Forooqi, 2018)। 1970 के दशक में दाऊद

[‡] महाम (Mahram) एक इस्लामी कानूनी–धार्मिक अवधारणा है। महाम (Mahram) इस्लामी कानून में वह नजदीकी पुरुष रिश्तेदार होता है, जिससे विवाह निषिद्ध होता है और उसकी उपस्थिति में महिला की सामाजिक गतिविधियों को धार्मिक रूप से वैध माना जाता है।

खान और बाद में साम्यवादी शासन के दौरान महिलाओं की शिक्षा और रोजगार में और वृद्धि हुई। यद्यपि इस दौर में राजनीतिक अस्थिरता और हिंसा भी बढ़ी, फिर भी महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र में औपचारिक समानता प्राप्त थी (Middleton, 2000; Roshan, 2004)। सोवियत संघ की वापसी के बाद 1990 के दशक में अफगानिस्तान में आंतरिक कलह और गृहयुद्ध की स्थिति बन गई थी। परिणामस्वरूप, अफगानिस्तान की राजनीति में अस्थिरता, मुजाहिदीन गुटों के बीच संघर्ष, जातीय विभाजन और सत्ता संघर्ष चरम पर था, जिसने राज्य के शासन तंत्र की तह खोल कर रख दी (Bhatia, 2007; Schetter, 2016)। इसी अराजकता और अस्थिरता की पृष्ठभूमि में तालिबान का उदय हुआ, जिसने स्वयं को 'कानून और व्यवस्था' स्थापित करने वाली शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया (Maley, 2002; Rashid, 1999)।

3. अफगान समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक जटिलताएँ

अफगानिस्तान एक बहु-जातीय, बहुभाषा भाषी और धार्मिक रूप से विविधता पूर्ण समाज है, जिसमें पश्तून, ताजिक, हज़ारा, उज़्बेक और अन्य जातीय समूहों की अपनी-अपनी सांस्कृतिक परंपराएँ और सामाजिक संरचनाएँ हैं, जिन्होंने ऐतिहासिक रूप से अफगानी राजनीति और समाज को आकार दिया है (Schetter, 2016; Rashid, 1999)। इन विविधताओं ने जहाँ समाज को सांस्कृतिक रूप से समृद्ध किया है, वहीं सत्ता-संघर्ष, राजनीतिक अस्थिरता और जातीय टकरावों को भी जन्म दिया है (Bhatia, 2007; Maley, 2002)। अफगान समाज में पितृसत्तात्मक संरचना गहराई से जड़ें जमाए हुए है। पारंपरिक सामाजिक मान्यताओं के अनुसार महिलाओं की भूमिका मुख्यतः घरेलू कार्यों तक ही सीमित मानी जाती रही है और सार्वजनिक जीवन में उनकी भागीदारी को नियंत्रित किया गया है (Ahmed-Ghosh, 2003; Kandiyoti, 2007)। शिक्षा, विवाह, संपत्ति और सार्वजनिक जीवन से संबंधित निर्णयों में महिलाओं की स्वायत्तता ऐतिहासिक रूप से सीमित रही है, विशेषकर ग्रामीण और जनजातीय समाजों में (Skaine, 2010; Suhrke, 2007)।

तालिबानियों ने सांस्कृतिक और धार्मिक तत्त्वों की एक कट्टर और संकीर्ण व्याख्या को अपनाया है, उन्होंने इस्लाम की संकुचित व्याख्या को सामाजिक नियंत्रण के उपकरण के रूप में प्रयोग किया, जिसके परिणामस्वरूप महिलाओं के अधिकारों पर व्यापक और संस्थागत प्रतिबंध लगाए गए हैं (Cole, 2003; Borthakur & Kotokey, 2020)। यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि तालिबान की नीतियाँ न तो इस्लाम की सार्वभौमिक व्याख्याओं का प्रतिनिधित्व करती हैं और न ही अन्य मुस्लिम देशों की सामाजिक-कानूनी व्यवस्थाओं के अनुरूप हैं, जहाँ महिलाओं को शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक जीवन में सहभागिता के अधिकार प्राप्त हैं (Al-Tayeb, 2022; Khan, 2022)।

4. तालिबान की उत्पत्ति और वैचारिक आधार

तालिबानी वैचारिकी का उदय 1990 के दशक की शुरुआत में हुआ, तब अफगानिस्तान गृहयुद्ध, व्यापक भ्रष्टाचार और सत्ता संघर्ष से जूझ रहा था। परिणामस्वरूप, राज्य के संस्थाओं की निर्बलता सामने आ चुकी थीं और सुरक्षा तथा कानून-व्यवस्था लगभग ध्वस्त हो गई थी (Rashid, 1999; Maley, 2002)। तालिबान से जुड़े अधिकांश सदस्य पश्तून नव युवक थे, जिनकी शिक्षा-दीक्षा मदरसों में हुई थी, इन्होंने स्वयं को नैतिक शुद्धता, सामाजिक अनुशासन और इस्लामी शासन के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया (Roy, 2004; Abbas, 2014)। तालिबानी विचारधारा धार्मिक कट्टरता, जनजातीय परंपराओं और पितृसत्तात्मक मूल्यों का मिश्रण है, इन्होंने शरिया कानून की एक अत्यंत कठोर, संकीर्ण और चयनात्मक व्याख्या को लागू किया, जिसमें महिलाओं की स्वतंत्रता और सार्वजनिक उपस्थिति को 'नैतिक पतन' के रूप में देखा जाता था (Cole, 2003; Borthakur & Kotokey, 2020)। तालिबानी वैचारिक दृष्टिकोण के अनुसार, महिलाओं की भूमिका को मुख्यतः घरेलू कार्यों तक सीमित माना गया और उन्हें सामाजिक नियंत्रण का विषय बना दिया गया (Kandiyoti, 2007)।

1996 से 2001 के बीच तालिबान शासन ने महिलाओं के विरुद्ध जो नीतियाँ अपनाईं, इसने अफगानिस्तान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग कर दिया। इस अवधि में महिलाओं की सार्वजनिक उपस्थिति को लगभग समाप्त कर दिया गया। साथ ही इनके शिक्षा ग्रहण करने और रोजगार प्राप्त करने को पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया गया, जो कि महिलाओं और किशोरियों के मानवाधिकारों का व्यवस्थागत तथा संस्थागत उल्लंघन था (Schulz & Schulz, 1999; Skaine, 2010)।

सन् 2021 में तालिबान के पुनरागमन के साथ यहीं वैचारिक ढाँचा और शासन-पद्धति पुनः प्रकट हो कर सामने आई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि तालिबान की मूल सोच में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है (Human Rights Watch, 2022; Amnesty International, 2022)।

5. राजनीतिक और संवैधानिक व्यवस्था (2001–2021) के अंतर्गत् अफगान महिलाओं की स्थिति

सन् 2001 में तालिबान शासन के पतन के बाद अफगानिस्तान में एक नए राजनीतिक और संवैधानिक परिवर्तन की शुरुआत हुई। अमेरिकी नेतृत्व में अंतरराष्ट्रीय गठबंधन द्वारा तालिबान को सत्ता से बेदखल करने के पश्चात् अफगानी समाज के पुनर्निर्माण (*Nation-building*) की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिसमें महिलाओं के अधिकारों को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया (Maley, 2008; Suhrke, 2011)। यह काल अफगानी महिलाओं और किशोरियों के लिए आशा, अवसर और सशक्तिकरण का प्रतीक माना गया (Kandiyoti, 2007)। वर्ष 2003 में अफगानिस्तान ने महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन संबंधी अभिसमय (CEDAW) को अनुमोदित किया। इसके पश्चात् 2004 में नया संविधान लागू किया गया, जिसमें पुरुषों और महिलाओं के बीच विधिक समानता को स्पष्ट रूप से स्वीकार्यता दी गई (Farhoumand-Sims, 2009; Belkner, 2011)। संविधान के अनुच्छेद 22 में लैंगिक भेदभाव को निषिद्ध किया गया तथा अनुच्छेद 43 और 44 के अंतर्गत सभी नागरिकों, विशेषकर महिलाओं और बालिकाओं के लिए शिक्षा के अधिकार की गारंटी दी गई (Constitution of Afghanistan, 2004)।

इस अवधि में महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। संसद में महिलाओं के लिए 27 प्रतिशत सीटें आरक्षित की गईं, जो दक्षिण और मध्य एशिया के कई देशों की तुलना में अधिक थी (Bjelica & Sorush, 2018; Krook, 2010)। महिलाएं न केवल संसद में पहुँचीं, बल्कि वह न्यायपालिका, प्रशासन, शिक्षा, स्वास्थ्य और कूटनीति जैसे क्षेत्रों में भी सक्रिय भूमिका निभाने लगीं (UN Women, 2019)। शिक्षा क्षेत्र में समानता तथा नए कीर्तिमान स्थापित करने हेतु यह काल अनेक ऐतिहासिक उपलब्धियों का साक्षी रहा है। करीब लाखों महिला विद्यार्थियों ने प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में अपना नामांकन कराया तथापि विश्वविद्यालयों में भी महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़ा है (Zirack, 2021; UNESCO, 2020)। सन् 2020 तक विद्यालयों में नामांकित कुल विद्यार्थियों में लगभग 40 प्रतिशत बालिकाएं थीं, इसके परिणामस्वरूप लैंगिक अंतर में क्रमिक गिरावट दर्ज की गई थी (World Bank, 2021)।

आर्थिक क्षेत्र में भी महिलाओं ने उद्यमिता, व्यापार और सेवा क्षेत्र में अपनी मजबूत पहचान बनाई। महिला उद्यमियों ने छोटे-मोटे उद्योग स्थापित किए, जिससे न केवल उनका आर्थिक सशक्तिकरण हुआ, बल्कि स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर भी सृजित हुए (UNDP, 2018)। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य सेवाओं में महिलाओं की भागीदारी से मातृ मृत्यु दर में उल्लेखनीय गिरावट दर्ज की गई, जिसे अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं ने एक प्रमुख उपलब्धि माना (WHO, 2019)। हालाँकि, यह प्रगति असमान थी। ग्रामीण क्षेत्रों में सुरक्षा की कमी, पारंपरिक मान्यताएँ, संसाधनों का अभाव और तालिबान तथा अन्य उग्रवादी समूहों के हमलों के कारण महिलाओं को अपेक्षाकृत कम लाभ मिला (Rubin, 2013; Schetter, 2016)। इसके बावजूद, 2001–2021 का कालक्रम अफगान महिलाओं के लिए अधिकार-विस्तार, संवैधानिक संरक्षण और सामाजिक परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण दौर रहा है, जिसे खारिज नहीं किया जा सकता है (Kandiyoti, 2019; UN Women, 2021)।

6. 2021 में तालिबान की वापसी: कारणों का विश्लेषण

अगस्त 2021 में तालिबान का पुनः सत्ता में आना अचानक नहीं था, बल्कि यह कई दीर्घकालिक संरचनात्मक, राजनीतिक और अंतरराष्ट्रीय कारकों का परिणाम था। सबसे प्रमुख कारणों में अफगान सरकार में व्याप्त भ्रष्टाचार, शासन की वैधता का संकट, ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार की कमजोर पकड़ और अंतरराष्ट्रीय समुदाय की नीतिगत विफलताएँ शामिल थीं (Rubin, 2013; Murtazashvili, 2022)। तालिबान को पाकिस्तान के सीमावर्ती क्षेत्रों में सुरक्षित ठिकाने प्राप्त थे, जहाँ से वे अपनी संगठनात्मक और सैन्य क्षमता विकसित करते रहे। इन ठिकानों ने तालिबान को पुनर्गठन, प्रशिक्षण और संसाधन-संग्रह में महत्त्वपूर्ण सहायता प्रदान की (Rashid, 2008; Abbas, 2014)। इसके अतिरिक्त, अफगान सरकार की अत्यधिक केंद्रीकृत संरचना और आम नागरिकों की आवश्यकताओं की उपेक्षा ने तालिबान के लिए जनसमर्थन जुटाना अपेक्षाकृत आसान बना दिया (Giustozzi, 2019)।

अमेरिकी और नाटो सेनाओं की क्रमिक वापसी ने अफगान सुरक्षा बलों की परिचालन क्षमता को कमजोर कर दिया। सत्ता-शून्यता की स्थिति में तालिबान ने स्वयं को एक वैकल्पिक शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया तथा कानून-व्यवस्था की स्थिरता का वादा किया (Maizland, 2022; Maley, 2021)। अनेक विश्लेषकों के अनुसार, यह स्थिरता लोकतांत्रिक मूल्यों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों के अधिकारों की कीमत पर स्थापित की गई (Human Rights Watch, 2022)। तालिबान ने यह भी दावा किया कि उनका नया शासन पहले की तुलना में अधिक उदार होगा और महिलाओं के अधिकारों का रक्षण करेगा, परंतु सत्ता में आते ही उनके निर्णयों, फरमानों (आदेश) और प्रशासनिक नीतियों ने यह स्पष्ट कर दिया कि उनकी वैचारिक संरचना में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं आया है और महिलाओं के प्रति उनका दृष्टिकोण मूलतः अपरिवर्तित ही रहा है (UN Women, 2021; Amnesty International, 2022)।

7. वर्तमान तालिबान शासन में महिलाएं और किशोरियां (2021 के बाद)

तालिबान शासन के पुनः स्थापित होने के बाद महिलाओं और बालिकाओं के मानवाधिकारों में तीव्र गिरावट आई है। अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों और संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिवेदकों ने इस स्थिति को 'लैंगिक रंगभेद' (*gender apartheid*) की संज्ञा दी है, क्योंकि महिलाओं को संस्थागत रूप से सार्वजनिक जीवन से बाहर कर दिया गया है (Human Rights Watch, 2022; UN Special Rapporteur, 2023)। तालिबान की नीतियाँ महिलाओं को पुनः निजी क्षेत्र तक सीमित करने की दिशा में केंद्रित हैं, जिससे उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक पहचान लगभग समाप्त हो गई है (Amnesty International, 2022)।

7.1 शैक्षणिक प्रतिबंध

तालिबानियों ने कक्षा छह के बाद लड़कियों के लिए विद्यालयों में नामांकन कराने तथा शिक्षा अर्जित करने पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया है। माध्यमिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयों के द्वार अधिकांशतः महिलाओं और बालिकाओं के लिए बंद कर दिए गए हैं, जिससे शिक्षा का अधिकार व्यावहारिक रूप से समाप्त हो गया है (UNESCO, 2022; UN Women, 2021)। यह निर्णय न केवल मानवाधिकारों का उल्लंघन है, बल्कि अफगान समाज के दीर्घकालिक सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए भी अत्यंत घातक सिद्ध हो सकता है (Human Rights Watch, 2022)। शिक्षा से वंचित एक पूरी पीढ़ी भविष्य में सामाजिक-आर्थिक रूप से हाशिये पर चली जाएगी। अनेक अध्ययनों के अनुसार, यह नीति महिलाओं की आत्मनिर्भरता, निर्णय-क्षमता और सामाजिक सहभागिता को सीमित करती है तथा गरीबी और निर्भरता के चक्र को और बढ़ावा देती है (World Bank, 2022; Zirack, 2021)।

7.2 रोजगार और राजनीतिक सहभागिता

तालिबान शासन में महिलाओं को सरकारी नौकरियों से लगभग पूर्णतः बाहर कर दिया गया है। अधिकांश महिला कर्मचारियों को अगले आदेश तक घर पर रहने के लिए कहा गया है, जिससे उनकी आर्थिक सुरक्षा समाप्त हो गई है (Human Rights Watch, 2022; UNDP, 2022)। निजी क्षेत्र और गैर-सरकारी संगठनों में भी महिलाओं के कार्य करने पर कठोर प्रतिबंध लगाए गए, जिससे मानवीय सहायता और विकास कार्यक्रम भी प्रभावित हुए (Amnesty International, 2022)। राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में स्थिति और भी गंभीर है। तालिबान की अंतरिम सरकार में किसी भी स्तर पर महिलाओं को शामिल नहीं किया गया। महिला मामलों के मंत्रालय को समाप्त कर 'सदाचार और दुर्व्यवहार निवारण मंत्रालय' की स्थापना की गई, जिसने महिलाओं पर निगरानी और नियंत्रण को और अधिक सख़्त बना दिया (UN Women, 2021; Maley, 2022)। यह कदम महिलाओं के राजनीतिक और सार्वजनिक अस्तित्व के पूर्ण निषेध का प्रतीक माना जाता है (Kandiyoti, 2022)।

7.3 आवागमन की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध

तालिबान ने महिलाओं के लिए पुरुष अभिभावक (*महाम*) के बिना यात्रा करना प्रतिबंधित कर दिया है। यह प्रतिबंध शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं और रोजगार तक पहुँच में एक बड़ी संरचनात्मक बाधा बन गया है (Amnesty International,

2022)। सार्वजनिक परिवहन, टैक्सी सेवाओं और अंतर-प्रांतीय यात्रा पर महिलाओं के लिए कठोर नियम लागू किए गए हैं, जिससे उनकी दैनिक गतिविधियाँ भी अत्यंत सीमित हो गई हैं (UN Human Rights Council, 2022)।

7.4 शांतिपूर्ण महिला आंदोलनों का दमन

तालिबान शासन के विरुद्ध महिलाओं ने शांतिपूर्ण विरोध-प्रदर्शन आयोजित किए, जिनमें शिक्षा, रोजगार और स्वतंत्रता की माँग की गई। इन आंदोलनों को तालिबान ने हिंसा, मनमानी गिरफ्तारी, हिरासत में यातना और डराने-धमकाने के माध्यम से कुचल दिया (Human Rights Watch, 2022; Amnesty International, 2022)। महिला कार्यकर्त्ताओं को अवैध रूप से हिरासत में लिया गया तथा उन्हें शारीरिक और मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। यह स्थिति अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सभा और मानवीय गरिमा के मूल सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन है, जो ICCPR और CAT दोनों के प्रतिकूल है (UN Human Rights Council, 2022; Belkner, 2011)।

8. तालिबान की महिलाओं संबंधी नीतियाँ: अन्य इस्लामी देशों के संदर्भ में तुलनात्मक विश्लेषण

तालिबान अपने शासन और नीतियों को इस्लामी सिद्धांतों पर आधारित बताता है तथा महिलाओं पर लगाए गए प्रतिबंधों को 'शरिया कानून' के अनुरूप बताता है, किंतु यदि वैश्विक स्तर पर इस्लामी देशों की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह दावा तथ्यात्मक और वैचारिक दोनों स्तरों पर अस्थिर प्रतीत होता है (Kandiyoti, 2022; Al-Tayeb, 2022)। किसी भी इस्लामी देश में, चाहे वह सऊदी अरब, ईरान, कतर, इंडोनेशिया, मलेशिया या तुर्की हो, महिलाओं को शिक्षा से पूर्णतः वंचित नहीं किया गया है। अनेक मुस्लिम देशों में महिलाएं उच्च शिक्षा, चिकित्सा, प्रशासन, न्यायपालिका और राजनीति में सक्रिय भूमिका निभा रही हैं (UNESCO, 2020; OIC, 2022)। यहाँ तक कि परंपरावादी इस्लामी समाजों में भी महिलाओं की शिक्षा को धार्मिक दृष्टि से निषिद्ध नहीं माना गया है (Khan, 2022)।

इस्लामी विद्वानों और धार्मिक संस्थाओं ने बार-बार यह स्पष्ट किया है कि इस्लाम ज्ञान प्राप्ति को पुरुष और महिला दोनों के लिए अनिवार्य मानता है। पैगम्बर मोहम्मद की शिक्षाओं और कुरान की व्याख्याओं में महिलाओं की गरिमा, शिक्षा और सामाजिक भागीदारी को मान्यता दी गई है (Al-Qaradawi, 2011; Barlas, 2002)। अतः तालिबान द्वारा महिलाओं की शिक्षा और सार्वजनिक जीवन पर लगाए गए प्रतिबंध इस्लाम की सार्वभौमिक व्याख्या से मेल नहीं खाते हैं (Al-Tayeb, 2022)। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि तालिबान की नीतियाँ धार्मिक अनिवार्यता नहीं, बल्कि राजनीतिक सत्ता, सामाजिक नियंत्रण और पितृसत्तात्मक सोच का परिणाम हैं (Kandiyoti, 2007; Cole, 2003)।

9. अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून और तालिबान शासन

अफगानिस्तान अनेक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों का पक्षकार है। इनमें प्रमुख हैं — CEDAW, ICCPR, ICESCR, CRC तथा CAT (Belkner, 2011)। तालिबान भले ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त सरकार न हो, किंतु *de facto* सत्ता होने के कारण वह इन संधियों से उत्पन्न दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने स्पष्ट किया है (UN Human Rights Council, 2022; Clapham, 2006)।

9.1 CEDAW और तालिबान की नीतियाँ

CEDAW महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करने हेतु सबसे महत्वपूर्ण अंतरराष्ट्रीय संधि है। अफगानिस्तान ने 2003 में इसे बिना किसी आरक्षण के अनुमोदित किया था (Farhoumand-Sims, 2009)। इस संधि के अंतर्गत राज्य का दायित्व है कि वह महिलाओं को शिक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, राजनीतिक सहभागिता और विधिक समानता प्रदान करे (CEDAW Committee, 2010)। तालिबान द्वारा महिलाओं की शिक्षा पर प्रतिबंध, रोजगार से बहिष्करण, राजनीतिक प्रक्रिया से निष्कासन और आवागमन की स्वतंत्रता पर अंकुश CEDAW के अनुच्छेद 1, 2, 3, 7, 10 और 11 का स्पष्ट उल्लंघन है (Belkner, 2011; Amnesty International, 2022)। महिलाओं को सार्वजनिक जीवन से बाहर करना लैंगिक भेदभाव का एक संस्थागत रूप है (Human Rights Watch, 2022)।

9.2 ICCPR और नागरिक-राजनीतिक अधिकारों का उल्लंघन

ICCPR महिलाओं और पुरुषों दोनों को समान नागरिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान करता है, जिनमें स्वतंत्रता, गरिमा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्ण सभा और आवागमन का अधिकार शामिल है (ICCPR, 1966)। तालिबान द्वारा महिलाओं के विरोध-प्रदर्शनों का दमन, मनमानी गिरफ्तारी, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक तथा बिना महराम यात्रा पर प्रतिबंध ICCPR के अनुच्छेद 7, 9, 12, 19, 21 और 22 का प्रत्यक्ष उल्लंघन है (UN Human Rights Council, 2022; Amnesty International, 2022)। ये प्रतिबंध न तो आवश्यक हैं और न ही आनुपातिक (Nowak, 2005)।

9.3 ICESCR और आर्थिक-सामाजिक अधिकार

ICESCR शिक्षा, काम, स्वास्थ्य और गरिमापूर्ण जीवन को मौलिक मानवाधिकार मानता है (ICESCR, 1966)। तालिबान की नीतियों के कारण महिलाओं की आजीविका, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा लगभग समाप्त हो गई है (UNDP, 2022)। महिलाओं को कार्यस्थलों से हटाना, एनजीओ में काम पर रोक और शिक्षा संस्थानों से निष्कासन ICESCR के अनुच्छेद 6 (काम का अधिकार), 11 (उचित जीवन स्तर) और 13 (शिक्षा का अधिकार) का गंभीर उल्लंघन है (CESCR, 1999; Human Rights Watch, 2022)।

9.4 CRC और बालिकाओं के अधिकार

तालिबान द्वारा लड़कियों की शिक्षा पर प्रतिबंध बाल अधिकार संधि (CRC) का सीधा उल्लंघन है। CRC के अनुसार प्रत्येक बच्चे को बिना भेदभाव के शिक्षा और विकास का अधिकार प्राप्त है (CRC, 1989)। बालिकाओं को विद्यालयों से बाहर रखना भविष्य की पूरी पीढ़ी को अंधकार में धकेलने के समान है (UNICEF, 2022; UNESCO, 2022)।

9.5 CAT और महिलाओं पर हिंसा

तालिबान द्वारा महिला प्रदर्शनकारियों को पीटना, हिरासत में यातना देना और सार्वजनिक दंड देना यातना विरोधी अभिसमय (CAT) का स्पष्ट उल्लंघन है (CAT, 1984)। अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुसार यातना किसी भी परिस्थिति में न्यायसंगत नहीं ठहराई जा सकती (Nowak & McArthur, 2008; Amnesty International, 2022)।

10. सिफारिशें (Recommendations)

तालिबान शासन में महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय है, किंतु अंतरराष्ट्रीय समुदाय और नागरिक समाज के पास कुछ प्रभावी विकल्प अब भी उपलब्ध हैं —

1. अंतरराष्ट्रीय जवाबदेही तंत्र को सशक्त करना (संयुक्त राष्ट्र विशेष प्रतिवेदक के अधिकारों का विस्तार किया जाए तथा स्वतंत्र मानवाधिकार निगरानी तंत्र स्थापित किया जाए)।
2. अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय (ICC) की भूमिका (तालिबान द्वारा किए गए लैंगिक अपराधों को मानवता के विरुद्ध अपराध मानते हुए ICC द्वारा मुकदमे चलाए जाएँ)।
3. सशर्त अंतरराष्ट्रीय मान्यता (तालिबान को किसी भी प्रकार की अंतरराष्ट्रीय मान्यता महिलाओं के अधिकारों की बहाली से जोड़ा जाए)।
4. मानवीय सहायता में महिलाओं को प्राथमिकता (अंतरराष्ट्रीय सहायता कार्यक्रमों में महिलाओं और किशोरियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा को प्राथमिकता दी जाए)।
5. अफगान महिलाओं के आंदोलनों का समर्थन (अंतरराष्ट्रीय मंचों पर अफगान महिला कार्यकर्त्ताओं की आवाज को सशक्त किया जाए)।

निष्कर्ष (Conclusion)

तालिबान शासन के अधीन अफगानी महिलाओं और किशोरियों के मानवाधिकार वर्तमान काल में अभूतपूर्व संकट का सामना कर रहे हैं। अगस्त 2021 में सत्ता परिवर्तन के पश्चात् लागू की गई नीतियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि तालिबान की वैचारिक संरचना में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। 1990 के दशक की भाँति वर्तमान शासन में भी महिलाओं को सार्वजनिक जीवन से योजनाबद्ध एवं संस्थागत रूप से बहिष्कृत किया जा रहा है। शिक्षा, रोजगार, राजनीतिक सहभागिता, आवागमन की स्वतंत्रता और अभिव्यक्ति के अधिकार जैसे मूलभूत अधिकारों पर लगाए गए प्रतिबंध इस बहिष्करण को विधिक और प्रशासनिक मान्यता प्रदान करते हैं। तालिबान की नीतियाँ केवल सांस्कृतिक या धार्मिक व्याख्या का प्रश्न नहीं हैं, बल्कि वे अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून के प्रत्यक्ष उल्लंघन का उदाहरण हैं। अफगानिस्तान द्वारा अनुमोदित प्रमुख संधियों जैसे – CEDAW, ICCPR, ICESCR, CRC और CAT के आलोक में यह स्पष्ट है कि महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव समाप्त करने, शिक्षा और रोजगार के अवसर सुनिश्चित करने, नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा करने तथा यातना से संरक्षण प्रदान करने जैसे दायित्वों को व्यवहारिक रूप से निष्प्रभावी कर दिया गया है। अंतरराष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों के अनुसार, कोई भी शासन *de facto* होने के बावजूद मानवाधिकार संबंधी दायित्वों से मुक्त नहीं हो सकता। अतः तालिबान को भले ही व्यापक अंतरराष्ट्रीय मान्यता प्राप्त न हो, अफगानिस्तान की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं से विमुख नहीं हो सकता।

इन नीतियों के दीर्घकालिक सामाजिक परिणाम अत्यंत गंभीर होंगे। शिक्षा से वंचित एक पूरी पीढ़ी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक रूप से हाशिये पर चली जाएगी। महिलाओं की आर्थिक भागीदारी के अभाव में परिवारों की आय में गिरावट आएगी, जिससे गरीबी और असमानता का चक्र और गहरा होगा। स्वास्थ्य सेवाओं तक सीमित पहुँच मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को बढ़ाएगी और मानवीय संकट को और व्यापक बनाएगी। इस प्रकार महिलाओं के अधिकारों का दमन केवल लैंगिक असमानता का प्रश्न नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास, सामाजिक स्थिरता और स्थायी शांति के लिए एक संरचनात्मक बाधा है। यह भी उल्लेखनीय है कि तालिबान अपनी नीतियों को इस्लामी सिद्धांतों के नाम पर उचित ठहराता है, जबकि तुलनात्मक अध्ययन दर्शाता है कि अधिकांश मुस्लिम-बहुल देशों में महिलाओं को शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में सहभागिता के अधिकार प्राप्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि ये प्रतिबंध धार्मिक अनिवार्यता की बजाय राजनीतिक नियंत्रण और पितृसत्तात्मक संरचना का परिणाम अधिक हैं। अतः अंतरराष्ट्रीय समुदाय की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। केवल प्रतीकात्मक निंदा पर्याप्त नहीं है; आवश्यक है कि मानवाधिकार निगरानी तंत्र को सशक्त किया जाए, अंतरराष्ट्रीय सहायता को महिलाओं के अधिकारों की बहाली से जोड़ा जाए तथा लैंगिक अपराधों की जवाबदेही सुनिश्चित की जाए। अंततः यह स्वीकार करना होगा कि अफगानिस्तान में स्थायी शांति और लोकतांत्रिक पुनर्निर्माण तब तक संभव नहीं है, जब तक महिलाओं को समान नागरिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होते। महिलाओं के अधिकारों की पुनर्स्थापना केवल नैतिक दायित्व नहीं, बल्कि शांति और विकास की अनिवार्य शर्त है।

संदर्भ (References) :-

Abbas, H. (2014). *The Taliban revival: Violence and extremism on the Pakistan–Afghanistan frontier*. Yale University Press.

Ahmed-Ghosh, H. (2003). A history of women in Afghanistan: Lessons learnt for the future or yesterday and tomorrow. *Journal of International Women's Studies, 4*(3), 1–14.

Al-Qaradawi, Y. (2011). *The lawful and the prohibited in Islam*. Islamic Book Trust.

Al-Tayeb, S. (2022). Women, Islam and the Taliban: Misuse of religion and political patriarchy. *Third World Quarterly, 43*(6), 1234–1250.

Amnesty International. (1999). *Women in Afghanistan: Pawns in men's power struggles*. Amnesty International Publications.

Amnesty International. (2022). *Death in slow motion: Women and girls under Taliban rule*. Amnesty International.

Barlas, A. (2002). *"Believing women" in Islam: Unreading patriarchal interpretations of the Qur'an*. University of Texas Press.

Belkner, L. (2011). Afghanistan and CEDAW: Challenges and opportunities. *Cardozo Journal of International and Comparative Law, 20*, 501–535.

Bhatia, M. (2007). *War and intervention in Afghanistan*. Kumarian Press.

Bjelica, J., & Sorush, R. (2018). *Women candidates and political participation in Afghanistan*. Afghan Analysts Network.

Borthakur, A., & Kotokey, A. (2020). Taliban's ideology and women's rights. *Asian Affairs, 51*(4), 817–835.

CEDAW Committee. (2010). *General recommendation No. 28*. United Nations.

CESCR. (1999). *General comment No. 13: The right to education*. United Nations.

Clapham, A. (2006). *Human rights obligations of non-state actors*. Oxford University Press.

Cole, J. R. I. (2003). The Taliban, women and gender apartheid. *Social Research, 70*(3), 771–782.

Farhoumand-Sims, C. (2009). CEDAW and Afghanistan: Women's rights on the periphery. *Journal of International Women's Studies, 11*(1), 136–160.

Giustozzi, A. (2019). *The Taliban at war: 2001–2018*. Oxford University Press.

Human Rights Watch. (2022). *Afghanistan: Taliban deprive women of livelihoods*. Human Rights Watch.

ICC. (2022). *Statement of the prosecutor on Afghanistan*. International Criminal Court.

ICCPR. (1966). *International covenant on civil and political rights*. United Nations.

ICESCR. (1966). *International covenant on economic, social and cultural rights*. United Nations.

Kandiyoti, D. (2007). Gender and nation-building in Afghanistan. *Development and Change, 38*(2), 169–199.

Kandiyoti, D. (2019). Bargaining with patriarchy revisited. *Gender & Society, 33*(2), 198–222.

Kandiyoti, D. (2022). Gender apartheid in Afghanistan. *Open Democracy*.

Khan, M. A. (2022). Islam, education and women's rights. *Islamic Studies Review, 41*(2), 55–72.

Maizland, L. (2022). *The Taliban in Afghanistan*. Council on Foreign Relations.

Maley, W. (2002). *The Afghanistan wars*. Palgrave Macmillan.

Maley, W. (2021). Afghanistan's collapse. *The Round Table, 110*(5), 505–517.

Middleton, S. A. (2000). Women's rights under Taliban rule. *Indiana International & Comparative Law Review, 11*, 421–447.

Murtazashvili, J. B. (2022). The collapse of Afghanistan. *Journal of Democracy, 33*(1), 40–55.

Nowak, M. (2005). *UN covenant on civil and political rights: CCPR commentary*. N. P. Engel.

Nowak, M., & McArthur, E. (2008). *The United Nations Convention Against Torture*. Oxford University Press.

OIC. (2022). *OIC statement on women's rights in Afghanistan*. Organisation of Islamic Cooperation.

Rashid, A. (1999). *Taliban: Militant Islam, oil and fundamentalism in Central Asia*. Yale University Press.

Rubin, B. R. (2013). *Afghanistan from the Cold War through the war on terror*. Oxford University Press.

Schetter, C. (2016). Ethnicity and power in Afghanistan. *Studies in Ethnicity and Nationalism, 16*(3), 460–480.

Schulz, J. J., & Schulz, L. (1999). Afghan women under the Taliban. *Peace and Conflict, 5*(3), 237–255.

Skaine, R. (2010). *The women of Afghanistan under the Taliban*. McFarland.

Suhrke, A. (2011). *When more is less: The international project in Afghanistan*. Hurst.

UN Human Rights Council. (2022). *Situation of human rights in Afghanistan*. United Nations.

UN Women. (2021). *Women's rights in Afghanistan: Where are we now?* UN Women.

UNDP. (2018). *Afghanistan human development report*. United Nations Development Programme.

UNDP. (2022). *Gender impact of the Taliban takeover*. UNDP.

UNESCO. (2020). *Global education monitoring report*. UNESCO.

UNESCO. (2022). *Education under attack in Afghanistan*. UNESCO.

UNICEF. (2022). *Girls' education in Afghanistan*. UNICEF.

World Bank. (2021). *Afghanistan development update*. World Bank.

Zirack, L. (2021). Women's education in Afghanistan. *The Diplomat*.

Received: 01.02.2026 | Accepted: 05.02.2026 | Published: 30.03.2026

सोनभद्र की बैगा जनजाति में पारंपरिक नृचिकित्सा पद्धति: वैयक्तिक अध्ययन

डॉ. शिव कुमार*

shiv.anthro@gmail.com

सारांश:

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण संस्था के अनुसार 46000 वनस्पतियों की प्रजातियां इस धरती पर विद्यमान हैं तथा 160 भाषाई समूह वाले 705 जनजाति समुदाय निवास करती हैं, जो पारंपरिक ज्ञान के धनी हैं। प्रकृति के करीब निवास करने वाली इन जनजातीय समुदायों में अपने आस-पास विद्यमान वनस्पतियों को प्रयोग करने का अद्वितीय पारंपरिक ज्ञान है।(Jain, 1998) विश्वभर के विभिन्न जनजातीय समुदाय प्राकृतिक संपदा के संरक्षक हैं तथा वानस्पतिक औषधियों के विशेषज्ञ हैं। सदियों से पारंपरिक चिकित्सा का ज्ञान मौखिक रूप से विभिन्न पीढ़ियों में हस्तांतरित होता आया है। (Ganasen, et. Al. 2004) इन औषधियों का प्रयोग प्रायः पारंपरिक रूप से जनजातीय समुदाय सदियों से करता आ रहा है, परंतु आधुनिक चिकित्सा के प्रभाव से अब इनका प्रयोग प्रायः समाप्त होता जा रहा है और यह पारंपरिक चिकित्सा व ज्ञान विलुप्त होता जा रहा है। उत्तर प्रदेश का सोनेभद्र जिला प्राकृतिक संपदा का धनी है, जो प्रकृतिक रूप से चार राज्यों की सीमा से जुड़ा है। सोनभद्र जिले का अधिकांशतः भाग नदियों, पहाड़ों, जिलों, प्रागऐतिहासिक जगहों एवं प्राकृतिक संपदाओं से परिपूर्ण है। सोनभद्र ज़िले का क्षेत्रफल 6,788 वर्ग किलोमीटर है। इस जिले में रहने वाली बैगा जनजाति सोनभद्र के म्योरपुर, बभनी, घोरावल ब्लॉक में देखने को मिलती है, जिसकी जनसंख्या लगभग 30006 (2011 जनगणना) है।

प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश राज्य के सोनेभद्र जिले की बैगा जनजाति के द्वारा सदियों से प्राकृतिक संपदाओं के औषधीय प्रयोग पर केन्द्रित है। इस लेख में 125 महिलाओं एवं 250 पुरूषों से आंकड़े संरचित अनुसूची के द्वारा तथा 10 देशज बैगा चिकित्सकों एवं वैद्यों से साक्षात्कार पद्धति द्वारा एकत्रित किए गए हैं। प्रस्तुत शोध में औषधियों के रूप में प्रयोग किए जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों का प्रलेखन किया गया है। इसके साथ ही साथ यह भी वर्णन किया गया है कि इन वनस्पतियों के किस भाग का उपयोग किस बीमारी के लिए किया जाता है। बैगा समुदाय में प्रचलित विभिन्न नृऔषधीय निर्माण कि विधियों एवं वनस्पतियों के महत्व को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है। यह भी पाया गया की बैगा जनजाति एक ही बीमारी के लिए कई प्रकार की विधियों का उपयोग करती है।

बीज शब्द:

पारंपरिक नृचिकित्सा पद्धति, वनस्पति, औषधि, बैगा जनजाति, सोनेभद्र।

प्रस्तावना:

आदिम समुदाय व लोक समुदाय में बीमारी एवं स्वास्थ्य सामान्य मानव अनुभव है और प्रत्येक समाज में इन्हें परिभाषित करने की एक वैचारिक पद्धति होती है। 19वीं शताब्दी के बाद से बीमारियों के क्षेत्र में कई कार्य किए गए हैं। इसी क्रम में रोडॉल्फ वरचॉव (1848) ने चिकित्सा को सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया था। इन्होंने कहा कि सामाजिक परिस्थितियां, बीमारी के कारकों का काम करती हैं। उन्होंने 1848 में एक पत्रिका प्रकाशित किया, जिसमें चिकित्सा को पूर्णत: एक सामाजिक विज्ञान का विषय बताया था। 19वीं शताब्दी के बाद से ही देशज ज्ञान एक उत्साह का विषय बन गया, जिसमें विभिन्न सामाजिक विज्ञानियों अपने अध्ययन और शोध से अनेकों सिद्धांतों का प्रतिपादन किया।

* **सहायक प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग, मॉडेल डिग्री कॉलेज नुआपाडा, ओड़ीशा**

ग्रामीण और आदिवासी समुदायों के बीच कई अलग-अलग स्वदेशी ज्ञान प्राणली पर विचार किए गए हैं। देशज या स्थानीय ज्ञान का अध्ययन समुदायों के विकास के लिए प्रभावकारी साबित हुई हैं।

मानवविज्ञानी मानते है कि संस्कृति सभी मनुष्यों की गतिविधियों को जैविक व अजैविक दोनों रूप से प्रभावित करती है। इसलिए हर मनुष्य को बीमारी एवं स्वास्थ्य के देख-रेख करना सार्वभौमिक है। प्रत्येक समुदाय की अपनी एक अलग संस्कृति होती है। उस समुदाय की संस्कृति ही काफी हद तक निर्धारित करती है कि उस संस्कृति के लोग कुछ बीमारियों से क्यों पीड़ित है और किस प्रकार के उपचार की आवश्यकता है। सामाजिक-सांस्कृतिक मानवविज्ञान के उप शाखा के रूप में चिकित्सा मानवविज्ञान का विकास को उत्तरदायी है। नृऔषधीय प्रणाली के अध्ययन में मानवविज्ञानी हितों का इस तथ्य से विकास होता है कि स्वास्थ्य न केवल चिकित्सा देखभाल का एक कार्य है, बल्कि एक समाज में व्यक्तियों के समग्र अंतर्निहित विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू भी है। स्वास्थ्य एक व्यक्ति, परिवार रचना, रीति-रिवाजों, विश्वासों और मूल्यों, जीवन-शैली, घर प्रकार और समाज में उपलब्ध चिकित्सा संसाधनों का उपयोग आदि की सामाजिक-सांस्कृतिक व आर्थिक स्थिति से संबंधित है। इस प्रकार स्वास्थ्य और रोगों पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभावों में मानवविज्ञान के अध्ययन में न केवल तत्काल चिकित्सकीय प्रासंगिकता का विषय शामिल है, बल्कि मानव पारिस्थितिकी और मानव विकास के आधारभूत पर उनके प्रभाव के कारण विशेष रुचि भी शामिल है। यह केवल रोगग्रस्त और चिकित्सा कर्मियों कि चिकित्सा नृऔषधीय का विषय नहीं है, परंतु आज वर्तमान समय में विभिन्न समाजों में सामाजिक सांस्कृतिक प्रणाली के रूप में स्वास्थ्य से संबंधित विश्वासों और प्रथाओं को प्रदर्शित करता है।

प्रकृति ने मनुष्य के प्रादुर्भाव के पहले ही विभिन्न प्रकार की जड़ी-बूटियों एवं वनस्पतियाँ पैदा कर दी थी। इन जड़ी-बूटियों में वे सारी गुणवत्ताएं स्थित होती हैं, जो रोगी होने से बचाने तथा रोग को ठीक करने के लिए आवश्यक है। मनुष्य ने सबसे पहले कब और किस पौधे का उपयोग औषधि के रूप में किया था, इसका कोई प्रामाणिक दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं है, परंतु हमारे देश में 'ऋग्वेद' औषधीय पौधों के विषय में जानकारी प्रदान करने वाला प्रथम प्रमाणिक ग्रंथ है। ऋग्वेद के द्वारा हम लोगों को ये पता चलता है कि आर्य ऋषि प्राचीन काल में 'सोम' नामक पौधे का उपयोग सर्वप्रथम औषधि के रूप में करते थे। प्राचीन भारतीय चिकित्सा पध्दति में जड़ी-बूटियों से निर्मित औषधियों का अधिक वर्णन मिलता है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य ने रोगग्रस्त होते ही पहले उन पौधों का औषधि के रूप में उपयोग किया जो उन्हें अपने नजदीक सरलता से मिल जाते थे। यही कारण है कि वैदिक चिकित्सकों एवं ग्रंथकारों ने यह निष्कर्ष निकाला कि रोगी अपने आस-पास उगने वाली जड़ी-बूटियों से ही ठीक हो सकता है। इसमें जनजातीय समुदायों के देशज ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका प्राचीन काल से ही देखने को मिलती है। आदिवासी और सदिवासी समूहों का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में साहित्यों में भी मिलता है।

जनजाति अथवा आदिवासी शब्द का अर्थ मानववैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो 'जनजाति' तथा 'आदिवासी' दोनों शब्दों को ही समानार्थक रूप से स्वीकार किया गया है, जिसका अंग्रेजी अनुवाद "ट्राईब" रोमन शब्द "ट्राईबुआ" से बना है और जिसका अर्थ है "एक राजनैतिक इकाई"। पहले इस शब्द का प्रयोग उन सामाजिक समूहों के लिए किया जाता था, जो अपने भू-भाग से परिभाषित होते थे। सर्वप्रथम लुईस हेनरी मॉर्गन (1868) ने यह स्पष्ट किया की जनजाति एक समूह है, जिसमें सामाजिक संस्थाएं होती हैं, राजनैतिक नहीं। धीरे-धीरे बाद में 'जनजाति' शब्द आदिम सामाजिक समूह का पर्याय बन गया है। आज 'जनजाति' शब्द का अर्थ प्राचीन युग की राजनैतिक इकाई से परिवर्तित होकर गरीबी एवं पिछड़ेपन से पीड़ित जनसमूह को अभिलक्षित करता है। इन्हीं समूहों में से एक जनजातीय समूह है- बैगा, जिसे पृथ्वी पुत्र की भी संज्ञा प्रदान है। बैगा जनजाति, भारत की एक आदिम जनजाति है। यह जनजाति मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, बिहार, ओडिशा, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, और पश्चिम बंगाल में पाई जाती है। बैगा जनजाति अपनी अनोखी संस्कृति और सामजिक व्यवस्था के लिए जानी जाती है।

यह शोध लेख उत्तर प्रदेश राज्य के सोनभद्र जिले के घोरावल, म्योरपुर और बभनी ब्लॉक में रहने वाली बैगा जनजाति के चिकित्सीय पद्धति और उनके पारंपरिक औषधीय प्रयोग पर केन्द्रित है। बैगा जनजाति के समूह में संयुक्त परिवार व एकल परिवार की प्रथा पायी जाती है। बैगा आदिवासी तीज, त्यौहार, और उत्सवों पर रंग-विरंगी पोशाकों में सजते-धजते हैं, जिसमें उनकी देशज परंपरा प्रदर्शित होती हैं। उनकी आजीविका और जीवनशैली जंगल पर आधारित है। उनका जंगल से

जड़ी-बूटी, खाद्य पदार्थ एवं जंगली उपज एकत्रित करना और बेवर खेती से जीविका एकत्रित करना, इनके जीवनचर्या का प्रमुख साधन होता है। बैगा जनजाति पूरी तरह से प्राकृतिक जैविकी और पर्यावरणीय अनुकूल से पूर्णतः प्रभावित होती है। बैगा जनजातियों की अलग-अलग अनेकों मान्यताएं होती हैं। इन्हीं मान्यताओं में उनकी देशज चिकित्सा पद्धति भी आती है। सामाजिक परिवर्तन के कारकों के कारण बैगा समाजों में भी सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक एवं चिकित्सीय परिवर्तन लगातार देखने को मिलता है। अतः यह शोध अध्ययन का प्रयास है कि बैगा समाज में विद्यमान विभिन्न देशज ज्ञान को वैश्विक स्तर पर लाया जा सके और उन्हें सामाजिक सम्मान मिल सके।

प्रागैतिहासिक काल से मानव ने पौधों का प्रयोग औषधियों के रूप में करता रहा है, जिनके कई प्रमाण प्राप्त हुए हैं। स्विस पर्वत शिखर में 5300 साल पुराने आइस मैन के साथ औषधीय पौधों के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इन औषधियों का प्रयोग आंत के परजीवियों के इलाज के लिए किया गया था। भारत में 46000 वनस्पतियों की प्रजातियां विद्यमान हैं तथा 160 भाषाई समूह वाले 705 जनजातीय समुदाय निवास करती है, जो पारंपरिक ज्ञान के धनी हैं। प्रकृति के करीब निवास करने वाली इन जनजातीय समुदायों में अपने आस-पास विद्यमान वनस्पतियों के प्रयोग करने का अद्वितीय पारंपरिक ज्ञान है। (Jain, 1998. Tribal Medicine) विश्वभर के विभिन्न जनजातीय समुदाय प्राकृतिक संपदा के संरक्षक हैं तथा वानस्पतिक औषधियों के विशेषज्ञ हैं। सदियों से पारंपरिक चिकित्सा का ज्ञान मौखिक रूप से विभिन्न पीढ़ियों में हस्तांतरित होता रहा है (Ganasen, 2004)।

इन औषधियों का प्रयोग प्रायः पारंपरिक रूप से जनजातीय समुदाय सदियों से करता आ रहा है, परंतु आधुनिक चिकित्सा के प्रभाव से अब इनका प्रयोग प्रायः समाप्त होता जा रहा है और यह पारंपरिक चिकित्सा व ज्ञान विलुप्त होता जा रहा है।

आकड़ों का विश्लेषण:

प्रस्तुत शोध पत्र उत्तर प्रदेश राज्य के सोनेभद्र जिले की बैगा जनजाति के द्वारा सदियों से प्राकृतिक संपदाओं के औषधीय प्रयोग पर केन्द्रित है। उत्तर प्रदेश का सोनेभद्र जिला प्राकृतिक संपदा का धनी है, जो प्रकृतिक रूप से चार राज्यों की सीमा से जुड़ा है। सोनभद्र जिले का अधिकांशतः भाग नदियों, पहाड़ों, जिलों, प्रागऐतिहासिक जगहों एवं प्राकृतिक संपदाओं से परिपूर्ण है। सोनभद्र ज़िले का क्षेत्रफल 6,788 वर्ग किलोमीटर है तथा यह उत्तर प्रदेश का दूसरा सबसे बड़ा ज़िला है। इस जिले में रहने वाली बैगा जनजाति सोनभद्र के म्योरपुर, बभनी, घोरावल ब्लॉक में देखने को मिलती है, जिसकी जनसंख्या लगभग 30006 (2011 जनगणना) है। काफी समय पूर्व से बैगा जनजाती समुदाय इस प्राकृतिक संपदा का प्रयोग देशज ज्ञान के आधार पर विभिन्न बीमारियों के इलाज के लिए करता आया है। इस लेख का उद्देश्य उत्तर प्रदेश के एक जनजातीय जिला में प्राकृतिक वातावरण में अपने देशज ज्ञान के बदौलत अपनी जीवन को पारंपरिक चिकित्सा पद्धति से निर्वहन करने वाली बैगा जनजाति समाज में प्रचलित विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का अवलोकन करना तथा प्रयोग की विधियों को लिपिबद्ध करना था। इसके लिए लेखका द्वारा एक संरचित अनुसूची का निर्माण किया गया, जिसमें देशज चिकित्सा पद्धति और उनके प्रयोग की प्रविधियों से संबन्धित प्रश्न समाहित किए गए थे। इस अनुचूची को बैगा जनजाति के विभिन्न महिलाओं, पुरुषों एंव देशज चिकित्सीय विशेषज्ञों से पूछा गया। इस लेख में 125 महिलाओं एवं 250 पुरूषों तथा 10 देशज बैगा चिकित्सकों एवं वैद्यों से साक्षात्कार पद्धति द्वारा सूचना एवं अकड़ें एकत्रित किए गए हैं। प्रस्तुत शोध में लगभग 26 वनस्पतियों तथा 11 विधियों का प्रलेखन किया गया है, जो घोरावल, बभनी, म्योरपुर ब्लॉक के प्राकृतिक वातावरण एवं स्थानीय खेतों में आसानी से प्राप्त हो जाते हैं, जिसका प्रयोग बैगा लोग अपने चिकित्सा पद्धतियों में करते हैं। यह भी पाया गया की बैगा जनजाति एक ही बीमारी के लिए कई प्रकार की विधियों का उपयोग करती हैं।

प्रस्तुत शोध में औषधियों के रूप में प्रयोग किए जाने वाली विभिन्न वनस्पतियों का प्रलेखन किया गया है। इसके साथ ही साथ यह भी वर्णन किया गया है कि इन वनस्पतियों के किस भाग का उपयोग किस बीमारी के लिए किया जाता है। बैगा समुदाय में प्रचलित विभिन्न नृऔषधीय निर्माण कि विधियों एवं वनस्पतियों के महत्व को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है। जिससे स्पष्ट होता है कि अलग-अलग समस्याओं के लिए वनस्पतियों के अलग-अलग भागों का प्रयोग किया जाता है तथा एक ही प्रजाति की वनस्पतियों का प्रयोग अलग-अलग समस्याओं के लिए किया जाता है। पारंपरिक चिकित्सकों द्वारा

या तो एक या कई वनस्पतियों के मिश्रण से औषधि निर्माण की जाती है। इन वनस्पतियों द्वारा सिर दर्द जैसी छोटी समस्या से लेकर सांप काटने जैसी गंभीर समस्या का भी इलाज किया जाता है। यह ज्ञान पारंपरिक व लाभकारी होने के साथ-साथ कम खर्चीला भी है, परंतु आधुनिकता के प्रभाव में आने के कारण व वनस्पतियों के अभाव से आज यह देशज ज्ञान विलुप्त होने की स्थिति में है। जनजातीय समाजों के पास वनस्पतियों का अत्यधिक ज्ञान है, जिनमें से कई वनस्पतियों के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है, जिसके संरक्षण पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

तालिका क्रमांक- 1: औषधीय वनस्पतियों के नाम व उपयोगी भाग

क्र. सं.	वनस्पति का देशज नाम	हिंदी नाम	अंग्रेजी नाम	वैज्ञानिक नाम	उपयोगी भाग	औषधीय प्रयोग
1	बंस	बांस	Bamboo	Bambusa vulgaris	तना	एंटीऑक्सीडेंट गुण। बांस के पत्तों का अर्क हृदय संबंधी बीमारियों को रोकने में मदद करता है।
2	दस्मत	गुड़हल	Hibiscus	Hibiscusrosa sinesis	फूल	सर्दी, सूजन, वजन घटाने, कोलेस्ट्रॉल और उच्च रक्तचाप का इलाज।
3	नीबू	नीबू	Lemon	Citrus limon	फल	संक्रमण का इलाज, सूजन को कम करना, और पाचन में सुधार।
4	भेलवा	भेलाटुकी या भिलावा	Oriental Cashew or Nut Tree	Semecarpus anacardium	फल	मवाद बनने से रोकने के लिए तेल को घावों और घावों पर लगाया जाता है। गठिया, अस्थमा, नसों का दर्द और मिर्गी के इलाज में किया जाता है।
5	मौहा	महुआ	Butternut tree	Madhuca indica Madhuca longifolia	फल	महुआ तेल का उपयोग त्वचा, बाल और मालिश के लिए किया जाता है। एंटी-इंफ्लेमेटरी, एंटी-अल्सर, एंटीऑक्सीडेंट आदि का उपचार। एल्कोहल का निर्माण।
6	गेंदा	गेंदा	Pot marigold	Calendula officinalis Senna occidentalis	बीज	मासिक धर्म की अनियमितता, आंखों की समस्याओं, पेप्टिक अल्सर आदि का इलाज करता है।
7	चरोटा	चरोटा	Cassia	Cassia occidentalis	बीज	बुखार, टाइफाइड बुखार, मलेरिया और हेपेटाइटिस का उपचार
8	पाटकोरिया	पाटकोरिया		Cissampelos pareira	बीज	अल्सर और घाव, बुखार, अस्थमा और सूजन का इलाज। इसका उपयोग सांप के काटने के इलाज के लिए किया जाता है।
9	भस्कटिया	घमोई, पीली कटेरी	Mexican poppy, Argemone	Argemone maxicana	बीज	त्वचा संक्रमण, कीड़े और बिच्छू के काटने का इलाज करते हैं।
10	फुड़हर	मदार	Crown flower or Giant milkweed	Calotropis gigancia	जड़	त्वचा रोग, दर्द, सूजन, कुष्ठ रोग और पेचिश के इलाज के लिए।
11	केवास	केंवाच	Cowhage or Cowitch	Mucuna prurtia	जड़	शुक्राणुओं की संख्या में वृद्धि, अण्डोत्सर्ग को विनियमित करना
12	दूधी	श्वेत कुटज	Pala indigo or Dyer's Oleander	Wrightia tinctoria	तना	दस्त, विभिन्न त्वचा विकारों के उपचार में उपयोग किया जाता है।

13	छूध मोंगरा	क्रोटन	croton	Codiaeum variegatum	तना	दस्त, पेट दर्द और बाहरी घाव, मलेरिया, दर्द और वजन घटाने का इलाज।
14	दौना	नागदौना, सफ़ेद तेजपात	Mugwort	Artemisia vulgaris	तना	अनियमित मासिक धर्म, उच्च रक्तचाप और खुजली का इलाज।
15	पेंक	मालकांगनी	Black oil plant or Intellect tree	Celastrus paniculatus	तना	दर्द, सूजन, ऑस्टियोआर्थराइटिस और घाव का उपचार।
16	टजवाइन	अजवाइन	Bishop's Weed, or Carum	Carum copticum	बीज	पाचन संबंधी समस्याएं, श्वसन संबंधी समस्याएं, अस्थमा, खांसी और जोड़ों का दर्द
17	अरण्डी	अरण्डी	Castor bean	Ricinus communisl	बीज	सूजन, कब्ज, यकृत विकारों सहित विभिन्न स्थितियों का इलाज।
18	उड़द	उड़द	Broad bean or faba	Vicia faba	बीज	मधुमेह, पेट के अल्सर, एनीमिया, एलर्जी का इलाज।
19	क्रंज	करंज	Pongam tree or Indian Beech Tree	Pongamia pinnata	बीज	त्वचा रोग, अल्सर, ट्यूमर, बवासीर, ब्रोंकाइटिस का इलाज।
20	कुल्थी	सरफोंक	Purple tephrosia	Tephrosia purpurea	बीज	अस्थमा, घाव भरने, बवासीर के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।
21	प्रिजात	पारिजात	Indian coral tree, tiger's claw, and coral tree	Erythrina variegate Madagascar periwinkle	फूल	गठिया के जोड़ों में दर्द और सूजन से राहत, दमा-रोधी और मिर्गी-रोधी।
22	स्दासुहागन	पिंक पेरीविंकल	Cayenne Jasmine Or Madagascar Periwinkle	Catharanthus roseus	फूल	कैंसर, मधुमेह और त्वचा संबंधी रोगों का उपचार।
23	तेंदू	तेंदू	East Indian ebony	Diospyros melanoxylon	फल	दस्त, मधुमेह, शीतलन और कसैले प्रभाव के इलाज के लिए उपयोग किया जाता है।
24	नीम	नीम	Neem	Azadirachta indica	फल व छाल	फंगल, बैक्टीरियल, वायरल संक्रमण, दाग-धब्बे, एक्जिमा का इलाज करता है, घावों को ठीक करता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाता है, एंटीऑक्सीडेंट गुण।
25	बहेरा	बहेरा	Bedda nut	Terminala bellirica	फल	चेचक, ज्वरनाशक, मासिक धर्म संबंधी विकार, घाव भरने, एंटीऑक्सीडेंट और श्वसन संबंधी समस्याओं के लिए उपयोग किया जाता है।
26	बारसपील	पारस पीपल	Portia tree	Thespesia populnea	फल	त्वचा रोग, मस्तिष्क और यकृत विकार, और घाव और जीवाणुरोधी।

(स्रोत: शोधार्थी द्वारा एकत्रित प्राथमिक आकड़ा)

तालिका क्रमांक- 2: नृचिकित्सा की विधियाँ

क्र.सं.	बीमारी/समस्या	वनस्पति का नाम	उपयोगी भाग	औषधी निर्माण की विधि
1	दस्त	मदार व केवास	जड़	मदार व केवास की जड़ को पीसकर शिशु को पिलाया जाता है।
2	दस्त	महुआ	फल	थाली में मौहा का रस डालकर बीमार बच्चे को उस पर बिठाते हैं।

3	सर्दी-खांसी	अजवाइन	बीज	अजवाइन को भूनकर शहद के साथ गोली बनाकर खिलाते हैं।
4	सांप काटने पर	नीम	छाल	नीम की छाल को पीसकर लगातार पिलाया जाता है।
5	लू	करोटा	बीज	चरोटा के बीज को 5-6 रात भिगाकर रखते हैं और सुबह चबाकर खाया जाता है।
6	सिर दर्द	गेंदा	बीज	गेंदे के ताजे बीज को खिलाया जाता है।
7	दांत दर्द	नीम	फल	नीम के फल को जलाकर दांत में लगाया जाता है।
8	दांत दर्द	पीली कटिरी	बीज	बीज को पीसकर दांत में दबाते हैं।
9	आंख में संक्रमण	पीली कटिरी	जड़	बच्चे के गले में जड़ को बांधते हैं।
10	कमजोरी	पेंक	तना	प्रसव के बाद माता को पेंक का दातून करवाया जाता है।
11	बिच्छू काटने पर	केवास	जड़	बिच्छू के काटे गए स्थान पर लगाया जाता है।

(स्रोत: शोधार्थी द्वारा एकत्रित प्राथमिक आकड़ा)

नृचिकित्सा पद्धति एवं सामाजिक मान्यताएँ व विश्वास:

अनेक बीमारियों के इलाज अपने परंपरागत देशज ज्ञान के आधार पर जंगली जड़ी-बूटियों व छालों का इस्तेमाल करके बीमारी को ठीक किया जाता है। प्रत्येक बीमारी की अगल-अगल जड़ी-बूटियाँ व छाल रहती है। कुछ परंपरागत जड़ी-बूटी व छाल को ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति जानता है, कुछ ऐसी जड़ी-बूटियां व छाल जो उस गांव के परंपरागत देवार, गुनिया चिकित्सक को ही उस जंगली पेड़-पौधे के जड़ी-बूटियों व छालों का देशज ज्ञान होता है। विभिन्न तरह के बड़े-बड़े व छोटे से छोटे बीमारियों का इलाज अपने आस-पास में पाये जाने वाले जंगली पेड़-पौधों के जड़ी-बूटियों व छालों से इलाज करने की प्रथाएं पायी जाती है। बैगा समुदाय में बड़े से बड़े बीमारी चाहे स्त्री रोग से संबंधित बीमारी, दांत, कान, नाक, आँख से संबंधित सामान्य बीमारी, बड़े रोगों एवं जंगली जानवरों व अपने घरों में पालतू जानवरों से संबंधित बीमारी के लिए भी अपने आस-पास के जंगलों से प्राप्त जड़ी-बूटियों व छालों के उपयोग करके बीमारी को दूर करने की प्रथाएं पायी जा रही है।

बीमार व्यक्ति को जड़ी देने से पूर्व जड़ी-बूटियों व छालों को मंत्रों से जगाया जाता है, तत्यश्चात देवार, ओझा, गुनिया उस जड़ी को पीस कर पानी या महुआ फूल के दारू के साथ पिलाया जाता है। देवार दवाई का खुराक रोगी को बीमारी के अनुसार दिया जाता है। यदि रोगी को लम्बी बीमारी है तो उसे ज्यादा समय की दवाई दिया जाता है। देवार/ गुनिया /ओझा जड़ी-बूटियों व छालों को जगाते समय एक नरियल, सरई लासा के धूप, एक बोतल महुआ फूल से बनी दारू भेंट के रूप में दिया जाता है। चिकित्सक देवार बिना जगाये जड़ी-बूटी काम नहीं करती है। ऐसा बैगा चिकित्सक देवार, गुनिया, ओझा का मानना है। कुछ ऐसे भी जड़ी-बूटी है, जो बीमारी होने पर तुरंत रोगी को दे दिया जाता है। जिससे बीमारी अधिक बढ़ने की संभावना नहीं होती है उसके तुरंत बाद फिर विधिवत रूप से चिकित्सक देवार, गुनिया ओझा द्वारा इलाज करने का काम किया जाता हैं।

निष्कर्ष:

प्रागैतिहासिक काल से मानव ने अपने स्थानीय वातावरण में मौजूद विभिन्न वनस्पतियों का प्रयोग अपने औषधीय उद्देश्यों केलिए करता आया है। भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक बैगा जनजाति अपने नृचिकित्सा पद्धति के लिए विशेष रूप प्रसिद्ध है। बैगा जनजाति का उनके स्थानीय जगल से घनिष्ठ संबंध मिलता है। सोनभद्र जिले के घोरावल, म्योरपुर एवं बभनी ब्लॉक में रहने वाली बैगा समुदाय में विभिन्न वनस्पतियों के प्रति उनका देशज ज्ञान देखने को मिलता है, जिसका प्रयोग विभिन्न पारंपरिक नृचिकित्सा के रूप में कराते हैं। अवश्यकता इतनी है कि बैगा जनजाति में मौजूद विभिन्न नृचिकित्सा पद्धतियों को संग्रहीत करना होगा तथा देशज नृचिकित्सा विशेषज्ञों को इनकी पहचान दिलाना होगा।

संदर्भ :

1. Bhasin, V. (2007). Medical Anthropology: Healing Practices in Contemporary Sikkim. Delhi. India. (Pp. 56-64) in V. Bhasin and M. K. Bhasin (eds), *Anthropology Today: Trends, scope and Applications*. Delhi: Kamla-Raj Enterprises
2. Chopra, R.N., S.L. Nayar and I.C. Chopra, (1958). The Glossary of Indian Medicinal plants. CSIR. New Delhi
3. Clements, F.E. (1932) Primitive Concepts of Disease. Anthropology Publication: University of California in American Archaeology and Ethnology. 32: 185-252
4. Tiwari, S. K. (1997). Baigas of Central India: habitat and culture of a primitive tribe. New Delhi: Anmol Publication.
5. Jain, S.K. (2002). Bibliography of Indian Ethnobotany.Jodhpur: Scientific Pblisher.
6. Joshi, P.C. and Anil Mahajan (1990). Studies in Medical Anthropology. New Delhi: Reliance publishing house.
7. Jose Boben, K. (1998). Tribal Medicine: Continuity and Change. New Delhi: A.P.H. Publishing Corporation.
8. Kleinman. A. (1980). Patients and Healers in the Context of Culture: An Exploration of the Borderland between Anthropology, Medicine and Psychiatry. Berkeley: University of California Press.
9. Mead, Margaret (1947). The Concept of Culturaland the Psychosomatic approach. psychiatry: 57-76. Reprinted in Haring, Douglas (ed) Syracuse: Syracuse University Press.
10. Boas, Franz. (1920). The methods of ethnology. American Anthropologist. Vol. 22 (4): 311-321.
11. Jadhv, Dinesh. (2008). Medicinal plants of Madhya Pradesh & Chhattisgarh. Delhi: Daya publishing house.
12. Kumar, K. Anil. (2006). Ethno-medicine, indigenous healers and disease healing practices among the Kolam of Adilabad district of Andhra Pradesh. Journal of social anthropology, vol.3No.1 (june-2006): 75-88.
13. Russell, R.V. and Heera Lal. (1916). The Tribes and Caste of Central provision of India, Macmillan & Co, London.
14. पटेल, जी. पी. (1992). बैगा जनजाति का मानव शास्त्री अध्ययन जिला मंडला. भोपाल: आदिम जाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान, म.प्र. शासन
15. बेदी, रमेश. (2003). जंगल की जड़ी-बूटियाँ. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.

Received: 05.02.2026 | Accepted: 10.02.2026 | Published: 30.03.2026

Retelling Myths, Rewriting Identities: Queer Voices and Resistance in Devdutt Pattanaik's Work

DR. NEERU VARSHNEY*
pradipniru@gmail.com

Abstract

The resurgence of interest in Indian mythology over the last two decades has been driven by authors who reinterpret canonical narratives for modern contexts. Among them, Devdutt Pattanaik stands out for his prolific engagement with the intersections of gender, sexuality, and identity. His mythological retellings—from Shikhandi: And Other Queer Tales They Don't Tell You to his essays and columns—foreground stories of gender fluidity and sexual variance that disrupt normative, heteronormative readings of Indian epics and lore. The present research analyzes how Pattanaik strategically retrieves marginalized queer voices from ancient texts and reframes them as sites of resistance. It situates his work at the confluence of mythological scholarship, queer theory, and cultural critique, examining how myth retelling becomes a political act of challenging dominant assumptions about gender and sexuality.

This paper addresses two central questions: (1) How does Pattanaik's interpretation of queer narratives resist homogenous cultural narratives about India's past? (2) To what extent does myth retelling function as a tool for rewriting identities both ancient and contemporary? Using textual analysis, queer theoretical frameworks, and selective comparative study with traditional myth interpretations, this research demonstrates that Pattanaik not only recovers neglected narratives but recodes them to destabilize modern heteronormative claims about Indian culture. The findings show that while Pattanaik's work reintroduces rich, fluid understandings of gender embedded in ancient lore, it also faces scholarly pushback and interpretive challenges. In conclusion, this paper argues that Pattanaik's mythological retellings serve both as acts of cultural reclamation and as interventions in contemporary debates about sexuality, identity, and resistance.

Keywords: *Myth Retelling, Queer Narratives, Gender Fluidity, Identity Reconstruction, Cultural Resistance, Devdutt Pattanaik*

Introduction

Mythology is not static; it is traditionally performed, retold, and reimagined to reflect the needs of changing societies. Modern retellingsoften become mediators between past narratives and contemporary identity formations. In India, mythic texts like the Mahabharata, Ramayana, and

* **Department of English, S. V. College , Aligarh (U. P.)**

Puranas contain multiple references—implicit and explicit—to gender variants and non-normative sexualities, which have been marginalized or suppressed in dominant interpretations over time. Devdutt Pattanaik is one of the most visible figures working at this intersection. His methodology involves retrieval, reinterpretation, and illustration of mythic narratives, especially those that reflect the fluidity of gender and sexuality in Indic traditions.

Mythology has long functioned as a cultural archive through which societies transmit values, identities, and normative frameworks across generations. Far from being static or monolithic, myths evolve through retellings that reflect changing social realities and ideological positions. In contemporary Indian literature and cultural discourse, mythological reinterpretation has emerged as a powerful tool for interrogating entrenched assumptions about gender, sexuality, and identity. Within this context, Devdutt Pattanaik's works occupy a distinctive position for their explicit engagement with queer narratives embedded in ancient Indian myths. By foregrounding figures and stories traditionally marginalized or silenced in canonical interpretations, Pattanaik challenges dominant heteronormative readings of Indian mythology and opens up alternative spaces for identity formation and resistance.

Historically, Indian mythological texts such as the *Mahabharata*, *Ramayana*, and various *Puranas* contain numerous representations of gender fluidity, transformation, and non-normative desire. Characters like Shikhandi, Ila, Ardhanarishvara, and Mohini complicate binary understandings of gender and sexuality, suggesting a cultural imagination that accommodated multiplicity and fluidity. However, over time, colonial moral frameworks and postcolonial nationalist ideologies have contributed to the selective interpretation and erasure of these queer elements. As a result, contemporary discourses often portray queerness as incompatible with "Indian tradition," reinforcing the false notion that non-heteronormative identities are modern or Western impositions.

Devdutt Pattanaik's mythological retellings directly contest such assumptions by recovering and reinterpreting queer voices from ancient narratives. Through works such as *Shikhandi: And Other Queer Tales They Don't Tell You* and *Gender and Sexuality in Indian Mythology*, Pattanaik emphasizes that queerness has always been an integral part of Indian storytelling traditions. His approach to myth is neither strictly academic nor purely creative; instead, it occupies an interdisciplinary space that blends storytelling, cultural analysis, and visual representation. By retelling myths through a queer lens, Pattanaik reframes mythology as a living discourse capable of addressing contemporary concerns related to identity, belonging, and resistance.

This process of retelling functions as an act of cultural and political resistance. By reclaiming suppressed narratives, Pattanaik destabilizes rigid gender binaries and challenges the authority of orthodox interpretations that seek to naturalize heterosexuality and fixed gender roles. His work underscores the idea that identity is not immutable but is continuously shaped through narrative, interpretation, and power. In doing so, Pattanaik not only rewrites mythic identities but also provides a framework for contemporary queer individuals to locate themselves within a historically rooted cultural tradition. Thus, the retelling of myths becomes a means of rewriting identities,

fostering visibility, and asserting the legitimacy of queer existence within the broader Indian cultural imagination.

Aim and Scope of the Paper

This paper examines Pattanaik's contribution to queer mythological narratives, focusing on how his retellings function to recuperate marginalized voices and resist rigid, modern interpretations of gender and sexuality. Through close reading of key texts and critical engagement with secondary scholarship, this research attempts to articulate the implications of Pattanaik's work for literary studies, gender studies, and cultural politics.

The paper draws on queer theory, including concepts of identity as performance and fluidity (e.g., Judith Butler), as well as myth criticism that sees myth not merely as literature but as social text and cultural practice. This framework allows us to see Pattanaik's work not just as storytelling but as cultural intervention that challenges normative epistemologies.

Literature Review

Ambili (2021 The Queerness in Shikhandi examines how Pattanaik's Shikhandi & Other Queer Tales They Don't Tell You foregrounds queerness embedded in mythological narratives, such as Shikhandi's gender fluidity. This study interprets characters beyond binary categories, showing how Pattanaik challenges normative readings of the Mahabharata and recognizes queer identities as historically present rather than modern imports.

Boral (2021) Affirming Queer Identities in Pattanaik's Shikhandi traces queer elements in Indian mythology through Pattanaik's text, arguing that ancient narratives encoded non-normative gender and sexual identities that later orthodoxy obscured. This work highlights Pattanaik's contribution to recovering suppressed queer voices.

Sunil, Vyshnavi & Indu (2021) Inspecting Myth, Queer, and Contemporaneity situates Pattanaik's Shikhandi within broader cultural debates, demonstrating how mythological queer stories provide frameworks for discussing modern gender parity, feminism, and resistance to patriarchy. It argues that Pattanaik's retellings transform myth into a critical tool for contemporary queer discourse.

Of Hope and Acceptance (2018) Irona Bhaduri's reading of Shikhandi articulates how Pattanaik's narratives on gender and sexuality subvert patriarchal norms and argue for inclusion. The study shows that queer stories in ancient texts question entrenched gender binaries and that Pattanaik's interpretative strategy links ancient myth to contemporary struggles for equality.

Semantic Analysis (2025) This paper uses semantic analysis to highlight how Shikhandi deconstructs linguistic and narrative binaries around gender and sexuality. It reveals how Pattanaik's retellings operate at the level of metaphor and discourse to expand identity categories and promote intersectional understanding.

IJRAR (2023) A Queer Perspective on Mahabharata Retellings analyzes Pattanaik's portrayal of Shikhandi and other figures, showing that his works challenge stereotypes and foreground

marginalized voices. The paper emphasizes how Pattanaik's renditions resist gender supremacy and create space for non-binary narratives in epic literature.

JETIR (2019/2020) A Reading of Shikhandi & Other Tales looks at suppressed queer narratives in ancient lore and explores how Pattanaik's retellings empower voices marginalized by mainstream readings of myth. It argues that presenting queer elements as natural counters social stigma and binary gender norms.

IJEAST (2020) Depiction of Queerness in Shikhandi offers a descriptive overview of Pattanaik's collection, underscoring how queer tales in Hindu mythology challenge canonical narrative structures and invite readers to reassess normative definitions of gender and sexuality.

Turkish Journal / Turcomat (2021) Myth, Queer, and Contemporaneity connects Pattanaik's retellings of queer tales to present-day social issues. It discusses how myth serves as a reflective surface for contemporary societal norms, including patriarchy and queer resistance, making Shikhandi a key text in cultural critique.

ResearchCulturesociety.org (2021) Analysis of Sacred Lore in Pattanaik's Works explores Pattanaik's uncovering of Indian myths depicting same-sex behavior, cross-dressing, and gender transformation. It shows how Pattanaik normalizes queer behaviors historically and positions them against modern stigma.

Boral & Vashisht (2021) Referenced in secondary literature on Pattanaik's Shikhandi, this research highlights how short mythic narratives reveal queerness as part of Indian mythic imagination rather than a deviation, reinforcing Pattanaik's framing of queer identities as historically valid.

Times of India/Sakshi Arora (2024) While not a strictly academic journal article, this research interpretation of Shikhandi as a trans-man contextualizes Pattanaik's narrative role in reclaiming marginalized gender identities. It shows how Pattanaik addresses misrepresentations and challenges heteronormative interpretations of mythic characters like Shikhandi.

Devdutt Pattanaik: The Mythologist as Queer Storyteller

Devdutt Pattanaik occupies a unique position in contemporary Indian cultural discourse as a mythologist who consciously blends scholarship, storytelling, and personal identity. His authorial position is shaped not only by his extensive engagement with Indian mythological traditions but also by his openness about his queer identity, which significantly informs his interpretative approach. Unlike traditional myth scholars who often present myths as fixed moral or religious texts, Pattanaik treats mythology as a living, evolving body of narratives that reflect social values, fears, and aspirations. His public persona—as a prolific writer, illustrator, columnist, and speaker—allows him to reach both academic and popular audiences. By positioning himself at the intersection of myth, culture, and sexuality, Pattanaik challenges the authority of orthodox interpretations that marginalize non-normative identities. His visibility as a queer storyteller itself becomes an act of resistance, asserting that queer perspectives are not external to Indian culture but emerge organically from within its mythological traditions.

Pattanaik's method of myth retelling is central to his role as a queer storyteller. Rather than adhering to a single authoritative version of a myth, he draws from multiple textual, oral, and regional variants, emphasizing the plurality inherent in Indian storytelling traditions. This approach allows him to foreground marginalized characters and alternative readings that have often been ignored in mainstream retellings. His use of simple language, anecdotal narration, and visual illustrations makes complex ideas about gender and sexuality accessible to a wide readership. Importantly, Pattanaik does not impose modern identity labels anachronistically onto ancient figures; instead, he highlights patterns of gender fluidity, transformation, and ambiguity already present in the narratives. Through this method, myth becomes a mirror reflecting the diversity of human experience rather than a rigid framework enforcing moral conformity.

Queer mythology in Pattanaik's work functions as a revisionist narrative that actively resists heteronormative and patriarchal interpretations of the past. By retelling stories of figures such as Shikhandi, Ila, and the god Vishnu in his Mohini form, Pattanaik reclaims mythic spaces for queer existence and challenges the assumption that Indian tradition is inherently binary or exclusionary. These revisionist narratives do not merely recover forgotten stories; they reinterpret them to question contemporary social norms and power structures. Pattanaik's queer retellings thus serve a dual purpose: they validate the historical presence of gender and sexual diversity in Indian culture while also offering a framework for contemporary resistance against discrimination and exclusion. In this way, Devdutt Pattanaik emerges not just as a mythologist but as a cultural mediator who uses storytelling to rewrite identities, expand inclusivity, and reaffirm the legitimacy of queer voices within the Indian mythological imagination.

Queer Figures and Fluidity in Pattanaik's Retellings

Queer figures and the theme of fluidity form the core of Devdutt Pattanaik's mythological retellings, through which he foregrounds identities that resist rigid categorizations of gender and sexuality. Among these, the character of Shikhandi from the *Mahabharata* emerges as one of the most powerful symbols of queer resistance. Born as Amba and later reborn as Shikhandini, Shikhandi is socially raised as male despite being assigned female at birth and subsequently undergoes a physical transformation that aligns the body with the chosen gender identity. Pattanaik's retelling emphasizes not merely the biological transformation but the social recognition of Shikhandi's masculinity, highlighting how gender in myth is constructed through social roles, duties, and acceptance rather than anatomy alone. Shikhandi's participation in the Kurukshetra war and pivotal role in the fall of Bhishma position the character as an agent of historical change, thereby challenging the marginalization of queer identities. Through Shikhandi, Pattanaik presents queerness not as deviation but as resistance to imposed norms and as a legitimate force within epic history.

Beyond Shikhandi, Pattanaik draws attention to multiple narratives of gender transformation that further destabilize binary conceptions of identity. The story of Sudyumna, who transforms into Ila due to a divine curse, exemplifies cyclical and fluid gender identity, as the character alternates between male and female forms. Rather than framing this transformation as punishment or abnormality, Pattanaik interprets it as a reflection of a worldview in which gender is situational and

mutable. Similarly, the figure of Budh, often depicted with indeterminate or ambiguous gender, resists clear classification within male or female categories. Pattanaik's readings of these myths suggest that ancient Indian narratives acknowledged gender variance as an intrinsic aspect of existence. These stories collectively complicate modern assumptions that view gender strictly as a biological binary, instead presenting identity as fluid, contextual, and relational.

Divine figures in Pattanaik's retellings further expand the scope of mythic queerness by locating gender fluidity within the realm of the sacred. The myth of Vishnu assuming the female form of Mohini exemplifies divine fluidity, where gender transformation is neither stigmatized nor permanent but undertaken with purpose and agency. Mohini's role in enchanting demons or facilitating cosmic balance illustrates how gender change becomes a strategic and creative force within the divine order. By emphasizing such narratives, Pattanaik queers the concept of divinity itself, suggesting that the divine transcends human gender norms and limitations. This portrayal challenges rigid theological interpretations and affirms that fluidity is not only human but cosmic. Together, these queer figures and narratives of transformation in Pattanaik's retellings reinforce the idea that Indian mythology historically accommodated diverse expressions of identity, offering a powerful counter-narrative to contemporary exclusions and reaffirming queerness as integral to cultural and mythic traditions.

The Politics of Myth and Identity in Pattanaik's Work

Myth functions as a powerful form of cultural resistance when its retelling actively challenges dominant sociopolitical narratives and reclaims marginalized identities. In the contemporary Indian context, Devdutt Pattanaik's reinterpretation of myth becomes inherently political because it contests the widespread assumption that queerness is alien to Indian culture or imported from the West. By foregrounding stories of gender fluidity, transformation, and non-normative desire found in ancient texts, Pattanaik demonstrates that premodern Indian society possessed a far more nuanced understanding of identity than modern heteronormative frameworks allow. His retellings disrupt nationalist and conservative discourses that selectively sanitize mythology to reinforce rigid gender roles. In this way, myth is transformed from a tool of cultural conformity into a site of resistance, enabling alternative histories and identities to surface within the collective imagination.

Pattanaik's work also aligns closely with queer theory and postcolonial critique by interrogating the colonial imposition of binary gender norms. Postcolonial scholars have argued that British colonial governance, combined with Victorian morality, significantly reshaped Indian attitudes toward sexuality, leading to the criminalization and stigmatization of non-heteronormative identities. Pattanaik's queering of Indic mythology exposes this historical rupture by illustrating that ancient narratives accommodated ambiguity and fluidity rather than enforcing fixed categories. His approach resonates with queer theoretical ideas that view gender and sexuality as socially constructed and performative rather than biologically determined. By situating queer identities within indigenous mythological frameworks, Pattanaik challenges both colonial epistemologies and postcolonial nationalist claims that equate tradition with moral rigidity. His retellings thus operate as

counter-discourses that resist the homogenization of Indian cultural identity and reaffirm plurality as a foundational cultural principle.

Despite the transformative potential of Pattanaik's work, it has also been met with critical scrutiny, which is essential to a balanced academic evaluation. Some scholars and traditionalists argue that Pattanaik's interpretations risk oversimplifying complex texts or selectively reading myths to align with contemporary ideological concerns. Critics contend that his accessible narrative style and emphasis on symbolism may blur the distinction between scholarly analysis and creative reinterpretation, raising questions about textual authenticity and historical accuracy. Others argue that applying modern queer frameworks to ancient narratives may result in anachronistic readings that overlook historical context. However, these critiques also underscore the central tension inherent in myth retelling: mythology itself has never been fixed or singular but has always been shaped by interpretation, context, and audience. Pattanaik's work, therefore, should be understood not as definitive exegesis but as an interpretive intervention that invites dialogue and debate. By provoking both admiration and criticism, his retellings reaffirm the dynamic nature of myth as a cultural force—one capable of resisting oppression, questioning authority, and continually redefining identity in response to evolving social realities.

Conclusion

The retelling of myths is never a neutral act; it is a process deeply entwined with questions of power, identity, and cultural memory. In *Retelling Myths, Rewriting Identities: Queer Voices and Resistance in Devdutt Pattanaik's Works*, this study has demonstrated how Devdutt Pattanaik's engagement with Indian mythology functions as a transformative cultural practice that challenges dominant heteronormative narratives and reclaims marginalized queer identities. By revisiting ancient myths through a queer lens, Pattanaik reveals that gender fluidity, transformation, and non-binary identities are not modern disruptions but integral elements of India's mythological imagination.

Pattanaik's retellings foreground figures such as Shikhandi, Ila, and Mohini to destabilize rigid binaries of gender and sexuality that have come to dominate contemporary cultural discourse. These narratives emphasize identity as fluid, performative, and socially constructed rather than fixed or biologically determined. Through such reinterpretations, Pattanaik resists the selective erasures imposed by colonial morality and postcolonial nationalist ideologies that sought to sanitize mythology in the service of cultural conformity. His work thus challenges the myth of a monolithic "traditional" Indian culture and instead affirms plurality as a foundational cultural principle.

Moreover, Pattanaik's position as a queer mythologist enables him to bridge the gap between ancient narratives and contemporary lived realities. His accessible storytelling style, combined with symbolic interpretation, allows myth to function as a living discourse rather than a static relic of the past. In doing so, Pattanaik provides contemporary queer individuals with a culturally rooted framework through which they can locate their identities, fostering a sense of historical belonging

and legitimacy. Myth, in his hands, becomes a site of resistance where suppressed voices are reclaimed and rearticulated in defiance of exclusionary norms.

At the same time, this study acknowledges the critiques surrounding Pattanaik's work, particularly concerns about anachronism and interpretive selectivity. However, such critiques underscore the inherently dynamic nature of mythology, which has always evolved through retelling and reinterpretation. Pattanaik's interventions should therefore be understood not as definitive readings but as dialogic acts that invite critical engagement and reinterpretation.

In conclusion, Devdutt Pattanaik's mythological retellings play a crucial role in rewriting identities and asserting queer presence within Indian cultural narratives. By queering mythology, he not only resists dominant structures of power but also reimagines tradition itself as inclusive, fluid, and open-ended. His work reaffirms myth as a potent cultural tool—one capable of challenging oppression, nurturing resistance, and reshaping collective understandings of identity in an ever-evolving social landscape.

References

Advanced International Journal for Research. (2025). Devdutt Pattanaik's reinterpretation of Indian mythology through gender and sexuality.

Ashwath, J., & Padmanabhan, B. (2025). An exploration of post-human and queerness in Devdutt Pattanaik's *Shikhandi and other tales they don't tell you*. *The Criterion: An International Journal in English*.

Barman, S. (2019). Caste, gender, and migration: Reconstructing East Bengali displacement. *Journal of South Asian Studies, 45*(2), 122–140.

Bhattacharya, J., & Chan, V. (2023). The Bengali communities in Singapore: Cultural memory, migration, and identity. *Journal of Asian Migration, 5*(1), 1–22.

Cohen, C. J. (1997). Punks, bulldaggers, and welfare queens: The radical potential of queer politics? *GLQ: A Journal of Lesbian and Gay Studies, 3*(4), 437–465.

Guest, A. M. (2025). The queerness in Shikhandi: Concerning Devdutt Pattanaik's *Shikhandi and other queer tales they don't tell you*. *International Journal of English Language, Literature and Humanities*.

Kaur, P., & Tiwari, O. P. (2025). Unveiling hidden narratives: Exploring gender fluidity and forgotten myths in Devdutt Pattanaik's *Shikhandi & other tales they don't tell you*. *The Criterion: An International Journal in English*.

Pattanaik, D. (2009). Queer sexuality and Indian culture. *The Times of India*.

Pattanaik, D. (2014). Queer enchantment. *Mid-Day*.

Pattanaik, D. (2017). Devdutt Pattanaik reveals the queer history hidden in Indian mythology. *YouthKiAwaaz*.

Roy, B. S. (2025). Reimagining dharma: The major themes in Devdutt Pattanaik's mythological corpus. *International Journal of Research*.

Sunil, G., & Vyshnavi, I. (2021). Inspecting myth, queer, and contemporaneity in Devdutt Pattanaik's selected stories. *Turkish Journal of Computer and Mathematics Education*.

Multilingualism in Education in Context of NEP 2020: A Review

DIVYA*

sayadev1996@gmail.com

Abstract

Multilingualism refers to a condition through which the multiple languages coexist in a particular region or a country for their formal recognition. This study involves a review of previous conducted studies, government documents and policies. There were many articles available of NEP 2020 on Google Scholar Search, but in this study, only the most relative articles with the title of this study were reviewed to find the results. NEP (2020) has a multidisciplinary approach and multilingual approach. Multilingual approach enables learners to become a global citizen. There are some challenges in multilingual approach education related to teacher training, availability required resource, language proficiency gap and planning and implementation gap. There are some challenges in pedagogical, societal, and infrastructural levels too.

Keywords: *NEP 2020, Pedagogy, Constitution, English, India*

Introduction

Multilingualism refers to a condition through which the multiple languages coexist in a particular region or a country for their formal recognition and these languages, offers "varieties of language", for communication among different societies or groups. Globalization is a key factor in the emergence of multilingualism. It establishes a good communication and understanding among different groups, preserve culture and develop different aspects in societies. Multilingualism in fact, strengthen the healthy relationships and works as a bridge gap among different communities, for inclusion and better understanding (Bashir & Jan, 2024).

The National Education Policy (2020) have changed Indian education system from 10+2+3 into 5+3+3+4. After National Policy on Education 1986, it has restructured education system as Early Childhood Care and Education (ECCE) from age 3 is also included in NEP and admission age of previous policies in formal schooling age six years has been replaced and such students will be enrolled in ‘preparatory class or Balavatika’ before entering in Class 1 and teachers are assumed as centre of whole teaching-learning process and ECCE-qualified teachers will be appointed and will be allowed to teach through mother tongue/regional language or local language for the development of the learners. The school education will be as per needs of the learners respectively for 3-8, 8-11, 11-14, and 14-18 years group students. The ‘Foundational Stage’ will be in two parts, i.e. 3 years of

***Independent Researcher, Sirsa, Haryana**

(M.A., U.G.C. N.E.T. English, M.Ed. J.B.T.)

Anganwadi/pre-school + 2 years in primary school in Grades 1-2; both together will cover ages 3-8). 'Preparatory Stage' will involve Grades 3-5 and will cover ages 8-11). 'Middle Stage will involve Grades 6-8 and will cover 11-14 years age group. 'Secondary Stage' will involve Grades 9-12 in two phases, that is 9 grade and 10 grade in the first and 11 grade and 12 grade in the second and will cover 14-18 years age group) (Govt of India, 2020).

Govt. of India (2025) explained that multilingual approach has been identified in the country as apex bodies like AICTE is providing engineering textbooks in 12 Indian languages, while MBA, MBBS, and B.Tech courses are also available in Hindi. The Bar Council of India (BCI) is using bilingual instruction, and 40 institutes across 10 states offer technical courses in Indian languages. The first Marathi-medium engineering batch from 'Pimpri Chinchwad College of Engineering (Pune)' graduated successfully. National level examinations such as- NET, CTET, NEET, JEE, CUET, and SSC are now conducted in different 12 Indian languages. Further in series, the University Grant Commission allows students to write examinations in local languages, irrespective of the medium of instruction. The Commission for Scientific Technical Terminology has made over 20 lakh terminologies in 22 Indian languages publicly available. Technological advancements include AI-based translation tools developed by the Anuvadini Foundation through AICTE and the UDAAN Project Team through Indian Institute of Technology, Bombay.

NEP 2020 interprets multilingualism from a monolingual perspective and it focuses on connecting other languages to the mother tongue (Bala, 2024; Mahapatraa & Anderson, 2022; & Pandey & Ozarkar, 2024). NEP consist of paragraphs from 4.11 to 4.22 as 'Multilingualism and the power of language for the development of a variety of instructional languages as per need of the learners (Sharma, 2021). Language is a basic tool for attaining human potential and for the achievement of economic and social mobility, justice, equality and inclusion (Nag, 2024).

NEP emphasizes areas of medium of instruction, classical languages, foreign languages, and Indian Sign Language. There are 22 languages mentioned in the Eighth Schedule of the Constitution of India. Every language is equally important and represents unique cultural and regional aspects, showing unity in diversity. NEP (2020) focuses on the holistic development of learners through a multidisciplinary approach and advocates experimental learning, allowing learners to select subjects of their own choice (Mishra & Mishra, 2024).

Significance of The Study

National Education Policy (2020) has added learners of below age six years, even it was seen that learners of age six years were admitted in formal schooling earlier. Child knows his mother tongue well, so it has been clearly mentioned in the policy that students at primary and pre-primary levels must be taught in their mother tongue, even it should continue till middle school and may continue in further education too. Mother tongue provides a good base for learning. In Indian context three language formula has been suggested and followed successfully. Now a days it can be seen that mother tongue is taught as the first language, with two other native languages from 'The constitutional schedule' are selected as second and third language. English is the first choice as the international and foreign language, yet other international languages are also offered to learn. NEP

(2020) suggests that Indian ancient and native languages are sources of vast knowledge, so they are required to learn, even it can be seen that Sanskrit alone has a wider scope in every field and it is also recommended to learn. Indian knowledge system has a clear focus in the development of every aspect of Indian culture and existence. Ancient languages are encouraged in this system and the scholars are invited for the development of such languages and large amounts of fellowships/scholarships are awarded for the development of Indian knowledge.

NEP 2020 enables a multilingual approach within the framework of NEP 2020, by equipping students for success in a global level. There are many opportunities in NEP 2020 which can enable the learners to learn at a peak level (Srivastava et al., 2024). Yet there are some controversial issues when Maharashtra government decided to select Hindi as compulsory language in the state both public and political parties opposed it, so multilingual approach should be flexible, inclusive, and culturally supportive (Undirwade, 2025).

Objectives

1. To study multilingualism in education through NEP 2020.

Research Questions

1. What are characteristics of multilingualism in education through NEP 2020?

Research Methodology

This study involves a review of previous conducted studies, government documents and policies. There were many articles available of NEP 2020 on Google Scholar Search, but in this study, only the most relative articles with the title of this study were reviewed to find the results.

Multilingualism in Education in Context of NEP 2020

Chakraborty et al. (2025) reported that in early education, mother tongue and other regional languages play a significant role in the cognitive development, cultural rootedness, and inclusive learning in India's diverse linguistic landscape. Three language formula in NEP 2020 tries to establish a balance for national integration, global competitiveness, and local relevance with flexibility. This linguistic landscape depends on resource development, effective teacher training, and awareness of local aims and objectives.

Mehto (2025) reported that there were challenges with the multilingual approach of NEP 2020. The challenges were basically related to regional disparities, shortage of teaching and learning materials, lack of trained teachers, structural and semantical differentiation and parental preferences. These challenges can be minimized by localized implementation strategies, strengthening teacher training, and community engagement.

Pandey (2025) conducted a study on a sample of 1,200 educators. It was found that NEP 2020 promotes mother tongue instruction, multilingual curriculum design, and regional language in the

improvement of learning outcomes, cultural identity, and social cohesion. There were some challenges related to the resource constraints, teacher training, sociopolitical, and implementation.

Singh (2025) reported that multilingualism is an important aspect of NEP 2020 but, it faces many challenges like- Shortage of multilingual teachers, Resource constraints in rural and public schools, sociocultural resistance to multilingual education, policy inconsistencies and political resistance, and challenges for migrant and linguistic minority communities. Further, it was recommended that these challenges can be overcome by expanding teacher training programs, developing comprehensive multilingual curricula, engaging communities, and ensuring policy flexibility in schools.

Bashir and Jan (2024) found that multilingualism is important due to existence of many languages in the country and NEP 2020 through K Kasturirangan Committee, has considered it while teaching languages. NEP introduces learners to the linguistic diversity of India and enables to know the rich cultural heritage of the nation and promotes multilingualism. Regional and international languages are equally important in NEP 2020 for holistic and well-rounded learning experiences for learners. Multilingual develops cognitive abilities like development of problem-solving abilities and increases the creativity of students. There are some challenges in this regard like- a scarcity of textbooks and the unavailability of well-experienced and skilled language teachers.

Saini (2024) reported that most of the students consider that multilingual instruction is effective in the classroom. Faculty Training and Regional Language has an impact on English proficiency. Multilingual Instruction result in improvement in comprehension, awareness of different cultures and enhanced cognitive skills. There are some challenges like teacher training, availability required resource, language proficiency gap and planning and implementation gap.

Sastry and Ghosh (2023) explained that three language formula has been incorporated in NEP 2020 for the development of better learning conditions among learners. There are challenges of multilingual aspect based on pedagogical, societal, and infrastructural challenges.

Findings

NEP 2020 has a c in teaching-learning. Following results were obtained from reviews of related studies

1. NEP (2020) has a multidisciplinary approach and multilingual approach.
2. Multilingual approach enables learners to become a global citizen.
3. There are some challenges in multilingual approach education related to teacher training, availability required resource, language proficiency gap and planning and implementation gap. There are some challenges in pedagogical, societal, and infrastructural levels too.

Delimitations

1. This study consisted on only review of previous conducted studies.
2. This study involved a review a few highly related articles.

Suggestion For Further Research

1. In future, some quantitative and qualitative data can be used for study.
2. In further studies some statistical tools can be applied for the analysis of the results.

References: -

Bala, S. (2024). Fostering multicultural education in India: prospects under NEP 2020. *Jagannath University Journal of Research and Review, 01 (01),* 42-46. https://www.jagannathuniversityncr.ac.in/assets/docs/journal/Suman_Bala_Fostering_Multicultural_Education_in_India.pdf

Bashir, R., & Jan, T. (2024). Multilingualism: An insight into the relevance and implementation of NEP 2020 recommendations. *The International Journal of Indian Psychology, 12 (1),* 240-245. DOI: 10.25215/1201.024

Chakraborty, S., Acharya, J., & Rit, S. (2025). Embracing linguistic diversity: Multilingualism in India's NEP 2020 framework. *Multidisciplinary Research and Innovation*, 168-173.

Govt of India. (2020). National Education Policy 2020. https://mamrr.com/uploads/articles/6911e3ecbaca3_1762780140.pdf

Govt. of India. (2025). Promotion of multilingualism under NEP 2020. https://sansad.in/getFile/loksabhaquestions/annex/185/AU2510_NGt97E.pdf?source=pqals

Mahapatra, S. K., & Anderson, J. (2022). Languages for learning: A framework for implementing India's language-in-education policy. *Current Issues in Language Planning. Advance online publication*. https://doi.org/10.1080/14664208.2022.2037292

Mehto, R. R. (2025). Multilingualism in India: NEP 2020's vision and challenges. *Vaak Manthan, 10 (1),* 30-34. https://selindia.org/wp-content/uploads/2025/01/04_Multilingualism-in-India.pdf

Mishra, S. K., & Mishra, P. (2024). National education policy 2020 and multilingualism in India. *International Journal of English Literature and Social Sciences, 9 (1),* 329-332. DOI: 10.22161/ijels

Nag, (2024). Language as a tool for inclusive and equitable school education: A critical review of NEP 2020. *Contemporary Education Dialogue, 21 (2).* https://doi.org/10.1177/09731849241253398

Pandey, A., & Ozarkar, R. (2024). Reworking the aesthetics of language use: The multilingual challenge for NEP 2020. *Contemporary Education Dialogue, 22 (1).* https://doi.org/10.1177/09731849241273730

Pandey, S. K. (2025). Language policy and national integration: A case study of NEP 2020. *Multilingual and Multidisciplinary Research Review, 1 (3),* 219-229. https://mamrr.com/uploads/articles/6911e3ecbaca3_1762780140.pdf

Saini, M. (2024). Language diversity: Perceptions of students towards multilingual instruction in higher education pedagogy under NEP 2020. *Indian Journal of Language and Linguistics, 5 (4),* 33-40. DOI: 10.54392/ijll2444

Sastry, A., & Ghosh, N. (2023). Multilingualism and the national education policy 2020: A stakeholder analysis of language implementation challenges. *THE JMC REVIEW An Interdisciplinary Social Science Journal of Criticism, Practice and Theory, 7,* 1-23. https://www.jmc.ac.in/uploads/staticfiles/jmcreview/vol7/1_Amrita%20Sastry_Nivedita%20Ghosh%20The%20JMC%20Review%202023.pdf

Sharma, J. K. (2021). National education policy 2020: Language perspective. *International Journal of Management Research and Social Science, 8 (1), 7-15.* DOI: 10.30726/ijmrss/v8.i1.2021.81003

Singh, A. K. (2025). Multilingual education and NEP 2020: Challenges and opportunities. *Jindal Journal of Public Policy, 8 (2),* 1-23.

Srivastava, R. K., Aleem, M., & Tomar, S. (2024). Bringing multilingualism to school education with NEP 2020. *International Journal of Creative Research Thoughts, 12 (1),* e812-e816.

Undirwade, M. (2025). Maharashtra and the three-language formula: Navigating multilingualism under NEP-2020. *TIJER – INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL, 12 (7),* a771-a774. https://tijer.org/tijer/papers/TIJER2507084.pdf

NEP 2020: A Transformative Vision for Holistic and Inclusive Education in India

Dr. Chitralekha Sahu* **Prof. Chittaranjan Das Adhikary†**
chitralekhasahu92@gmail.com **adhikary@bhu.ac.in**

Abstract

The National Education Policy (NEP) 2020 plans how education in India will change. The strategy aims to change the current education system entirely. It stresses the importance of quality, fairness, inclusion, and holistic development at all stages of education, from early childhood to higher education. NEP 2020 supports learner-centred, flexible, and transdisciplinary education based on ideas like Human Capital Theory, Amartya Sen's Capability Approach, and Paulo Freire's Critical Pedagogy. Some of the most important things are the new 5+3+3+4 curriculum structure, the intense focus on Early Childhood Care and Education (ECCE), Foundational Literacy and Numeracy (FLN), mother tongue-based multilingual education, vocational training, and digital learning platforms like DIKSHA and NDEAR. Reforms in higher education, such as the Academic Bank of Credits (ABC), the National Research Foundation (NRF), and institutional restructuring, are meant to encourage academic mobility and new ideas. The policy also suggests specific steps to ensure that historically under-represented groups access education via programs like Special Education Zones and the Gender Inclusion Fund. There are still problems, including federal implementation, shortages in infrastructure, and opposition to change. However, NEP 2020 gives a clear path for bringing India's education system in line with global development objectives and making society more inclusive, skilled, and empowered.

Keywords:
NEP 2020, Transforming India, Inclusive Education, Holistic Education, Quality Education

Introduction

Education is the key to unlocking people's potential, creating a fair society, and helping the country grow. India is about to become the country with the largest number of young people globally. Everyone must have access to good education to help the economy expand, promote social justice, advance science, and protect culture. National Education Policy (NEP) 2020 ensures everyone can access good education and encourages lifelong learning. This is in line with the UN's Sustainable Development Goal 4. India's education system must be changed so students can study more and enhance their skills (GOI, 2020).

* **Guest Faculty, Govt. Mata Karma Girls College, Mahasamund**

† **Professor, Department of Sociology, BHU, Varanasi**

In a world that is changing quickly because of technology, environmental problems, and global health issues, it is essential to have a trained, interdisciplinary, and flexible workforce. Education has to change from teaching facts by heart to thinking critically, being creative, solving problems, and making moral decisions (Klaassen, 2018; Lindvig et al., 2019).

NEP 2020 wants a curriculum that includes arts, sciences, athletics, morals, and vocational education in a way that is adaptable and works for everyone. It stresses making learning hands-on, question-based, student-centered, and fun. Schools should not just get kids ready for jobs, but also for becoming good citizens who care about others. The approach is based on India's long history of excellent schools, such as Takshashila and Nalanda, and famous intellectuals like Aryabhata, Patanjali, and Thiruvalluvar. It says we should preserve this legacy while making education more current for the 21st century (GOI, 2020).

Teachers are the most important part of this change. NEP 2020 wants to provide them more authority by giving them more training, respect, freedom, and responsibility, as they are responsible for developing future citizens. Much attention is paid to groups often left out or not represented, ensuring that everyone is treated fairly and included, regardless of where they live, what tribe they belong to, what gender they are, or how much money they have. People know that education is a great way to level the playing field and help people go higher in life.

India wants a world-class education system by 2040 that meets global standards and national goals while reflecting the country's variety and customs. The Government of India says that NEP 2020 is not simply a policy but a bold plan for India's educational rebirth. This article looks at how NEP has affected Indian society and how it is helpful for the new generation.

Conceptual and Theoretical Framework

The National Education Policy (NEP) 2020 is based on creating a fair, open, and high-quality education system that encourages people to study for the rest of their lives and helps them reach their full potential. NEP 2020 sees education as a powerful tool for change. Its goal is to provide students with the information, skills, and values they need to succeed in a world that is changing quickly. We must examine the main ideas and theoretical viewpoints supporting the program to understand this vision completely.

Holistic Education: Holistic education is a kind of teaching that goes beyond just getting good grades. It aims to help a person grow in many different ways. It includes growing your mind, emotional intelligence, adjusting to new situations, physical health, creative expression, and spiritual awareness. This point of view recognises that education should be more than just memorising facts and taking tests. It should also teach students to think critically, have strong morals, be emotionally intense, and be curious. Holistic education teaches people to be responsible, caring, and well-rounded citizens by encouraging curiosity, creativity, and personal integrity (Miseliunaite et al., 2021).

Inclusive Education: Inclusive education ensures that all students, no matter their background, talents, or identities, have the same access to good education and the chance to participate in the

system fully. It wants to break down structural obstacles and meet the needs of all types of learners, making education a right instead of a luxury. NEP 2020 stresses how important it is to make sure that historically marginalised groups, such as females, Scheduled Castes (SC), Scheduled Tribes (ST), Other Backward Classes (OBC), tribal populations, and people with disabilities, are treated fairly. The policy aims to provide an environment for every learner that respects their needs and helps them improve academically and personally. It does this via focused interventions, inclusive policies, and adaptable learning approaches (Aneraye, 2024; Bajaj, 2022).

Equity in Education: Equity in education means everyone has a fair chance to have the same educational opportunities and resources so that every student may reach their full potential, no matter their situation. Equity differs from equality since it recognises that students need extra help to overcome systematic obstacles. The NEP 2020 says specific initiatives like scholarships, remedial programs, and financial help are needed to fill the gaps and make things fair for everyone. The policy aims to eliminate differences and ensure all students have meaningful learning experiences by fostering fairness and social justice (Srivastava et al., 2021).

Access to Education: Access to education is how easy it is for students to start, continue, and finish their education. Several things are involved in this, such as having schools and other learning places available, having access to the internet for online learning, making sure that people who speak different languages can understand each other, and making it affordable so that money is not a problem. NEP 2020 stresses access as a key part of fair and inclusive education. It calls for better rural schools, technology in the classroom, and economic support systems to ensure everyone can study, no matter where they live or how much money they have (GOI, 2020).

Quality Education: A well-organised curriculum, good teaching methods, highly qualified instructors, relevant learning outcomes, strong infrastructure, and sound administration are all signs of a good education. It has to be academically excellent, relevant, interesting, and focused on the student. A sound education system encourages students to think for themselves, be flexible, and learn from their mistakes, which helps them overcome problems in the real world. NEP 2020 wants to improve education by changing the curriculum, focusing on hands-on learning, improving teacher training programs, and encouraging research-based teaching that gives students theoretical and practical skills.

Theoretical Groundworks

Several important educational theories that show how learning may help people and society go forward align with the basic ideas of NEP 2020. These points of view help us comprehend the policy's goals and how to implement them.

Human Capital Theory: The Human Capital Theory views education as an investment that enhances individual productivity, which has advantages for the economy and society. Economists like Gary Becker and Theodore Schultz were the first to develop this hypothesis. It says that greater education leads to increased earning potential, better job prospects, and long-term national prosperity (Kang & Mok, 2022; Deming, 2022). NEP 2020 follows this idea by emphasizing skill

development, vocational training, and employability to prepare students for a competitive global workforce. The concept aims to create a foundation of human capital that will drive economic development and innovation by combining technology, entrepreneurship, and lifelong learning.

Capability Approach: The Capability Approach, created by Amartya Sen, changes the emphasis of education from making money to giving people freedom and power. This philosophy says that education should prepare people for jobs and help them live lives they value. It stresses giving people more skills—what they can do and be—through learning, growing, and involvement in their community (Vecchio & Mertins, 2021). This method aligns with NEP 2020, which stresses holistic learning, creativity, ethical awareness, and total well-being. This makes sure that education prepares people not only for work but also for personal and civic satisfaction.

Critical Pedagogy: Paulo Freire greatly supported the Critical Pedagogy method, which sees education as more than just passing on information. It stresses that students should be active co-creators of information instead of just passive receivers. This idea encourages conversation, critical thinking, and social change. Its goal is to teach students to question, think, and act (Smith & Seal, 2021). NEP 2020 supports this point of view by supporting inquiry-based learning, discussion-driven teaching, and student-centered education methods. The policy encourages students to think about what they are learning, look at societal problems, and learn how to talk about them democratically.

Key Highlights of NEP 2020: School Education

The National Education Policy (NEP) 2020 changes the way India thinks about education in a big way, particularly when it comes to school. The new 5+3+3+4 curricular framework, which replaces the old 10+2 system, is one of the most important changes. This structure has five years of the foundational stage (ages 3 to 8), three years of the preparation stage (ages 8 to 11), three years of the intermediate stage (ages 11 to 14), and four years of the secondary stage (ages 14 to 18). This method focuses on Early Childhood Care and school (ECCE) and brings the Indian school system up to par with international norms (GOI, 2020).

Early Childhood Care and Education (ECCE) is the main emphasis since the early years are so important. The policy's goal is to make ECCE available to everyone by 2030. To do this, it suggests combining anganwadis with primary schools, educating ECCE teachers, and creating curricular frameworks suitable for each child's stage of development. The national purpose of Foundational Literacy and Numeracy (FLN) is to ensure that all students can read and write by the time they reach Grade 3. The policy starts the National Mission on Foundational Literacy and Numeracy, which focuses on training teachers, producing learning materials, and keeping track of students' progress. Multilingualism and mother tongue are encouraged to keep language variety alive and help kids understand better. The policy says that the home language or mother tongue should be used for teaching until at least Grade 5, and ideally until Grade 8. It also supports the three-language formula, which includes studying classical and foreign languages.

The school is changing its curriculum to focus less on memorising facts and more on critical thinking, creativity, hands-on learning, and combining arts and athletics. Tests will no longer be

high-stakes; instead, they will be more formative and competency-based. This will include holistic report cards showing a broader student growth range.

Key Highlights of NEP 2020: Higher Education

By encouraging a multidisciplinary approach, NEP 2020 hopes to bring about a significant transformation in higher education. Higher education institutions (HEIs) should become interdisciplinary universities or colleges that provide a wide range of arts, sciences, and vocational programs. The idea is to eliminate the barriers across fields of study and provide students with more options for learning. Institutional restructuring and consolidation aim to eliminate the fragmentation in higher education. There will be three types of institutions: research-intensive universities, teaching-intensive universities, and independent colleges that give out degrees. The National Higher Education Regulatory Council (NHERC) will ensure that regulation happens, and affiliated college systems will be phased out over time.

The National Research Foundation (NRF) will be set up to help with research and new ideas. It will give out competitive research grants in various fields and help create a culture of research in higher education institutions. Students may earn and flexibly keep credits using the Academic Bank of Credits (ABC) and Multiple Entry-Exit options. They can even re-enter school at different times without losing academic progress. This encourages people to keep studying and improving their skills. There will be significant changes to how teachers are trained and educated. By 2030, the minimum degree requirement will be a four-year integrated B.Ed. To make teachers better, people suggest things like ongoing professional development, accrediting systems, and strict entry criteria.

The objective is to provide occupational exposure to at least 50% of students by 2025, which should happen at all levels of schooling. Working with industry and skill councils will ensure that things are helpful. Platforms like DIKSHA (Digital Infrastructure for Knowledge Sharing) and the National Digital Education Architecture (NDEAR) will help improve digital and online learning. They will promote blended learning, e-content, and equal access to good education.

Holistic Development Vision

The NEP 2020 is based on a vision of whole-person development that includes mental, emotional, physical, and moral growth. It wants to create people ready for work and well-rounded, caring, and responsible citizens (Ram, 2021). This vision is shown in the combination of co-curricular and vocational education. The school and college curriculum provides equal weight to activities like arts, athletics, yoga, and community service. The goal is to encourage physical health, creativity, and social responsibility (GOI, 2020).

The policy stresses the importance of teaching kids' life skills, values, and morals, such as empathy, communication, collaboration, resilience, and moral reasoning. Education is not only about learning facts anymore, but also about teaching them how to be good people and get along with others. The curriculum is meant to be flexible so students may pick things that interest them and help them reach their goals. This involves focusing on creativity, critical thinking, and problem-solving, and shifting away from rote memorisation to competency-based learning.

To keep track of and help with all-around growth, holistic report cards and experiential teaching methods are used. The method focuses on the learner's progress, self-reflection, and well-being, which all help them learn for the rest of their lives.

Inclusivity and Equity Measures

NEP 2020 puts much stress on fairness and inclusion since it knows that there are significant differences in Indian education. It aims to provide all students, particularly those from historically under-represented and disadvantaged groups, equal access and chances. The strategy suggests targeted scholarships, gender inclusion funding, and activities to raise awareness to address gender and socioeconomic inequities (Kushwaha et al., 2024; Soni & Kumar, 2024). The most important things are to lower the number of females who drop out of school and help them get back into the system. Tailored support systems ensure that groups that are not well represented, such as Scheduled Castes (SC), Scheduled Tribes (ST), Other Backward Classes (OBC), minorities, and Persons with Disabilities (PWD), are included. This involves changes to the curriculum, teaching methods that incorporate everyone, and better infrastructure. Areas having many people who are educationally handicapped will get Special Education Zones. The Gender Inclusion Fund would help ensure that all females and transgender students get the same high-quality education. The strategy also stresses helping students who live in rural locations by putting more money into school buildings, transport, digital resources, and hiring teachers. To get to the final mile, working with community-based organisations will be very important (Dapkekar & Dawle, 2025).

Implementation Challenges and Critiques

NEP 2020 is a great idea, but putting it into action will be pretty hard. One big worry is federalism, which means that the Centre and the States must work closely together on education since it is a concurrent topic. Different political objectives and abilities may make it hard to do things the same way everywhere. The digital divide and lack of infrastructure in rural and poorer regions make things very hard, particularly for online and digital learning. Many students may not be able to study because they do not have enough internet access, digital skills, or equipment.

Discussions over language and the teaching medium, particularly the focus on mother tongue and local languages, have caused worry in places where Hindi is not spoken. Making multilingual education work the same way for everyone is still tricky. Another significant criticism is how money and resources are raised. The strategy suggests that the government should spend 6% of its GDP on education, although it is unclear whether this goal can be reached because of budget problems. Bureaucratic inertia and faculty reluctance exemplify how old institutions oppose change, which might impede improvements. Ensuring enough training, change management, and monitoring will be essential.

Way Forward

NEP 2020 has much potential for systemic change, even with specific problems. It fits with Sustainable Development Goal (SDG) 4: Quality Education, which aims to provide everyone access

to fair, inclusive, and lifelong learning opportunities by 2030. Community involvement and local government will be significant for the NEP. Getting school management committees, parents, local leaders, and grassroots groups involved may help ensure the implementation is appropriate for the situation and culture. Encouraging public-private partnerships (PPPs) may help fill shortfalls in resources and infrastructure. Working with NGOs, ed-tech startups, and businesses may help with innovation, job training, and digital access.
It is essential to focus on developing the skills of teachers and schools. Continuous professional development, leadership training, and ways to evaluate performance may all make teaching better and hold institutions more accountable.

Conclusion

The National Education Policy (NEP) 2020 is a significant change in India's education system. Its goal is to make learning experiences at all levels more comprehensive, inclusive, and fair. It sees an education system based on Indian principles and can meet the needs of the 21st century. The policy's focus on a child-centered and interdisciplinary approach and strong foundational reading, early childhood care, and inclusive frameworks fills in long-standing structural deficiencies while promoting creativity, critical thinking, and moral values. NEP 2020 establishes a solid foundation for lifelong learning by changing how schools teach to a 5+3+3+4 paradigm and emphasizing basic reading and writing (FLN). Adding local languages, vocational education, and extracurricular activities makes learning more interesting and valuable. The Academic Bank of Credits, a diversified curriculum, and flexible admission and departure choices all help to encourage academic mobility, innovation, and research excellence in higher education.

Even with these changes, there are still many problems that need to be solved in order for them to work. These include differences in infrastructure, digital divisions, and pushback from traditional institutions. However, these problems may be solved with cooperative federalism, more money, better teacher training, and getting the community involved. Because the strategy aligns with global goals like Sustainable Development Goal 4 (SDG4), India might become a world leader in education reform.

Ultimately, NEP 2020 wants an education system that teaches students facts and helps them become better people, understand others, and reach their full potential. The policy allows us to make society more fair, robust, and forward-thinking by focusing on inclusion, equality, and quality.

References:

Aneraye1, M. A. V. (2024). Inclusive Education in India: Issues and Conflicts. *International Journal of Multidisciplinary Research and Explorer*, *4*(3), Article 3. https://doi.org/10.0728/IJMRE.2024684732

Bajaj, G. (2022). Inclusive Education from School to Higher Education in India: Provisions, Possibilities and Progress. In P. Sengupta (Ed.), *Critical Sites of Inclusion in India's Higher*

Education (pp. 97–118). Springer. https://doi.org/10.1007/978-981-16-8256-8_6

Dapkekar, 1 Dr Amol, & Dawle, 2 Dr Abhijeet. (2025). Empowering women through sustainable development goals (sdgs) and national education policy (nep) 2020. *Journal of East-West Thought (JET) ISSN (O) : 2168-2259 UGC CARE I*, *15*(1), 512–520. https://doi.org/10.7492/6c8bnz48

Deming, D. J. (2022). Four Facts about Human Capital. *Journal of Economic Perspectives*, *36*(3), 75–102. https://doi.org/10.1257/jep.36.3.75

Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Human Resource Development. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

Kang, Y., & Mok, K. H. (2022). The Broken Promise of Human Capital Theory: Social Embeddedness, Graduate Entrepreneurs and Youth Employment in China. *Critical Sociology*, *48*(7–8), 1205–1219. https://doi.org/10.1177/08969205221088894

Klaassen, R. G. (2018). Interdisciplinary education: A case study. *European Journal of Engineering Education*, *43*(6), 842–859. https://doi.org/10.1080/03043797.2018.1442417

Kushwaha, R. K., Yadav, P. K., Kushwaha, A., & Dwivedi, D. P. (2024). *Diversity, Equity & Inclusion*. Blue Rose Publishers.

Lindvig, K., Lyall, Catherine, & and Meagher, L. R. (2019). Creating interdisciplinary education within monodisciplinary structures: The art of managing interstitiality. *Studies in Higher Education*, *44*(2), 347–360. https://doi.org/10.1080/03075079.2017.1365358

Miseliunaite, B., Kliziene, I., & Cibulskas, G. (2022). Can Holistic Education Solve the World's Problems: A Systematic Literature Review. *Sustainability*, *14*(15), Article 15. https://doi.org/10.3390/su14159737

Ram, D. D. (2021). National education policy (nep) 2020: in light of the sustainable development goals and the use of technology. *Grand Academic Portal*.

Smith, A., & Seal, M. (2021). The Contested Terrain of Critical Pedagogy and Teaching Informal Education in Higher Education. *Education Sciences*, *11*(9), Article 9. https://doi.org/10.3390/educsci11090476

Soni, M., & Kumar, A. (2024). *HUMAN RIGHTS, GENDER EQUALITY & NEP – 2020 A BRIEF LAYOVER*. Unpublished. https://doi.org/10.13140/RG.2.2.19232.39683

Srivastava, S., Varshney, A., Katyal, S., Kaur, R., & Gaur, V. (2021). A smart learning assistance tool for inclusive education. *Journal of Intelligent & Fuzzy Systems*, *40*(6), 11981–11994. https://doi.org/10.3233/JIFS-210075

Vecchio, G., & Martens, K. (2021). Accessibility and the Capabilities Approach: A review of the literature and proposal for conceptual advancements. *Transport Reviews*, *41*(6), 833–854. https://doi.org/10.1080/01441647.2021.1931551

Received: 08.02.2026 | Accepted: 10.02.2026 | Published: 30.03.2026

जनचेतना के कवि नागार्जुन

डॉ. कमला चौधरी*
drkchoudhary001@gmail.com

सारांश

यह शोध-पत्र जनकवि नागार्जुन के काव्य में व्यक्त जनचेतना, वर्ग-संघर्ष और सामाजिक प्रतिरोध की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है। नागार्जुन का काव्य भारतीय श्रमजीवी जनता, किसान-मजदूर वर्ग तथा वंचित समुदायों की आकांक्षाओं का सशक्त प्रतिनिधित्व करता है। उन्होंने साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद के त्रिस्तरीय शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध व्यक्त किया तथा जनवादी चेतना को काव्य का केन्द्रीय तत्व बनाया। उनकी कविताओं में सत्ता-विमर्श, राजनीतिक पाखंड, सामाजिक विषमता और आर्थिक अन्याय पर तीखा व्यंग्य मिलता है। 'जनकवि' की भूमिका में वे स्वयं को जनता के संघर्ष का सहभागी घोषित करते हैं। उनकी काव्य-दृष्टि में न्याय, प्रतिरोध और परिवर्तन का सौन्दर्य निहित है। नागार्जुन की कविता केवल भावाभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक हस्तक्षेप का माध्यम है। जन-संवेदना, क्रांतिकारी विवेक और जीवन-सापेक्ष यथार्थवाद के कारण वे हिंदी साहित्य में अद्वितीय जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

मुख्य शब्द (Keywords)

जनचेतना, जनवादी काव्य, वर्ग-संघर्ष, सामाजिक यथार्थवाद, राजनीतिक व्यंग्य, प्रतिरोध-बोध, किसान चेतना, साम्राज्यवाद-विरोध, जनकवि, नागार्जुन

नागार्जुन संघर्षशील भारतीय जनता के और श्रमजीवी वर्गों के प्रतिनिधि कवि हैं, इसीलिए ऊपर से दिशाहीन लगते हुए भी वे गहन दिशा बोध के कवि हैं, बाहर से अकेले लगते हुए भी न जाने किस-किस से सम्बद्ध हैं। मानव सम्बंधों की बड़ी गहरी छाप नागार्जुन के व्यक्तित्व और काव्य में मिलती है। यही उनकी आम जनता से आत्मीयता का सबसे उज्ज्वल पक्ष है। नागार्जुन ने अपनी कविता 'जनकवि' में स्वयं को जनकवि कहते हुए कहा है कि-

"समझ गया हूँ
जीवन में इस धरा-धाम का क्या महत्त्व है....
समझ गया हूँ
कैसे जनकवि जमींदार के उन अमलों को मार भगाता
हरे बाँस की हरी-हरी वह लाठी लेकर"[1]

जनकवि का यह दायित्व वे आद्योपांत निबाहते आये। शासक वर्ग के किसी भी प्रहार या प्रलोभन ने उन्हें विचलित नहीं किया। शोषक सत्ता और शोषित जनता के अंतर्विरोधों का सार जिस समझौताहीन ढंग से नागार्जुन की रचना में व्यक्त होता है, वैसा बहुत से जगमगाते कवि-विचारक-संपादकों की रचना में नहीं व्यक्त होता है। इससे यह भी पता चलता है कि रचना और जीवन-व्यवहार की एकता जैसी उनमें थी, वैसी कम लोगों में मिलती है। जो भी, जहाँ भी वंचित, उपेक्षित और यातनाग्रस्त है, उससे नागार्जुन को पूरी सहानुभूति है, जो भी जहाँ भी पाखंड, छद्म है उसके लिए उनके व्यंग्य सुरक्षित हैं।

जनता को छोड़कर पद-प्रतिष्ठा-पुरस्कार, संस्था, सरकार-योगीराजों की ओर मुड़ जाने वाले कवियों पर भी व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि-

* **सहायक आचार्य हिन्दी विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)**

"असल में-
हुआ क्या है, बतलाऊँ ? / आहिस्ते-आहिस्ते
तुमने इन्हें अपंग कर दिया है- / शब्द-स्पर्श-गंध-रस-रूप
सारे के सारे छीज गये हैं लगभग
लानत है, तुम तो खुलकर हंस भी नहीं पाते
....अपने 'स्व' को सुला दिया है तुमने !
ऐसे में क्या हो आप ? / झाग ही झाग तो हो !"[2]

नागार्जुन के विवेक और साहस का स्रोत यह है कि वे पलभर के लिए भी यह नहीं भूलते कि 'कवि हूँ पीछे, पहले तो मैं मानव ही हूँ।'

यही उनका सत्य है और यह उन्हें ऐसी सुसंगत कसौटी प्रदान करता है कि वे परम्परा और साहित्य को भी उसी पर कसते हैं। जो भार नहीं ढ़ो सकता और ढ़ोने को विवश है, उसके असंतोष और विद्रोह की वाणी नागार्जुन की कविता है। इसलिए उनकी वाणी में हकलाहट कभी नहीं रही-

"प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे, मैं उद्‌गाता हूँ उस रवि का!"[3]

वे भी ऐसे रवि के उद्‌गाता हैं जो जन-जन में ऊर्जा भर दे। उनकी दृष्टि में अन्याय सुन्दर नहीं है, अन्याय का विरोध करके ही न्याय की स्थापना हो सकती है, इसलिए संघर्ष का अपना सौन्दर्य है। नागार्जुन ने वास्तविक दुःख देखा है। वे जानते हैं कि दुःख मांजता नहीं दुःख तोड़ता है। वे समझते हैं कि अक्षम के लिए भार ढ़ोना दुर्वह है इसलिए नागार्जुन दुःख की अनंत सूरतों को ललकारते हैं। उनकी कुछ कविताएँ इसका स्पष्ट उदाहरण है।

"ले नहीं प्रतिशोध
"क्षमा ही क्षमा करता चला जाये.....
ऐसी भी बुद्धि क्या ! / ऐसा भी मन क्या।"[4]
उनकी न्याय-व्यस्था में-
"सपने में भी क्षमा मिलेगी नहीं कभी हत्यारों को
एक-एक कर कैद करेगी जनता रंगे सियारों को"[5]
'आज मैं बीज हूँ' कविता में नागार्जुन लिखते हैं-
"बस, थोड़ी और हवा
बस, थोड़ा और भुरभुरापन
क्या देर है भला
बाहर आने में
आज मैं बीज हूँ / कल रहूँगा अकुंर / बटुर-बटुर
आयेगी दुनिया / मुझे देखने को आतुर
आज मैं बीज हूँ.... गर्क हूँ धरती की जादूई कोख में हूँ अलक्षित"[6]

नागार्जुन ने यह भी निर्भांत दृष्टि से देखा कि आज़ादी का फल जनता को नहीं मिल रहा है, यह फल उसके देशी-विदेशी शत्रुओं की झोली में बंद हो रहा है। उन्होंने 'सच न बोलना' कविता के माध्यम से यह बात स्पष्ट की-

"जमींदार है, साहूकार है, बनिया है, व्यापारी है
अंदर - अंदर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी है।
....एक बार जो फिसले अगुआ, फिसल रहे फिर-फिर-फिर !
....मार पीट है, लूट-मार है तहस-नहस बरबादी है,

जोर-जुलुम है, जेल-सेल है.... वाह खूब आजादी है !
रोजी-रोटी हक की बातें जो भी मुँह पर लायेगा;
कोई भी हो, निश्चय ही वह कम्युनिस्ट कहलायेगा !
नेहरू चाहे जिन्ना उसको माफ करेंगे कभी नहीं....”[7]
यही बात 1948 में ‘तेलंगाना आंदोलन’ पर लिखी अपनी प्रसिद्ध कविता ‘लाल भवानी’ में दोहराई-
“अँगरेजी, अमरीकी जोंके, देशी जोंकें एक हुई
नेताओं की नीयत बदली, भारतमाता टेक हुई,
राजाओं को अभयदान देकर परज़ा को आप ठगें...
कागज की आज़ादी मिलती ले लो, दो-दो आने में,
नेता परेशान है जनता का तूफान दबाने में....”[8]

वे यह घोषणा करते हैं कि “शासन के कुछ और सत्य है, जनता के कुछ और !” शासन और जनता के सत्य भिन्न हैं, वर्ग भिन्नता के कारण यह अंतर घटा नहीं उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

1962 में 'दिल्ली चलो' कविता में नागार्जुन कहते हैं कि-

“मुँह बनाओं, नेहरू का नाम लो।
सेठ के बकवास का तुम दाम लो।
ठगो श्रमिकों को, कुबेरों को भले पंखा झलो !”[9]

जनता यदि जनवादी संघर्ष चलाती है तो उसका दमन होता है। जनता जब रोजी-रोटी की मांग करती है तब उस पर अस्त्र-शस्त्र से प्रहार होता है। पूँजीवादी संसदीय जनतंत्र जनता के हितों की रक्षा नहीं करता बल्कि सामंती महाजनी तत्त्वों की, उद्योगपति और व्यापारी की रक्षा करता है। यह वर्ग शासन की छत्रछाया में और शासन के अस्त्र से नंगा दमनचक्र चलाता है। नागार्जुन जनता पर होने वाले प्रत्येक छोटे-बड़े जुल्म के विरूद्ध रोष और तिलमिलाहट से भरकर और भी पैने व्यंग्य के साथ सामने आते हैं। शासन की छाया में पलते खेलते निहित स्वार्थों की पूरी लीला स्वाधीनता के बाद की परिस्थितियों में सबसे विस्तृत, सबसे प्रामाणिक और सबसे मर्मबेधी रूप में उनके काव्य में व्यक्त हुई हैं-

“खिचड़ी विप्लव देखा हमने
भोगा हमने क्रांति विलास”[10]

‘अबके संसद भवन ढहेगा, और बच्चा-बच्चा अस्त्र गहेगा’ यह केवल नागार्जुन की घोषणा मात्र नहीं है बल्कि उनका जनवादी वर्ग विवेक है।

वे जनता पर होने वाले प्रत्येक आक्रमण से तिलमिला उठते हैं; निर्मम अत्याचार का समुचित प्रतिरोध होता न देखकर गहरे क्षोभ से भर जाते हैं इसलिए अगर कहीं अतिवादी ढंग से, गलत राजनीतिक रुझान के साथ भी जुल्म का प्रतिरोध होता है तो नागार्जुन उससे सहानुभूति अनुभव करते हैं-

“सपने में भी क्षमा मिलेगी नहीं कभी हत्यारों को
एक-एक कर कैद करेगी जनता रँगे सियारों को”[11]

जनता के हत्यारों को उनके दंडविधान में सपने में भी क्षमा नहीं मिलती। उनकी ‘प्रतिहिंसा’ को इसी संदर्भ में समझा जा सकता है कि वे कविताओं के जरिये जनता में जागरूकता पैदा करते हैं वे इसमें चूकते-झिझकते नहीं, गोष्ठियों-सम्मेलनों के अलावा अभियान बनकर नुक्कड़ों पर, राह चलते लोगों को रोक-रोककर कविता सुनाते हैं और अपनी बेचैनी लोगों तक पहुंचाते हैं। वे क्रान्ति नहीं कर सकते, लेकिन कविता में क्रान्ति की आकांक्षा और स्वप्न व्यंजित कर सकते हैं, इस काव्य-लोक के वे रचयिता हैं। और यहाँ सभी हत्यारों को उनके गुनाहों के अनुसार दंडित करते है। उनका मानना है कि जनता सत्ताधारी वर्ग और उसके राजनीतिक - प्रशासनिक तंत्र द्वारा बुरी तरह सतायी जा रही है।

नागार्जुन की खीझ, बेसब्री, नाराज़गी, व्यंग्य, टीस, आक्रोश सब उनके इसी प्रतिरोध-भाव की उपज है। खेत-मजदूरों और किसानों को जमीन के जोतने वालों को जमीन का अधिकार मिलेगा, इसलिए यह सामंत - विरोधी जनवादी क्रान्ति होगी। जनवादी क्रान्ति का दायित्व पूँजीपति वर्ग पूरा नहीं कर सका, उसने साम्राज्यवाद की छाँह चुन ली और सामंतों को अपनी छाँह में बिठा लिया, इसलिए इस क्रान्ति का नेतृत्व मजदूर-वर्ग करेगा और वह पूँजीवाद को नियंत्रित करके शहरी बेकारी की समस्या सुलझाएगा।

उनकी जनवादी दृष्टि अपने युग के प्रत्येक पहलू को आत्मसात करके, प्रत्येक अंतर्विरोध पर ध्यान देकर और प्रत्येक समस्या को भारत की श्रमिक जनता, विशेषत: किसान के हितों के आधार पर सुलझाने की चेतना लेकर अग्रसर होती है इसलिए अपने सारे उत्साह - अति उत्साह के बावजूद वे हर कार्यवाही से जनता को सचेत करने की कोशिश करते हैं। वे खीझते हैं, खिझाते हैं, चिढ़ते हैं, चिढ़ाते हैं पर हर कार्यवाही से आशा रखते हैं कि आज नहीं तो कल सारी जनता जागेगी। ज्ञान और अज्ञान, वैभव और दरिद्रता में बँटी हुई दुनिया को नागार्जुन किस तरह देखते हैं, 'यह बताऊँ' कविता की प्रारम्भिक पंक्तियों से ही स्पष्ट हो जाता है।

"बताऊँ / कैसे लगते हैं- दरिद्र देश के धनिक ?
कोढ़ी कुढ़ब तन पर मणिमय आभूषण !"[12]

सामाजिक अंतर्विरोधों पर इतना तीखा प्रहार 'बौद्धिक सहानुभूति' वाले कवियों के लिए सम्भव नहीं है। उनकी यह घृणा उनके अपने अनुभव का निचोड़ है और वह उन्हें व्यक्तिवादी या अवसरवादी न बनाकर अपने जैसे दूसरे दरिद्रों से जोड़ती है इसलिए वे दरिद्रता के कोढ़ को मणिमय आभूषणों से सजाने के बदले मिटाने का रास्ता चुनते हैं।

इसी जनचेतना के कारण वे साम्राज्यवादी नीति के भी घोर विरोधी थे। अमरीकी राष्ट्रपति कॉर्टर के आगमन पर 'हम विभोर थे अगवानी में' कविता में नागार्जुन साम्राज्यवाद और युद्धोन्माद विकासशील देशों के प्रति उसकी नीति और साधारण जनता के हितों-आकांक्षाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का हल्का-सा आश्रय लेते हैं-

"वहाँ तुम्हारी बगिया में तो न्यूट्रन-बम के फल लटके हैं
अणु-ऊर्जा की बढ़ोत्तरी में यहाँ तुम्हें लगते झटके हैं
हमें नहीं चाहिए मसानी-माता का बारूदी आँचल
जाओ भस्मासुरी नृत्य का कहीं और ही करो रिहर्सल"[13]

प्राणिमात्र का नाश करने की क्षमता से सम्पन्न न्यूट्रन बम के 'फल' बगिया में लटके हैं। इन्हें 'बगिया में' कहकर वे दावे से यह मान लेते हैं कि उनका पाठक उनके आशय तक पहुँच गया है और उनकी बात से सहमत होकर उनके साथ जुड़ गया है इसलिए अंत आते-आते जब कहीं और जाकर 'भस्मासुरी नृत्य' का रिहर्सल करने के लिए ललकारते हैं तब उसमें उनकी पूरी घृणा और हिकारत, पूरा रोष और आत्मविश्वास सन्निहित रहता है। पाठक समुदाय पर इतना अटूट विश्वास नागार्जुन के अलावा उनके समकालीन या परवर्ती किसी कवि में देखने को नहीं मिलता। इससे यह पता चलता है 'यात्री' नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद अपने विशाल पाठकवर्ग से असंपृक्त नहीं, बल्कि संवेदनात्मक रूप में दृढ़ढ़तापूर्वक संपृक्त है।

डॉ. नामवर सिंह समेत, नागार्जुन पर लिखने वाले प्रायः सभी विदान भूरिशः कहते आए हैं कि जनता पर होने वाले प्रत्येक जुल्म पर नागार्जुन ने बड़ी तल्खी से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। हिंसा की बहती गंगा किन-किन तीर्थों से गुजरी है, इसका विवरण नागार्जुन की कविताएँ भी देती है और उनके जीवन की घटनाएँ भी।

जीवन की तनावपूर्ण स्थितियों में, उनसे मुक्त होकर नये संकल्प और नये उत्साह के साथ जीवन से जुड़ने, उसे भोगने और संघर्ष करने के लिए खुद को तैयार करते हैं। उनका सामान्य पाठक उनसे सीधे जुड़ जाता है, इससे उनकी कला का जनवादी स्वरूप स्पष्ट होता है। नागार्जुन की कलात्मक शक्ति का यही आधार है जहाँ खड़े होकर वे जनता के साथ विश्वास और भाईचारे का सम्बन्ध कायम करते हैं, उसके जीवन के अनुभवों को, उसकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को उसकी समझ में आने वाली शैली में चित्रित करते हैं, तथा दूसरी तरफ बड़े-बड़े कलावतों को अपनी कविताओं के प्रत्यक्ष उदाहरण देकर सौन्दर्यशास्त्र के बने-बनाये मानदंडों पर पुनर्विचार करने के लिए ललकारते हैं।

नागार्जुन की कविताओं में मनुष्य के शोषण के तीनों रूपों साम्राज्यवाद, सामंतवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध तीव्र रोष दिखाई देता है। "स्थायी रह सकता नहीं नीर, स्थायी है बस उसका बहाव"[14]

उनकी विशेषता है कि उन्होंने अपने यथार्थवाद को निरन्तर ऊँचे धरातल पर पहुंचाया। उनके व्यंग्यों में जीवन के अंतर्विरोधों की समझ दृढ़ हुई है, उनका भौतिकवादी रुझान अविचल रहा है, इसे हम सभी जानते हैं। 'हरिजन गाथा' और 'छोटी मछली... बड़ी मछली...' जैसी कविताओं की रचना करके उन्होंने हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान दिया। हिन्दी के साधारण लेखकों और पाठकों में उनके जैसी लोकप्रियता किसी दूसरे कवि की नहीं है। इन सबके अगाध प्यार ने नागार्जुन को अपने युग का सबसे लोकप्रिय कवि और सबसे बड़ा जनकवि बना दिया। डॉ. शम्भुनाथ ने इस बात को समझकर ही लिखा होगा कि- "दरअसल उन्होंने 'जातीय', 'मानवीय' और 'क्रान्तिकारी' को जोड़कर देश में परिवर्तन के एक नये उभार का स्वप्न देखा, जो उनका सबसे बड़ा स्वप्न था।"[15]

मुझे ऐसा लगता है कि नागार्जुन, तुम गए नहीं हो, अपनी कविताओं-उपन्यासों के जरिये हमारे हृदय में हो, तुम्हारा सपना जीवित है, उसे पूरा करने का कर्त्तव्य शेष है। स्वयं नागार्जुन के शब्दों में हमसे भी यही कहते बनता है कि "'मैं' न अभी मरने वाला हूँ... मर मर कर जीने वाला हूँ..."

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नागार्जुन का काव्य भारतीय जनजीवन की संघर्षगाथा का प्रामाणिक दस्तावेज है। उन्होंने कविता को सत्ता-विरोधी जनस्वर के रूप में स्थापित किया और शोषित वर्ग की चेतना को अभिव्यक्ति दी। उनका व्यंग्य, आक्रोश और प्रतिहिंसा-दृष्टि दरअसल सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए है। वे जनवादी मूल्यबोध, वर्ग-सजगता और परिवर्तनकामी दृष्टि के कवि हैं। इस प्रकार नागार्जुन हिंदी साहित्य में जनचेतना के सबसे सशक्त और प्रतिबद्ध प्रतिनिधि सिद्ध होते हैं।

संदर्भ :-

(1) नागार्जुन, बाबा. (1946). *युगधारा*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 80

(2) नागार्जुन, बाबा. (1970). *ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 50

(3) नागार्जुन, बाबा. (1970). *खिचड़ी विप्लव देखा हमने*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 11

(4) नागार्जुन, बाबा. (1970). *ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या!*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 32

(5) नागार्जुन, बाबा. (1970). *हजार-हजार बाँहों वाली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 49

(6) नागार्जुन, बाबा. (1970). *चुनी हुई रचनाएँ, भाग-2*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 195.

(7) नागार्जुन, बाबा. (1970). *हजार-हजार बाँहों वाली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 46-47

(8) नागार्जुन, बाबा. (1970). *हजार-हजार बाँहों वाली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 48-49

(9) नागार्जुन, बाबा. (1970). *पुरानी जूतियों का कोरस*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 51

(10) नागार्जुन, बाबा. (1970). *खिचड़ी विप्लव देखा हमने*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 29

(11) नागार्जुन, बाबा. (1970). *हजार-हजार बाँहों वाली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 49

(12) नागार्जुन, बाबा. (1970). *हजार-हजार बाँहों वाली*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 54

(13) नागार्जुन, बाबा. (1970). *खिचड़ी विप्लव देखा हमने*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. पृ. 116-117

(14) नागार्जुन, बाबा. (1941). *हंस* [पत्रिका, दिसंबर अंक]. हंस प्रकाशन, इलाहाबाद.

(15) नागार्जुन, बाबा. (1999). *कथन* [पत्रिका, जुलाई-सितंबर अंक]. नई दिल्ली : कथन प्रकाशन. पृ. 36

Received: 08.02.2026 | Accepted: 10.02.2026 | Published: 30.03.2026

चेतना-विज्ञान और भारतीय ज्ञान परंपरा : राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समावेसी दृष्टि

डॉ. संगीता*

sangeetachandra676@gmail.com

सारांश (Abstract)

भारतीय सभ्यता की मूल चेतना आध्यात्मिक, नैतिक और समग्र दृष्टि पर आधारित रही है। भारत में शिक्षा का उद्देश्य केवल आजीविका अर्जन नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर निहित चेतना का विकास, आत्मबोध की प्राप्ति तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का निर्माण रहा है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा में 'सा विद्या या विमुक्तये' का सिद्धांत शिक्षा के केंद्र में रहा है जिसका आशय है कि वही विद्या वास्तविक है जो बंधनों से मुक्त करे। इस संदर्भ में चेतना-विज्ञान भारतीय चिंतन की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इसी मूल भारतीय दृष्टि को आधुनिक संदर्भों में पुनर्स्थापित करने का एक सशक्त प्रयास है, जिसमें शिक्षा को मानव-केंद्रित, चेतना-आधारित और मूल्यनिष्ठ बनाने पर विशेष बल दिया गया है। चेतना-विज्ञान का अर्थ केवल मानसिक गतिविधियों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्ति के संपूर्ण अस्तित्व—शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—के समन्वित विकास से जुड़ा हुआ है। भारतीय दर्शन में चेतना को 'चित्', 'प्रज्ञा', 'आत्मा' और 'ब्रह्म' जैसे शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उपनिषदों में चेतना को परम सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है, जहाँ आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया गया है। योग दर्शन में चेतना को चित्त की शुद्ध अवस्था से जोड़ा गया है और पतंजलि ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के माध्यम से चेतना की स्थिरता को मुक्ति का मार्ग बताया है। इस प्रकार चेतना-विज्ञान भारतीय ज्ञान परंपरा का केंद्रीय तत्व रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा केवल दार्शनिक ग्रंथों तक सीमित नहीं रही यह जीवन की प्रत्येक गतिविधि में चेतना के विकास को महत्व दिया गया है। वेदों में ऋत की अवधारणा, उपनिषदों में आत्मबोध, भगवद्गीता में कर्मयोग और समत्वबुद्धि, बौद्ध दर्शन में प्रज्ञा और करुणा तथा जैन दर्शन में आत्मसंयम और अहिंसा—ये सभी चेतना के विविध आयामों को प्रकट करते हैं। शिक्षा का उद्देश्य इन सभी आयामों को विकसित करना रहा है ताकि व्यक्ति केवल ज्ञान ही नहीं अर्जित करे बल्कि विवेकी, संवेदनशील और नैतिक बन सके।

मुख्य शब्द (Keywords) : चेतना-विज्ञान, भारतीय ज्ञान परंपरा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, योग, मूल्य शिक्षा, नैतिक शिक्षा

परिचय

भारतीय सभ्यता का मूलाधार चेतना है। भारत का संपूर्ण दार्शनिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चिंतन चेतना के विकास, परिष्कार और पूर्णता की दिशा में प्रवाहित होता रहा है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा को केवल सूचना, कौशल या व्यावसायिक दक्षता का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि उसे आत्मबोध, विवेक, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास का साधन समझा गया है। इसी कारण भारतीय शिक्षा परंपरा में विद्या को मोक्षदायिनी, जीवनोन्मुख और चेतना-आधारित माना गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इसी मूल भारतीय दृष्टि को आधुनिक संदर्भों में पुनः प्रतिष्ठित करने का प्रयास है।

इसकी विशेषता यह रही है कि उसने ज्ञान और जीवन को कभी अलग नहीं किया। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चार पुरुषार्थों की अवधारणा जीवन के समग्र संतुलन को दर्शाती है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को केवल आर्थिक रूप से सक्षम

* **असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, योग विभाग, महर्षि यूनिवर्सिटी ऑफ़ मैनेजमेंट एंड टेक्नोलॉजी बिलासपुर, छ. ग.**

बनाना नहीं, बल्कि धर्म और मोक्ष की चेतना से जोड़ना भी रहा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इसी संतुलन को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है, जहाँ शिक्षा आजीविका के साथ-साथ जीवनमूल्यों और आत्मिक विकास को भी समान महत्व देती है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान का अर्थ केवल बौद्धिक जानकारी नहीं, बल्कि अनुभवजन्य सत्य है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन की प्रक्रिया के माध्यम से ज्ञान को आत्मसात किया जाता था। यह पद्धति चेतना के क्रमिक विकास की प्रक्रिया है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में जहाँ स्मृति-आधारित अधिगम हावी रहा है, वहीं भारतीय शिक्षा परंपरा अनुभव और आत्मचिंतन पर आधारित रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस अंतर को पहचानते हुए अनुभवात्मक, खोजपरक और चिंतनशील अधिगम को शिक्षा का आधार बनाती है।

औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एकांगी बौद्धिकता और पाश्चात्य उपयोगितावाद का प्रभाव बढ़ा, जिसके परिणामस्वरूप शिक्षा का उद्देश्य संकीर्ण होता गया। ज्ञान को जीवन से अलग कर दिया गया और चेतना-आधारित शिक्षा का स्थान सूचना-आधारित शिक्षा ने ले लिया। स्वतंत्रता के पश्चात भी लंबे समय तक शिक्षा नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा को अपेक्षित स्थान नहीं मिल सका। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस ऐतिहासिक विच्छेद को समाप्त करने का प्रयास करती है और शिक्षा को पुनः भारतीय चेतना से जोड़ने की पहल करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करती है कि शिक्षा का उद्देश्य संपूर्ण मानव विकास है। नीति में कहा गया है कि शिक्षा को संज्ञानात्मक क्षमताओं के साथ-साथ सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक क्षमताओं के विकास पर भी ध्यान देना चाहिए। यह दृष्टिकोण सीधे-सीधे चेतना-विज्ञान से जुड़ा हुआ है। नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा, योग, ध्यान, नैतिक शिक्षा, जीवन कौशल और मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाने पर जोर दिया गया है, जिससे विद्यार्थी की चेतना का समग्र विकास संभव हो सके। औपनिवेशिक काल में भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। शिक्षा को प्रशासनिक और औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढाल दिया गया। भारतीय ज्ञान परंपरा, दर्शन और चेतना-आधारित शिक्षा को पिछड़ा और अवैज्ञानिक मानकर हाशिए पर डाल दिया गया। स्वतंत्रता के पश्चात भी लंबे समय तक शिक्षा नीति में यह प्रभाव बना रहा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इस ऐतिहासिक विच्छेद को समाप्त करने का एक गंभीर प्रयास है।

भारतीय ज्ञान परंपरा को राष्ट्रीय शिक्षा नीति में केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में नहीं, बल्कि जीवंत ज्ञान प्रणाली के रूप में स्वीकार किया गया है। नीति में प्राचीन भारतीय ग्रंथों, दर्शन, विज्ञान, गणित, आयुर्वेद, योग और पर्यावरणीय दृष्टि को आधुनिक शिक्षा के साथ समन्वित करने की बात कही गई है। यह समन्वय चेतना-विज्ञान की उस परंपरा को पुनर्जीवित करता है, जिसमें ज्ञान और जीवन के बीच कोई विभाजन नहीं था। विद्यार्थी को आत्मचिंतन, ध्यान और विवेक के माध्यम से ज्ञान को अनुभव करने के लिए प्रेरित किया जाता है। चेतना-विज्ञान के संदर्भ में योग का विशेष महत्व है, जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने शिक्षा का अनिवार्य घटक माना है। योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि चेतना के परिष्कार की प्रक्रिया है। प्राणायाम, ध्यान और समाधि के माध्यम से व्यक्ति अपनी आंतरिक चेतना से जुड़ता है। नीति में योग और ध्यान को विद्यालयी और उच्च शिक्षा में शामिल करने का उद्देश्य विद्यार्थियों में मानसिक स्वास्थ्य, आत्म नियंत्रण, एकाग्रता और नैतिक विवेक का विकास करना है, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं में अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति बहुभाषिकता और मातृभाषा आधारित शिक्षा पर भी बल देती है, जो चेतना-विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि चेतना की अभिव्यक्ति का साधन है। मातृभाषा में शिक्षा से विद्यार्थी की संवेदनशीलता, सृजनशीलता और आत्मीयता का विकास होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्ञान का संचार सदैव लोक भाषाओं और संस्कृत के माध्यम से हुआ है। नीति इस परंपरा को पुनर्स्थापित कर चेतना-आधारित शिक्षा को सुदृढ़ करती है।

नीति में मूल्य शिक्षा और नैतिक विकास को विशेष स्थान दिया गया है। सत्य, अहिंसा, करुणा, सहिष्णुता, उत्तरदायित्व और सेवा जैसे मूल्य भारतीय चेतना के मूल तत्व रहे हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति इन मूल्यों को शिक्षा के केंद्र में रखकर व्यक्ति को केवल कुशल पेशेवर नहीं, बल्कि संवेदनशील नागरिक बनाने का लक्ष्य रखती है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से भारतीय दर्शन के मानवतावादी और आध्यात्मिक स्वरूप से प्रेरित है। चेतना-विज्ञान के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि यह शिक्षा को आत्मकेंद्रित प्रतिस्पर्धा से निकालकर सामाजिक और वैश्विक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भारतीय अवधारणा नीति के वैश्विक दृष्टिकोण में परिलक्षित होती है। शिक्षा के माध्यम से वैश्विक नागरिकता, पर्यावरणीय चेतना और सतत विकास की भावना का निर्माण करना इस नीति का प्रमुख उद्देश्य है। हालाँकि

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और चेतना-आधारित है, परंतु इसके सफल क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ भी हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा और चेतना-विज्ञान को केवल पाठ्य पुस्तकों तक सीमित करने के बजाय शिक्षण-प्रक्रिया में व्यवहारिक रूप से लागू करना आवश्यक है। इसके लिए शिक्षकों का प्रशिक्षण, अनुसंधान का प्रोत्साहन और संस्थागत समर्थन अनिवार्य है। यदि यह नीति केवल संरचनात्मक सुधारों तक सीमित रह जाती है, तो चेतना-आधारित शिक्षा का लक्ष्य अधूरा रह सकता है। योग दर्शन चेतना-विज्ञान का व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता है। पतंजलि के अनुसार जब चित्त की वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं, तब द्रष्टा अपने स्वरूप में स्थित होता है। यह अवस्था चेतना की पूर्णता की अवस्था है। योग केवल शारीरिक अभ्यास नहीं, बल्कि नैतिक अनुशासन, मानसिक शुद्धि और आत्म साक्षात्कार की प्रक्रिया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में योग और ध्यान को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर चेतना-आधारित शिक्षा को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करती है कि भारत की शिक्षा व्यवस्था को उसकी सांस्कृतिक और दार्शनिक जड़ों से जोड़ना आवश्यक है। नीति में भारतीय ज्ञान प्रणालियों को शिक्षा का आधार बनाने की बात कही गई है। इसमें योग, आयुर्वेद, भारतीय दर्शन, गणित, खगोल, पर्यावरणीय ज्ञान, कला और साहित्य को आधुनिक शिक्षा के साथ समन्वित करने का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। यह समन्वय चेतना-विज्ञान की उस परंपरा को पुनर्जीवित करता है जिसमें ज्ञान, नैतिकता और आध्यात्मिकता एक दूसरे से पृथक नहीं थे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष 'समग्र विकास' की अवधारणा है। नीति यह मानती है कि शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। यह दृष्टिकोण उपनिषदों के पंचकोश सिद्धांत से गहराई से जुड़ा हुआ है। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोश—ये सभी चेतना के विभिन्न स्तर हैं, और शिक्षा का उद्देश्य इन सभी स्तरों का संतुलित विकास करना है। भारतीय ज्ञान परंपरा में भाषा को चेतना का वाहक माना गया है। संस्कृत, पालि, प्राकृत और लोकभाषाओं के माध्यम से ज्ञान समाज के हर वर्ग तक पहुँचा। राष्ट्रीय शिक्षा नीतिमातृभाषा और भारतीय भाषाओं में शिक्षा को प्रोत्साहित कर इस परंपरा को पुनर्जीवित करती है। भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और भावनात्मक चेतना का आधार है। मातृभाषा में शिक्षा से विद्यार्थी की सृजनशीलता और आत्मविश्वास का विकास अधिक गहराई से होता है।

शिक्षक की भूमिका भारतीय ज्ञान परंपरा में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के तुल्य माना गया है, क्योंकि वही अज्ञान से ज्ञान की ओर ले जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षक को केवल पाठ्य वस्तु का प्रदाता नहीं, बल्कि मार्गदर्शक, प्रेरक और चेतना-निर्माता के रूप में देखती है। शिक्षक प्रशिक्षण, शोध और स्वाध्याय पर नीति का बल इसी दृष्टि को दर्शाता है। मूल्य शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा नीति का केंद्रीय तत्व है। सत्य, अहिंसा, करुणा, सहिष्णुता, सेवा और पर्यावरणीय चेतना जैसे मूल्य भारतीय दर्शन की आत्मा हैं। नीति शिक्षा को मूल्यनिष्ठ बनाकर व्यक्ति को संवेदनशील नागरिक बनाने का लक्ष्य रखती है। यह चेतना-विज्ञान का सामाजिक पक्ष है, जहाँ व्यक्ति की आंतरिक जागृति समाज के कल्याण में परिवर्तित होती है। चेतना-विज्ञान के संदर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति का वैश्विक दृष्टिकोण भी उल्लेखनीय है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना नीति के वैश्विक नागरिकता के विचार में परिलक्षित होती है। शिक्षा को केवल राष्ट्रीय नहीं, बल्कि वैश्विक मानवता के कल्याण से जोड़ना भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल भावना रही है। हालाँकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति का दृष्टिकोण अत्यंत व्यापक और दूरदर्शी है, फिर भी इसके समक्ष कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा और चेतना-विज्ञान को केवल पाठ्यक्रम में शामिल करना पर्याप्त नहीं है। इसके लिए शिक्षकों की वैचारिक तैयारी, प्रमाणिक शोध, गुणवत्तापूर्ण सामग्री और संस्थागत समर्थन आवश्यक है। यदि नीति का क्रियान्वयन उसकी मूल भावना के अनुरूप नहीं हुआ, तो इसका चेतनात्मक उद्देश्य अधूरा रह सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य चेतना-विज्ञान की दार्शनिक अवधारणा को भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में समझना तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति में उसके समावेशन और अभिव्यक्ति का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार भारतीय शिक्षा परंपरा में चेतना को ज्ञान का मूल आधार माना गया है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति उस परंपरा को आधुनिक शैक्षिक ढाँचे में पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है। इसके अतिरिक्त इस शोध

का उद्देश्य भारतीय ज्ञान प्रणालियों—जैसे वेद, उपनिषद, योगदर्शन, भगवद्गीता और अन्य दार्शनिक परंपराओं—में निहित चेतना-संकल्पना को समकालीन शिक्षा व्यवस्था से जोड़ना है। यह अध्ययन यह भी विश्लेषित करता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति शिक्षा के माध्यम से समग्र मानव विकास, नैतिक चेतना, आध्यात्मिक संतुलन और सामाजिक उत्तरदायित्व को किस प्रकार प्रोत्साहित करती है। साथ ही, इस शोध का उद्देश्य यह मूल्यांकन करना भी है कि भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित चेतना-विज्ञान वर्तमान वैश्विक शैक्षिक चुनौतियों—जैसे मानसिक तनाव, मूल्य ह्रास और यांत्रिक शिक्षा—का समाधान प्रस्तुत करने में कितना सक्षम है।

अतः यह कहा जा सकता है कि चेतना-विज्ञान और भारतीय ज्ञान परंपरा राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आत्मा कही जा सकती है। यह नीति भारतीय शिक्षा को उसकी मौलिक पहचान लौटाने का प्रयास करती है और उसे आधुनिक वैश्विक संदर्भों में सशक्त बनाती है। चेतना-आधारित शिक्षा व्यक्ति को न केवल बौद्धिक रूप से सक्षम बनाती है, बल्कि उसे नैतिक, संवेदनशील और आत्मबोध से युक्त मानव के रूप में विकसित करती है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति को उसकी दार्शनिक गहराई के साथ लागू किया जाए, तो यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक ऐतिहासिक चेतनात्मक पुनर्जागरण का आधार बन सकती है। यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति भारतीय ज्ञान परंपरा को केवल सांस्कृतिक विरासत के रूप में नहीं, बल्कि एक जीवंत और प्रासंगिक ज्ञान प्रणाली के रूप में स्वीकार करती है। चेतना-विज्ञान के माध्यम से शिक्षा व्यक्ति को आत्मकेंद्रित प्रतिस्पर्धा से ऊपर उठाकर सामाजिक, नैतिक और वैश्विक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। यद्यपि नीति के क्रियान्वयन में व्यावहारिक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, फिर भी यदि इसे उसकी दार्शनिक भावना के अनुरूप लागू किया जाए, तो यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक गहरे चेतनात्मक परिवर्तन का आधार बन सकती है। अंततः यह कहा जा सकता है कि चेतना-विज्ञान आधारित शिक्षा न केवल भारत के लिए, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए एक संतुलित, व्यवस्थित एवं व्यावहारिक शिक्षा मॉडल प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः चेतना-आधारित शिक्षा न केवल व्यक्ति के आंतरिक विकास को संभव बनाती है, बल्कि एक नैतिक, संवेदनशील और संतुलित समाज के निर्माण में भी सहायक सिद्ध होती है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति को उसकी मूल भावना के अनुरूप लागू किया जाए, तो यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था में एक चेतनात्मक और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आधार बन सकती है।

संदर्भ (References)

अरविंदो, श्री. (1998). *भारतीय संस्कृति के आधार*. श्री अरविंद आश्रम प्रकाशन.

उपनिषद्. (2015). *प्रधान उपनिषद्* (अनुवाद: डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन). हार्पर कॉलिन्स इंडिया.

कृष्णमूर्ति, जे. (2017). *शिक्षा और जीवन का महत्व*. राजकमल प्रकाशन.

पतंजलि. (2010). *पतंजलि योगसूत्र* (भाष्य एवं व्याख्या सहित). चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान.

भारत सरकार. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार.

मिश्र, रमेशचंद्र. (2014). *भारतीय ज्ञान परंपरा और शिक्षा*. ओरिएंट ब्लैकस्वान (हिंदी संस्करण).

योगेंद्र, स्वामी. (2012). *योग और मानव चेतना*. योग संस्थान, मुंबई.

राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. (2009). *भारतीय दर्शन* (खंड 1–2). राजपाल एंड संस.

विवेकानंद, स्वामी. (2016). *स्वामी विवेकानंद समग्र वाङ्मय* (खंड 1–8). अद्वैत आश्रम.

शर्मा, चंद्रधर. (2013). *भारतीय दर्शन का आलोचनात्मक सर्वेक्षण*. मोतीलाल बनारसीदास.

Received: 09.02.2026 | Accepted: 11.02.2026 | Published: 30.03.2026

महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दत्तात्रय निवृत्ती रावण*
dattaravan2010@gmail.com

डॉ. अभिषेक सिंह†
abhisinghbhu9@gmail.com

सारांश :

महाराष्ट्र की राजनीति में क्षेत्रीय दलों ने समय-समय पर चुनावी प्रक्रिया, गठबंधन राजनीति और मतदाता व्यवहार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि विधानसभा चुनावों में इन दलों की रणनीतियाँ, क्षेत्रीय मुद्दे, नेतृत्व व्यक्तित्व तथा गठबंधन परिवर्तन किस प्रकार मतदाताओं के निर्णय को प्रभावित करते हैं।

यह शोध मुख्यतः 1990 से 2024 तक के विधानसभा चुनावों के द्वितीयक आँकड़ों (निर्वाचन आयोग की रिपोर्ट, आधिकारिक चुनाव परिणाम, शोध-पत्र एवं पुस्तकों) पर आधारित विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग करता है। अध्ययन में मतदान प्रतिशत, मत-प्रतिशत, सीटों की संख्या, तथा शहरी-ग्रामीण रुझानों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। साथ ही, क्षेत्रीय अस्मिता, भाषा, किसान मुद्दे और स्थानीय विकास जैसे कारकों की चुनावी प्रभावशीलता का परीक्षण किया गया है।

अध्ययन से यह निष्कर्ष उभरता है कि महाराष्ट्र की बहुदलीय व्यवस्था में क्षेत्रीय दल केवल सत्ता-साझेदार नहीं, बल्कि मतदाता व्यवहार के प्रमुख निर्धारक तत्व हैं। गठबंधन राजनीति और नेतृत्व परिवर्तन ने चुनाव परिणामों तथा मतदाता रुझानों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डाला है। यह शोध महाराष्ट्र की समकालीन राजनीति को समझने तथा क्षेत्रीय दलों की चुनावी भूमिका के गहन विश्लेषण में उपयोगी सिद्ध होगा।

***मुख्य शब्द** : महाराष्ट्र कि राजनीति, विधानसभा चुनाव, क्षेत्रीय दल, मतदान, मतदान व्यवहार*

प्रस्तावना:

महाराष्ट्र की राजनीति भारतीय लोकतंत्र के बहुआयामी स्वरूप का एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करती है। 1 मई 1960 को राज्य की स्थापना के बाद से यहाँ की राजनीतिक संरचना में क्षेत्रीय अस्मिता,

* **शोधार्थी, राजनीतिशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

† **सहायक प्रोफ़ेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा**

सामाजिक विविधता और आर्थिक हितों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विशेषतः विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव निरंतर दिखाई देता रहा है। शिवसेना, राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना जैसे दलों ने न केवल सत्ता संतुलन को प्रभावित किया है, बल्कि मतदाताओं के निर्णय और चुनावी प्रवृत्तियों को भी दिशा दी है।

महाराष्ट्र की राजनीति की एक विशिष्ट विशेषता यह रही है कि यहाँ क्षेत्रीय मुद्दे- जैसे मराठी अस्मिता, किसान प्रश्न, सहकारी आंदोलन, स्थानीय रोजगार और क्षेत्रीय विकास- चुनावी विमर्श के केंद्र में रहे हैं। इन मुद्दों ने मतदाताओं के मानस पर गहरा प्रभाव डाला है और अनेक बार राष्ट्रीय दलों की तुलना में क्षेत्रीय दलों को अधिक प्रासंगिक बनाया है। विशेष रूप से 1990 के बाद गठबंधन राजनीति के दौर में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और भी निर्णायक बन गई, जहाँ सत्ता निर्माण में उनका समर्थन अनिवार्य हो गया। विधानसभा चुनाव केवल प्रतिनिधियों के चयन की प्रक्रिया नहीं होते, बल्कि वे समाज की राजनीतिक चेतना, सामाजिक संरचना और आर्थिक अपेक्षाओं का प्रतिबिंब भी होते हैं। इस संदर्भ में यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका किस प्रकार विकसित हुई है और उन्होंने मतदाता व्यवहार को किस हद तक प्रभावित किया है।

इस शोध के माध्यम से क्षेत्रीय दलों की चुनावी रणनीतियों, नेतृत्व के प्रभाव, गठबंधन परिवर्तन तथा क्षेत्रीय मुद्दों की प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है, ताकि महाराष्ट्र की समकालीन राजनीति की गहन समझ विकसित की जा सके।

अध्ययन की पृष्ठभूमि:

महाराष्ट्र की राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझे बिना विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का समुचित विश्लेषण संभव नहीं है। 1 मई 1960 को भाषाई पुनर्गठन के आधार पर महाराष्ट्र राज्य का गठन हुआ। राज्य निर्माण के साथ ही "मराठी अस्मिता" और क्षेत्रीय पहचान की भावना राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गई। प्रारंभिक दशकों में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का वर्चस्व रहा, किंतु समय के साथ सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों ने राजनीतिक संरचना को बहुदलीय रूप प्रदान किया।

1960 और 1970 के दशक में शहरीकरण, औद्योगिकीकरण तथा सहकारी आंदोलन के विस्तार ने नए सामाजिक वर्गों को राजनीतिक रूप से सक्रिय किया। इसी दौर में शिवसेना का उदय हुआ, जिसने "मराठी मानुष" और स्थानीय रोजगार जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी। आगे चलकर 1999 में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी के गठन ने राज्य की राजनीति को नई दिशा दी। इन क्षेत्रीय दलों ने स्थानीय मुद्दों, नेतृत्व व्यक्तित्व और गठबंधन राजनीति के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित किया।

1990 के बाद भारतीय राजनीति में गठबंधन युग की शुरुआत के साथ महाराष्ट्र में भी सत्ता समीकरण बदलने लगे। विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के बीच गठबंधन, टूट-फूट और पुनर्गठन की प्रक्रिया ने मतदाता व्यवहार को प्रभावित किया। 2014, 2019 और उसके बाद के चुनावों में राजनीतिक पुनर्संरचना तथा दल-विभाजन ने राज्य की चुनावी राजनीति को और अधिक जटिल बना दिया।

सामाजिक दृष्टि से महाराष्ट्र विविध जातीय, भाषाई और आर्थिक समूहों का राज्य है। पश्चिमी महाराष्ट्र का सहकारी आंदोलन, विदर्भ का कृषि संकट, मराठवाड़ा की आर्थिक चुनौतियाँ तथा मुंबई–पुणे क्षेत्र का शहरी विकास ये सभी कारक चुनावी राजनीति को प्रभावित करते हैं। इस विविधता ने क्षेत्रीय दलों को विशिष्ट

राजनीतिक आधार प्रदान किया है। इसी ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक पृष्ठभूमि के संदर्भ में यह अध्ययन महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और उनके द्वारा मतदाता व्यवहार पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण करने का प्रयास करता है।

अध्ययन के उद्देश्य:

इस शोध का मुख्य उद्देश्य महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका तथा उनके द्वारा मतदाता व्यवहार पर पड़े प्रभाव का विश्लेषण करना है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं —

- महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों के चुनावी प्रदर्शन का विश्लेषण कर उनकी वास्तविक राजनीतिक भूमिका का मूल्यांकन करना।
- मतदाता व्यवहार पर क्षेत्रीय दलों की विचारधारा, नेतृत्व और क्षेत्रीय मुद्दों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध पद्धति:

इस अध्ययन में महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का विश्लेषण करने के लिए वर्णनात्मक (Descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (Analytical) शोध पद्धति अपनाई गयी है। यह अध्ययन गुणात्मक (Qualitative) दृष्टिकोण पर आधारित होगा।

सैद्धांतिक ढाँचा : इस शोध में महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की भूमिका और मतदाता व्यवहार को समझने के लिए विभिन्न राजनीतिक सिद्धांतों को आधार बनाया जाएगा। सैद्धांतिक ढाँचा अध्ययन को वैचारिक दिशा और विश्लेषणात्मक आधार प्रदान करता है।

- **मतदान व्यवहार का समाजशास्त्रीय मॉडल (Sociological Model):** यह मॉडल बताता है कि मतदाता का निर्णय उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि -जैसे जाति, वर्ग, धर्म, शिक्षा, क्षेत्र और आर्थिक स्थिति से प्रभावित होता है। महाराष्ट्र में विभिन्न सामाजिक समूहों की राजनीतिक निष्ठाएँ क्षेत्रीय दलों के समर्थन को प्रभावित करती रही हैं।
- **मनोवैज्ञानिक मॉडल (Psychological Model):** इस सिद्धांत के अनुसार मतदाता का पार्टी से भावनात्मक लगाव, नेतृत्व के प्रति विश्वास और राजनीतिक पहचान मतदान निर्णय को प्रभावित करती है। उदाहरणतः शिवसेना जैसे दलों ने क्षेत्रीय अस्मिता और भावनात्मक मुद्दों के माध्यम से मतदाताओं से जुड़ाव स्थापित किया।
- **तर्कसंगत चयन सिद्धांत (Rational Choice Theory):** यह सिद्धांत मानता है कि मतदाता अपने हितों को ध्यान में रखकर तर्कसंगत निर्णय लेते हैं। यदि कोई क्षेत्रीय दल स्थानीय विकास, किसान हित या रोजगार जैसे मुद्दों पर प्रभावी कार्यक्रम प्रस्तुत करता है, तो मतदाता उसके पक्ष में मतदान कर सकते हैं।

- **क्षेत्रीयता (Regionalism) का सिद्धांत:** क्षेत्रीयता उस भावना को दर्शाता है जिसमें किसी विशेष क्षेत्र की भाषा, संस्कृति और पहचान राजनीतिक रूप ले लेती है। महाराष्ट्र में क्षेत्रीय अस्मिता के आधार पर कई दल उभरे, जैसे राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी, जिन्होंने राज्य-स्तरीय मुद्दों को प्रमुखता दी।
- **बहुदलीय व्यवस्था का सिद्धांत (Multi-Party System Theory):** महाराष्ट्र की राजनीति बहुदलीय संरचना पर आधारित है, जहाँ क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के बीच प्रतिस्पर्धा और गठबंधन दोनों दिखाई देते हैं। यह सिद्धांत समझने में सहायक है कि किस प्रकार गठबंधन राजनीति चुनाव परिणामों और मतदाता व्यवहार को प्रभावित करती है।

महाराष्ट्र में क्षेत्रीय दलों का उदय और विकास:

महाराष्ट्र में क्षेत्रीय दलों का उदय राज्य की भाषाई पहचान, सामाजिक संरचना और आर्थिक हितों से गहराई से जुड़ा रहा है। प्रारंभिक दशकों में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का वर्चस्व था, परंतु शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और रोजगार की प्रतिस्पर्धा ने क्षेत्रीय राजनीति के लिए आधार तैयार किया।

- **शिवसेना का उदय (1966) :** 1966 में शिवसेना की स्थापना ने महाराष्ट्र की राजनीति में निर्णायक मोड़ दिया। "मराठी मानुष" और स्थानीय रोजगार जैसे मुद्दों पर आधारित जनसमर्थन ने इसे मुंबई–ठाणे क्षेत्र में मजबूत आधार दिया। 1990 के दशक में इसने हिंदुत्व और गठबंधन राजनीति के माध्यम से राज्यव्यापी प्रभाव स्थापित किया।
- **राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी का गठन (1999) :** 1999 में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी के गठन ने क्षेत्रीय राजनीति को नया आयाम दिया। इस दल ने सहकारी आंदोलन, किसान हित और पश्चिमी महाराष्ट्र के ग्रामीण नेतृत्व को संगठित कर मजबूत सामाजिक आधार बनाया। गठबंधन राजनीति में इसकी भूमिका अक्सर सत्ता संतुलन की निर्णायक रही।
- **महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (2006) :** 2006 में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के गठन ने मराठी अस्मिता की राजनीति को नई शैली में प्रस्तुत किया। यद्यपि इसका प्रभाव सीमित क्षेत्रों में केंद्रित रहा, पर शहरी मतदाताओं और युवा वर्ग में इसने वैकल्पिक राजनीतिक विमर्श को जन्म दिया।
- **वंचित बहुजन आघाडी:** वंचित बहुजन आघाडी की स्थापना 2018 में प्रकाश आंबेडकर के नेतृत्व में हुई, जिसका उद्देश्य दलित, बहुजन और वंचित वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देना था। 2019 के चुनावों में इसने उल्लेखनीय मत-प्रतिशत प्राप्त कर कई क्षेत्रों में पारंपरिक राजनीतिक समीकरणों को प्रभावित किया।

विधानसभा चुनावों का ऐतिहासिक विश्लेषण (1990–2024) :

1990 से 2024 तक महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों ने राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे हैं। इस अवधि में बहुदलीय प्रतिस्पर्धा, गठबंधन राजनीति और क्षेत्रीय दलों की निर्णायक भूमिका स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आई है।

1. **1990 का दशक: गठबंधन युग की शुरुआत :** 1995 के चुनाव में शिवसेना-भारतीय जनता पक्ष गठबंधन ने सत्ता प्राप्त की, जिससे पहली बार भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस का दीर्घकालीन वर्चस्व समाप्त हुआ। यह महाराष्ट्र में क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का महत्वपूर्ण मोड़ था।
2. **1999–2009: कांग्रेस–राष्ट्रवादी गठबंधन :** 1999 में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी के गठन के बाद कांग्रेस–राष्ट्रवादी गठबंधन ने लगातार दो कार्यकाल (1999, 2004) तक शासन किया। इस अवधि में क्षेत्रीय नेतृत्व और ग्रामीण आधार निर्णायक रहे।
3. **2014: सत्ता परिवर्तन :** 2014 के चुनाव में भाजपा सबसे बड़ी पार्टी बनकर उभरी और क्षेत्रीय दलों के साथ नए समीकरण बने। यह चुनाव राष्ट्रीय मुद्दों और नेतृत्व के प्रभाव को दर्शाता है, किंतु क्षेत्रीय दलों की भूमिका सत्ता गठन में बनी रही।
4. **2019: गठबंधन पुनर्संरचना :** 2019 में प्रारंभिक रूप से भाजपा–शिवसेना गठबंधन को बहुमत मिला, किंतु बाद में राजनीतिक पुनर्गठन हुआ और शिवसेना ने कांग्रेस–राष्ट्रवादी के साथ सरकार बनाई। यह घटना गठबंधन राजनीति की जटिलता और क्षेत्रीय दलों की निर्णायक स्थिति को दर्शाती है।
5. **2022–2024: दल-विभाजन और नई राजनीतिक संरचना :** इस अवधि में दलों के भीतर विभाजन और नए गठबंधन बने, जिससे राजनीतिक परिदृश्य और अधिक जटिल हुआ। मतदाता व्यवहार पर नेतृत्व परिवर्तन और दल-पुनर्गठन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दिया।

1990 से 2024 तक के चुनावों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि महाराष्ट्र में क्षेत्रीय दल केवल सहयोगी नहीं, बल्कि सत्ता संतुलन के प्रमुख केंद्र रहे हैं। गठबंधन परिवर्तन, नेतृत्व की भूमिका और क्षेत्रीय मुद्दों ने मतदाता व्यवहार को निरंतर प्रभावित किया है, जिससे राज्य की राजनीति गतिशील और बहुस्तरीय बनी रही है।

महाराष्ट्र विधानसभा चुनाव (1995–2019): निर्वाचित सीटों की वितरण तालिका

वर्ष	कांग्रेस	राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी	शिवसेना	भाजपा	प्रमुख प्रवृत्ति
1995	80	—	73	65	शिवसेना–भाजपा गठबंधन सत्ता में
1999	75	58	69	56	कांग्रेस–NCP गठबंधन सरकार
2004	69	71	62	54	कांग्रेस–NCP पुनः सत्ता में
2009	82	62	44	46	कांग्रेस गठबंधन मजबूत
2014	42	41	63	122	भाजपा सबसे बड़ी पार्टी
2019	44	54	56	105	गठबंधन पुनर्संरचना
2024	16	41	57	132	भाजपा सबसे बड़ी पार्टी

गठबंधन राजनीति और क्षेत्रीय दल:

महाराष्ट्र की राजनीति में गठबंधन (Coalition) एक स्थायी और निर्णायक तत्व बन चुका है। 1990 के दशक के बाद से कोई भी प्रमुख दल पूर्ण बहुमत के साथ लंबे समय तक स्थिर शासन नहीं कर सका, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय दल सत्ता-निर्माण की प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाने लगे।

1995 में शिवसेना-भारतीय जनता पक्ष गठबंधन ने पहली बार कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती दी। इसके बाद 1999 में राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के गठबंधन ने सत्ता संभाली। 2019 में गठबंधन राजनीति ने नया मोड़ लिया, जब शिवसेना ने भाजपा से अलग होकर कांग्रेस और राष्ट्रवादी के साथ मिलकर "महाविकास आघाड़ी" सरकार का गठन किया। गठबंधन राजनीति ने क्षेत्रीय दलों को "किंगमेकर" की भूमिका प्रदान की है। वे न केवल सीटों की संख्या के आधार पर बल्कि सामाजिक समर्थन और क्षेत्रीय प्रभाव के कारण सत्ता संतुलन तय करने में सक्षम रहे हैं। गठबंधन परिवर्तन से मतदाता व्यवहार भी प्रभावित होता है, क्योंकि मतदाता अक्सर स्थानीय मुद्दों, नेतृत्व और राजनीतिक स्थिरता को ध्यान में रखकर अपना निर्णय बदलते हैं। महाराष्ट्र में गठबंधन राजनीति और क्षेत्रीय दल एक-दूसरे के पूरक बन चुके हैं, जहाँ सत्ता गठन, नीति-निर्माण और चुनावी रणनीति में क्षेत्रीय दलों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

क्षेत्रीय मुद्दे और चुनावी रणनीतियाँ:

महाराष्ट्र की राजनीति में क्षेत्रीय मुद्दे चुनावी रणनीतियों के केंद्र में रहे हैं। "मराठी अस्मिता", स्थानीय रोजगार, किसान संकट, सहकारी आंदोलन, सिंचन परियोजनाएँ और क्षेत्रीय विकास जैसे विषयों ने मतदाताओं के मानस को गहराई से प्रभावित किया है। विशेषतः शहरी क्षेत्रों में मराठी पहचान और रोजगार का प्रश्न, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि संकट और सहकारी संस्थाओं की राजनीति प्रमुख चुनावी मुद्दे रहे हैं।

शिवसेना ने "मराठी मानुष" और स्थानीय अधिकारों के मुद्दे को अपने राजनीतिक अभियान का आधार बनाया, वहीं राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी ने किसान, सहकारी क्षेत्र और ग्रामीण नेतृत्व को संगठित कर अपना जनाधार मजबूत किया। कुछ दलों ने क्षेत्रीय असंतुलन (जैसे विदर्भ, मराठवाड़ा के विकास) को भी चुनावी विमर्श में स्थान दिया। चुनावी रणनीतियों में रैलियाँ, स्थानीय नेतृत्व का सशक्तिकरण, सामाजिक समूहों के साथ गठजोड़, तथा मुद्दा-आधारित प्रचार प्रमुख रहे हैं। हाल के वर्षों में सोशल मीडिया, डिजिटल प्रचार और लक्षित मतदाता संपर्क (micro-level campaigning) ने भी रणनीतियों को नई दिशा दी है। महाराष्ट्र में क्षेत्रीय मुद्दे केवल राजनीतिक नारे नहीं रहे, बल्कि चुनावी सफलता की ठोस रणनीतिक आधारशिला बने हैं, जिन्होंने मतदाता व्यवहार को निर्णायक रूप से प्रभावित किया है।

शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव:

महाराष्ट्र में क्षेत्रीय दलों का प्रभाव शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में अलग-अलग रूपों में दिखाई देता है। शहरी क्षेत्रों, विशेषकर मुंबई–पुणे जैसे महानगरों में स्थानीय पहचान, रोजगार, बुनियादी सुविधाएँ और नगर विकास जैसे मुद्दे अधिक प्रभावशाली रहते हैं। इन क्षेत्रों में शिवसेना ने "मराठी अस्मिता" और शहरी स्थानीय निकायों के माध्यम से मजबूत राजनीतिक आधार तैयार किया। इसके विपरीत, ग्रामीण क्षेत्रों में किसान

समस्याएँ, सहकारी संस्थाएँ, सिंचन, गन्ना उद्योग और कृषि ऋण जैसे मुद्दे मतदान व्यवहार को प्रभावित करते हैं। राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी ने विशेषकर पश्चिमी महाराष्ट्र में सहकारी आंदोलन और ग्रामीण नेतृत्व के आधार पर प्रभाव स्थापित किया। शहरी मतदाता अपेक्षाकृत विकास और प्रशासनिक दक्षता पर ध्यान देते हैं, जबकि ग्रामीण मतदाता स्थानीय नेतृत्व और कृषि-आधारित मुद्दों से अधिक प्रभावित होते हैं। क्षेत्रीय दल अपने चुनावी अभियान को क्षेत्र की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार ढालते हैं, जिससे उनका प्रभाव दोनों क्षेत्रों में अलग-अलग रूप में प्रकट होता है।

क्षेत्रीय बनाम राष्ट्रीय दल: प्रतिस्पर्धा और सहयोग:

महाराष्ट्र की राजनीति में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के बीच संबंध केवल प्रतिस्पर्धा तक सीमित नहीं रहे, बल्कि समय-समय पर सहयोग (गठबंधन) के रूप में भी सामने आए हैं। राज्य की बहुदलीय व्यवस्था में शिवसेना और राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी जैसे क्षेत्रीय दलों ने अपने सामाजिक और क्षेत्रीय आधार के कारण महत्वपूर्ण शक्ति अर्जित की, जबकि भारतीय जनता पार्टी और भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस जैसे राष्ट्रीय दल व्यापक वैचारिक और संगठनात्मक ढाँचे के साथ प्रतिस्पर्धा में रहे। प्रतिस्पर्धा का स्वरूप मुख्यतः मत-प्रतिशत, सीटों और नेतृत्व की लोकप्रियता पर आधारित रहा है। कई निर्वाचन क्षेत्रों में क्षेत्रीय दल स्थानीय मुद्दों के कारण राष्ट्रीय दलों पर बढ़त बना लेते हैं। वहीं, सहयोग की राजनीति में पूर्व-चुनावी और पश्च-चुनावी गठबंधन सत्ता गठन का आधार बनते हैं। 1995, 1999, 2014 और 2019 के चुनावों में यह स्पष्ट हुआ कि बिना क्षेत्रीय दलों के समर्थन के स्थिर सरकार बनाना कठिन रहा है।

महाराष्ट्र में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों का संबंध गतिशील रहा है-जहाँ वे एक ओर राजनीतिक प्रतिस्पर्धी हैं, वहीं दूसरी ओर सत्ता-संतुलन के लिए सहयोगी भी बनते हैं। यही द्वंद्वात्मक संबंध राज्य की चुनावी राजनीति और मतदाता व्यवहार को निरंतर प्रभावित करता है।

निष्कर्ष:

महाराष्ट्र के विधानसभा चुनावों (1990–2024) के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि क्षेत्रीय दल राज्य की राजनीति में केवल सहयोगी शक्ति नहीं, बल्कि सत्ता-संतुलन के केंद्रीय स्तंभ रहे हैं। शिवसेना, राष्ट्रवादी काँग्रेस पार्टी,वंचित बहुजन आघाडी, महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना जैसे दलों ने क्षेत्रीय अस्मिता, किसान मुद्दों, सहकारी आंदोलन और स्थानीय नेतृत्व के माध्यम से व्यापक जनाधार निर्मित किया है। गठबंधन राजनीति ने क्षेत्रीय दलों की भूमिका को और अधिक निर्णायक बनाया है, जहाँ वे सरकार गठन और नीतिगत निर्णयों में महत्वपूर्ण प्रभाव रखते हैं। चुनावी रुझानों से यह भी स्पष्ट होता है कि मतदाता व्यवहार केवल राष्ट्रीय मुद्दों पर आधारित नहीं है, बल्कि क्षेत्रीय पहचान, स्थानीय समस्याएँ और नेतृत्व की विश्वसनीयता भी समान रूप से प्रभाव डालती हैं।

अंततः, महाराष्ट्र की बहुदलीय राजनीति में क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दलों के बीच प्रतिस्पर्धा और सहयोग दोनों की प्रक्रिया ने राज्य की चुनावी संरचना को गतिशील बनाया है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि क्षेत्रीय दल भविष्य में भी महाराष्ट्र की राजनीतिक दिशा और मतदाता व्यवहार को प्रभावित करते रहेंगे।

संदर्भ :

1. ब्रास, पी. आर. (1994). *आज़ादी के बाद भारत की राजनीति (दूसरा एडिशन)*. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
2. देशपांडे, एस. (2003). *कंटेंपररी इंडिया: एक सोशियोलॉजिकल नज़रिया*. पेंगुइन बुक्स.
3. पलशिकर, एस., सूरी, के. सी., और यादव, वाई. (एडिटर). (2014). *भारतीय राज्यों में पार्टी कॉम्पिटिशन: कांग्रेस के बाद की पॉलिटिक्स में चुनावी पॉलिटिक्स*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
4. फड़के, वाई. डी. (1979). *पॉलिटिक्स और भाषा*. हिमालय पब्लिशिंग हाउस.
5. रॉड्रिग्स, वी. (2002). *भारत में दलित पॉलिटिक्स को समझना*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
6. यादव, वाई., और पलशिकर, एस. (2009). *किस्मत और आज़ादी के बीच: आज की भारतीय पॉलिटिक्स पर निबंध*. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. इलेक्शन कमीशन ऑफ़ इंडिया. (1990–2024). *महाराष्ट्र लेजिस्लेटिव असेंबली के जनरल इलेक्शन पर स्टैटिस्टिकल रिपोर्ट*. गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया.
8. पलशिकर, एस. (2004). *महाराष्ट्र पॉलिटिक्स: पार्टीज़, इंटरेस्ट्स और आइडेंटिटीज़*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ पुणे प्रेस.
9. सिरसिकर, वी. एम. (2001). *महाराष्ट्र में पार्टी सिस्टम: कंटिन्यूटी और चेंज*. गोखले इंस्टीट्यूट ऑफ़ पॉलिटिक्स एंड इकोनॉमिक्स.
10. लेले, जे. (1982). *एलीट प्लूरलिज़्म और क्लास रूल: महाराष्ट्र में पॉलिटिकल डेवलपमेंट*. यूनिवर्सिटी ऑफ़ टोरंटो प्रेस.
11. पलशिकर, एस., और देशपांडे, आर. (2010). महाराष्ट्र में इलेक्टोरल पॉलिटिक्स: बदलता पार्टी कॉम्पिटिशन. *डिपार्टमेंट ऑफ़ पॉलिटिक्स एंड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ पुणे
12. जाधव, भालचंद्र. (2012). *महाराष्ट्र में पार्टी पॉलिटिक्स*. पुणे: प्रशांत प्रकाशन.
13. कुलकर्णी, वी. जी. (2007). *महाराष्ट्र में रीजनल पार्टियों का उदय*. पुणे: यूनिवर्सिटी प्रकाशन.
14. गायकवाड़, डी. एन. (2014). *महाराष्ट्र की सोशियो-पॉलिटिकल रियलिटी*. नासिक: प्रगति प्रकाशन.
15. सावंत, एस. बी. (2020). *महाराष्ट्र में कोएलिशन पॉलिटिक्स*. मुंबई: संकेत प्रकाशन.
16. पवार, डॉ. प्रकाश, राजनीतिक चर्चा का माध्यम: सोशल शामदिया, दै.सकाल, 29 जुलाई 2018.

Received: 10.02.2026 | Accepted: 12.02.2026 | Published: 30.03.2026

1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण का विकास

उमाकांत यादव*

umakantyadav2910@gmail.com

सारांश :-

1857 का स्वतंत्रता संघर्ष भारतीय इतिहास की वह घटना है जिसने आधुनिक भारत की राजनीतिक चेतना के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी संरचना को भी निर्णायक रूप से प्रभावित किया। यह संघर्ष केवल एक सैन्य विद्रोह नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध भारतीय समाज के भीतर लंबे समय से संचित असंतोष, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक अपमान और राजनीतिक वंचना की सामूहिक प्रतिक्रिया था। अंग्रेज़ी शासन की नीतियों ने भारतीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असंतुलन उत्पन्न कर दिया था, जिससे जनमानस में प्रतिरोध की भावना धीरे-धीरे संगठित रूप लेने लगी। यही संगठित चेतना आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन और हिन्दी नवजागरण की वैचारिक भूमि तैयार करती है।

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में भारत की पारंपरिक अर्थव्यवस्था को सुनियोजित ढंग से नष्ट किया गया। ग्रामीण व्यवस्था भारी करों के बोझ से टूटने लगी, कुटीर और हस्तशिल्प उद्योग समाप्ति की ओर बढ़े और भारतीय व्यापार अंग्रेज़ी पूँजी के अधीन हो गया। 'स्थायी बंदोबस्त' जैसी नीतियों ने किसानों को भूमिहीन बना दिया। सामाजिक स्तर पर मिशनरी गतिविधियों और अंग्रेज़ी शिक्षा को भारतीय परंपराओं के लिए खतरे के रूप में देखा गया। इस आर्थिक और सांस्कृतिक संकट ने भारतीय समाज में असंतोष की गहरी जड़ें जमा दीं।

सैन्य क्षेत्र में भारतीय सिपाहियों के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें कम वेतन, पदोन्नति में भेदभाव और धार्मिक स्वतंत्रता के हनन का सामना करना पड़ता था। एनफ़ील्ड राइफ़ल के कारतूसों से जुड़ी घटना ने इस असंतोष को विस्फोटक रूप प्रदान किया। यह घटना केवल धार्मिक भावना से जुड़ी नहीं थी, बल्कि यह इस बात का प्रतीक थी कि अंग्रेज़ी सत्ता भारतीय अस्मिता के प्रति पूर्णतः असंवेदनशील है।

मुख्य शब्द :

1857 का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी नवजागरण, विद्रोह, भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, अंग्रेज़ी शासन, सैनिक विद्रोह

10 मई 1857 को मेरठ से प्रारंभ हुआ विद्रोह शीघ्र ही दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, झाँसी, अवध और मध्य भारत के अनेक क्षेत्रों में फैल गया। बहादुरशाह ज़फ़र को दिल्ली में विद्रोह का प्रतीकात्मक नेतृत्व मिला। नाना साहब, तात्या टोपे, बेगम हज़रत महल और रानी लक्ष्मीबाई जैसे नेताओं ने अपने-अपने क्षेत्रों में अंग्रेज़ी सत्ता को चुनौती दी। इस संघर्ष में जनसाधारण की भागीदारी यह सिद्ध करती है कि यह विद्रोह केवल सैनिकों तक सीमित नहीं था।

"मैं अपनी झांसी नहीं दूँगी"[1] रानी लक्ष्मीबाई का यह वाक्य भारतीय स्वाधीनता चेतना का प्रतीक बन गया। उनका संघर्ष न केवल राजनीतिक सत्ता के विरुद्ध था, बल्कि वह स्त्री-सशक्तिकरण और राष्ट्रीय स्वाभिमान का भी प्रतीक था। 1857 के संघर्ष में महिलाओं की भागीदारी भारतीय समाज की उस आंतरिक शक्ति को दर्शाती है, जो औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध खड़ी हुई।

* **शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी**

यद्यपि 1857 का संघर्ष सैन्य दृष्टि से असफल रहा, परंतु इसके परिणाम ऐतिहासिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए। ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन समाप्त कर भारत को ब्रिटिश क्राउन के अधीन कर दिया गया। अंग्रेज़ों ने प्रशासनिक ढाँचे में परिवर्तन किए, किंतु इसके साथ-साथ भारतीय समाज में यह बोध और अधिक प्रबल हुआ कि विदेशी शासन केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दासता भी है।

"1857 का विद्रोह केवल सैनिक असंतोष नहीं था, वह भारतीय जनता की राष्ट्रीय चेतना की पहली व्यापक अभिव्यक्ति थी।"[2] 1857 के बाद भारत में एक नए बौद्धिक और सांस्कृतिक वातावरण का निर्माण हुआ। आधुनिक शिक्षा, प्रेस और मुद्रण तकनीक के विकास ने विचारों के प्रसार को तीव्र किया। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में यह परिवर्तन विशेष रूप से प्रभावशाली रहा। हिन्दी भाषा अब धार्मिक और साहित्यिक सीमाओं से बाहर निकलकर सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना की भाषा बनने लगी। हिन्दी नवजागरण इसी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम था। यह नवजागरण समाज को रूढ़ियों, अंधविश्वासों और दास मानसिकता से मुक्त करने का प्रयास था। 1857 की क्रांति ने जिस स्वतंत्रता चेतना को जन्म दिया, वही चेतना हिन्दी साहित्य में नवजागरण के रूप में विकसित हुई। साहित्यकारों ने भाषा को जनसाधारण से जोड़ा और राष्ट्रीय प्रश्नों को साहित्य के केंद्र में रखा।

"हिन्दी नवजागरण की वैचारिक पृष्ठभूमि में 1857 की क्रांति एक निर्णायक ऐतिहासिक प्रेरणा के रूप में विद्यमान है।"[3] भारतेन्दु हरिश्चंद्र के साहित्य में यह चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उन्होंने नाटक, निबंध और पत्रकारिता के माध्यम से अंग्रेज़ी शासन की आलोचना की और भारतीय समाज की वास्तविक स्थिति को उजागर किया। उनके लेखन में राष्ट्रबोध और सामाजिक सुधार की आकांक्षा स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। "भारतेंदु युग में हिन्दी साहित्य पहली बार राष्ट्र और समाज की वास्तविक समस्याओं से सीधा संवाद स्थापित करता है।"[4] द्विवेदी युग में हिन्दी नवजागरण अधिक संगठित और अनुशासित रूप में सामने आया। महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में 'सरस्वती' पत्रिका ने हिन्दी साहित्य को वैचारिक स्पष्टता, भाषा-शुद्धता और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व प्रदान किया। इस काल में साहित्य नैतिकता, राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक सुधार का माध्यम बना। "सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीय चेतना का सशक्त मंच प्रदान किया।"[5]

1857 की स्मृति इस पूरे साहित्यिक विकासक्रम में अंतर्धारा के रूप में प्रवाहित होती रही। स्वतंत्रता, स्वदेशी, आत्मसम्मान और सामाजिक पुनर्निर्माण हिन्दी साहित्य के केंद्रीय सरोकार बने। इस प्रकार हिन्दी नवजागरण ने 1857 के संघर्ष को सांस्कृतिक और वैचारिक विस्तार प्रदान किया। 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के बाद भारतीय समाज में जो मानसिक परिवर्तन आया, वह केवल राजनीतिक स्तर तक सीमित नहीं रहा। इस संघर्ष ने भारतीयों को पहली बार यह अनुभूति कराई कि वे एक साझा इतिहास, पीड़ा और लक्ष्य से जुड़े हुए हैं। अंग्रेज़ों द्वारा विद्रोह के दमन के पश्चात् भले ही भय और निराशा का वातावरण बना, परंतु उसी भय के भीतर राष्ट्रीय चेतना का बीज और अधिक गहराई से अंकुरित हुआ। यह चेतना प्रत्यक्ष राजनीतिक आंदोलन के रूप में तुरंत सामने नहीं आई, बल्कि साहित्य, भाषा और संस्कृति के माध्यम से धीरे-धीरे विकसित होती गई।

1857 के बाद अंग्रेज़ी शासन ने प्रशासनिक नियंत्रण को कठोर किया, किंतु साथ ही शिक्षा और प्रेस के विस्तार को भी बढ़ावा दिया, जिसका उद्देश्य एक ऐसा वर्ग तैयार करना था जो अंग्रेज़ी सत्ता का सहयोगी बन सके। परंतु यही शिक्षा और प्रेस भारतीय समाज में नवजागरण का माध्यम बन गए। हिन्दी क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों और नाटकों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होने लगा। हिन्दी भाषा जनसाधारण की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का सबसे प्रभावी माध्यम सिद्ध हुई। "भाषा किसी भी राष्ट्र की आत्मा होती है और उसके पतन में राष्ट्र का पतन निहित होता है।"[6]

हिन्दी नवजागरण की यह प्रक्रिया 1857 के संघर्ष की स्मृति से निरंतर ऊर्जा प्राप्त करती रही। यद्यपि तत्कालीन साहित्य में 1857 का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से कम मिलता है, फिर भी उसके भाव, पीड़ा और आकांक्षा साहित्य की अंतर्धारा में निरंतर उपस्थित हैं। राष्ट्रीय अपमान, स्वाधीनता की आकांक्षा और सांस्कृतिक पुनरुत्थान जैसे विषय हिन्दी साहित्य में प्रमुखता से उभरने लगे। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के युग में हिन्दी साहित्य सामाजिक चेतना का सशक्त माध्यम बन गया। उनके नाटकों और निबंधों में अंग्रेज़ी शासन के प्रति असंतोष और भारतीय समाज की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण मिलता है। वे साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का उपकरण मानते थे। उनके लेखन में राष्ट्रीय भावना स्पष्ट रूप से

दिखाई देती है। “जो समाज अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति उदासीन हो जाता है, वह शीघ्र ही पराधीनता को स्वीकार कर लेता है।”[7]

भारतेन्दु युग के बाद द्विवेदी युग में हिन्दी नवजागरण अधिक व्यवस्थित और अनुशासित रूप में सामने आया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य को भावुकता से निकालकर विचार और तर्क की भूमि पर स्थापित किया। ‘सरस्वती’ पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक उत्तरदायित्व और भाषा-शुद्धता से जोड़ा। इस काल में लेखकों को यह बोध कराया गया कि साहित्य का उद्देश्य केवल सौंदर्य नहीं, बल्कि समाज का मार्गदर्शन भी है। “साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, उसका पथ-प्रदर्शक भी होता है।”[8]

द्विवेदी युगीन साहित्य में 1857 की स्मृति प्रत्यक्ष न होकर भी वैचारिक रूप में विद्यमान रहती है। स्वतंत्रता, आत्मसम्मान, स्वदेशी और सामाजिक सुधार जैसे विचार इस युग के साहित्य की केंद्रीय धुरी बनते हैं। यह वही चेतना है, जो 1857 के संघर्ष से उत्पन्न हुई थी और अब साहित्य के माध्यम से परिपक्व रूप ले रही थी। हिन्दी कविता में भी राष्ट्रीय भावना का विकास इसी क्रम में होता है। भारतेंदु युग से लेकर द्विवेदी युग तक कविता में देशप्रेम, सांस्कृतिक गौरव और सामाजिक चेतना के स्वर उभरने लगते हैं। कवि अब केवल श्रृंगार या भक्ति तक सीमित नहीं रहते, बल्कि समाज और राष्ट्र की समस्याओं पर भी दृष्टि डालते हैं। “उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी कविता राष्ट्रीय चेतना की प्रथम साहित्यिक अभिव्यक्ति है।”[9]

हिन्दी गद्य के विकास में भी 1857 की क्रांति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। निबंध, आलोचना और पत्रकारिता के माध्यम से हिन्दी गद्य ने समाज को नई दृष्टि प्रदान की। पत्र-पत्रिकाओं ने राजनीतिक चेतना को जनसाधारण तक पहुँचाने का कार्य किया। इस प्रकार हिन्दी नवजागरण केवल साहित्यिक आंदोलन न रहकर एक व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलन बन गया।

1857 के संघर्ष ने भारतीय समाज को यह सिखाया कि स्वतंत्रता केवल सत्ता परिवर्तन का प्रश्न नहीं है, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक मुक्ति का भी प्रश्न है। हिन्दी नवजागरण ने इसी मुक्ति को भाषा और साहित्य के माध्यम से संभव बनाया। दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर आधुनिक भारतीय चेतना के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए। “राष्ट्रीय आंदोलन की वैचारिक भूमि साहित्य और संस्कृति के बिना निर्मित नहीं हो सकती।”[10]

हिन्दी उपन्यास का विकास भी उसी ऐतिहासिक चेतना से जुड़ा हुआ है, जो 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के बाद भारतीय समाज में आकार ले रही थी। यद्यपि प्रारंभिक हिन्दी उपन्यासों में 1857 का उल्लेख प्रत्यक्ष रूप में कम मिलता है, फिर भी उनके कथ्य, पात्रों और सामाजिक दृष्टि में पराधीनता के प्रति असंतोष और आत्मसम्मान की आकांक्षा स्पष्ट रूप से विद्यमान रहती है। उपन्यासकारों ने औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत भारतीय समाज की टूटती हुई संरचना, नैतिक संकट और सांस्कृतिक विघटन को यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया।

“हिन्दी उपन्यास का जन्म भारतीय समाज की आधुनिक चेतना के साथ जुड़ा हुआ है।”[11] यह आधुनिक चेतना आकस्मिक नहीं थी, बल्कि 1857 के बाद उत्पन्न उस ऐतिहासिक अनुभव की देन थी, जिसने भारतीय समाज को आत्ममंथन के लिए विवश किया। उपन्यास साहित्य में सामाजिक विषमता, शोषण, दास मानसिकता और राष्ट्रीय अपमान के प्रश्न उठाए जाने लगे। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास राष्ट्रीय चेतना का सशक्त माध्यम बनता चला गया।

हिन्दी नाटक भी नवजागरण की इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। भारतेन्दु युगीन नाटकों में अंग्रेज़ी शासन के प्रति असंतोष, भारतीय समाज की दुर्दशा और सांस्कृतिक पतन का तीखा चित्रण मिलता है। मंच के माध्यम से राष्ट्रबोध को जनसाधारण तक पहुँचाया गया। नाटक तत्कालीन समाज का आईना ही नहीं, बल्कि चेतना जगाने का प्रभावी साधन बन गया। “नाटक जनता की चेतना को झकझोरने का सबसे सशक्त माध्यम है।”[12]

पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी नवजागरण की भूमिका विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1857 के बाद हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को व्यापक रूप से उठाया। समाचार पत्रों ने अंग्रेज़ी शासन की नीतियों की आलोचना की और भारतीय समाज में राष्ट्रीय चेतना को प्रबल किया। हिन्दी पत्रकारिता ने भाषा को जनसाधारण के निकट

पहुँचाया और विचारों के लोकतंत्रीकरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। "हिन्दी पत्रकारिता ने राष्ट्रीय चेतना को जनभाषा का स्वर प्रदान किया।"[13]

1857 की क्रांति की असफलता ने भारतीय समाज को यह सिखाया कि बिना संगठन और वैचारिक एकता के स्वतंत्रता संभव नहीं है। यही कारण है कि इसके बाद साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में आत्मसंघर्ष और आत्मबोध की प्रवृत्ति तीव्र हो गई। हिन्दी नवजागरण इसी आत्मबोध का परिणाम था। साहित्यकारों ने भारतीय परंपरा, इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्व्याख्या की, जिससे राष्ट्रीय गौरव की भावना विकसित हो सके। "नवजागरण का मूल उद्देश्य सांस्कृतिक आत्मविश्वास की पुनर्स्थापना है।"[14]

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हिन्दी साहित्य में जो वैचारिक परिवर्तन दिखाई देता है, वह सीधे-सीधे 1857 के अनुभव से जुड़ा हुआ है। यह साहित्य केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं था, बल्कि एक सुस्पष्ट वैचारिक आंदोलन था, जिसका लक्ष्य समाज को मानसिक दासता से मुक्त करना था। इसी क्रम में भाषा की शुद्धता, शैली की स्पष्टता और विचारों की प्रामाणिकता पर बल दिया गया।

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना और अधिक तीव्र होती चली गई। यह वही चेतना थी, जो 1857 के संघर्ष से उत्पन्न होकर भारतेन्दु और द्विवेदी युग से गुजरती हुई आगे के साहित्यिक आंदोलनों में प्रवाहित हुई। इस निरंतरता ने हिन्दी साहित्य को केवल साहित्य नहीं रहने दिया, बल्कि उसे राष्ट्रीय आंदोलन का वैचारिक आधार बना दिया। "हिन्दी साहित्य आधुनिक भारत की राष्ट्रीय आत्मा की अभिव्यक्ति है।"[15]

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण ऐतिहासिक रूप से एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। 1857 ने भारतीय समाज को प्रतिरोध की चेतना दी, जबकि हिन्दी नवजागरण ने उस चेतना को भाषा, साहित्य और संस्कृति के माध्यम से स्थायित्व प्रदान किया। दोनों मिलकर आधुनिक भारतीय चेतना के निर्माण की आधारशिला रखते हैं।

हिन्दी कविता में राष्ट्रीय चेतना का विस्तार भी इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में हुआ। 1857 के संघर्ष के बाद कवियों ने देश की दुर्दशा, पराधीनता के अपमान और सांस्कृतिक पतन को अपनी कविता का विषय बनाया। यह कविता केवल सौंदर्यपरक नहीं थी, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व से जुड़ी हुई थी। कविता जनता के मन में सोई हुई चेतना को जगाने का साधन बनी। "हिन्दी कविता ने राष्ट्रीय भावना को भावात्मक आधार प्रदान किया।"[16]

भारतेंदु युग की कविता में देशप्रेम, सामाजिक सुधार और आत्मगौरव की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। कवियों ने भारतीय समाज को उसकी गुलामी का बोध कराया और उसे आत्मसम्मान के साथ खड़े होने के लिए प्रेरित किया। यह वही चेतना थी, जो 1857 में सशस्त्र संघर्ष के रूप में प्रकट हुई थी और अब साहित्य के माध्यम से वैचारिक संघर्ष में बदल गई थी। "भारतेंदु युग की कविता राष्ट्रीय चेतना की प्रथम संगठित अभिव्यक्ति है।"[17]

इसके बाद द्विवेदी युग में यह चेतना और अधिक व्यवस्थित तथा तर्कपूर्ण हो गई। साहित्य भावुकता से आगे बढ़कर वैचारिक स्पष्टता की ओर अग्रसर हुआ। राष्ट्रीयता अब केवल भावना नहीं, बल्कि एक सुविचारित विचारधारा के रूप में सामने आई। कवियों और लेखकों ने सामाजिक कुरीतियों, अज्ञानता और विदेशी शासन की नीतियों की आलोचना की।

"द्विवेदी युग ने राष्ट्रीय चेतना को बौद्धिक अनुशासन प्रदान किया।"[18] 1857 के संघर्ष ने भारतीय समाज को यह अनुभव कराया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सांस्कृतिक और बौद्धिक स्वतंत्रता भी आवश्यक है। इसी कारण हिन्दी नवजागरण का जोर केवल सत्ता परिवर्तन पर नहीं, बल्कि मानसिक और नैतिक उत्थान पर था। साहित्य को समाज-सुधार का माध्यम माना गया।

"स्वाधीनता का प्रश्न केवल शासन का नहीं, चेतना का भी प्रश्न है।"[19] नवजागरण कालीन साहित्य में इतिहास की ओर लौटने की प्रवृत्ति भी इसी संदर्भ में समझी जानी चाहिए। अतीत के गौरवपूर्ण प्रसंगों को स्मरण कर भारतीय समाज में आत्मविश्वास जगाने का प्रयास किया गया। 1857 की पराजय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि बिना आत्मगौरव के कोई भी राष्ट्र स्वतंत्र नहीं हो सकता।

"इतिहास-बोध नवजागरण की वैचारिक रीढ़ है।"[20] हिन्दी गद्य साहित्य में निबंधों के माध्यम से राष्ट्रीय प्रश्नों पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ। लेखकों ने शिक्षा, भाषा, समाज और राजनीति के प्रश्नों को आपस में जोड़कर देखा। यह दृष्टि आधुनिक थी और औपनिवेशिक व्यवस्था के विकल्प की खोज से जुड़ी हुई थी।

"निबंध साहित्य नवजागरण का बौद्धिक मंच है।"[21] 1857 के बाद विकसित हो रही यह साहित्यिक चेतना धीरे-धीरे राष्ट्रीय आंदोलन के साथ घुल-मिल गई। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में जब गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन ने व्यापक जनाधार प्राप्त किया, तब हिन्दी साहित्य पहले से ही जनता को मानसिक रूप से तैयार कर चुका था। इस प्रकार साहित्य आंदोलन का अनुगामी नहीं, बल्कि उसका मार्गदर्शक बना।

"हिन्दी साहित्य ने स्वतंत्रता आंदोलन की वैचारिक भूमि तैयार की।"[22] यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी नवजागरण केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं था, बल्कि उसने समूचे भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण से संवाद स्थापित किया। बंगाल, महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में चल रहे सुधार आंदोलनों का प्रभाव हिन्दी क्षेत्र पर पड़ा और हिन्दी साहित्यकारों ने उनसे प्रेरणा ग्रहण की। "भारतीय नवजागरण एक अखिल भारतीय सांस्कृतिक प्रक्रिया है।"[23] 1857 के संघर्ष की स्मृति साहित्य में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में जीवित रही। कहीं वह शहीदों के बलिदान के रूप में आई, कहीं आत्मग्लानि और पराजय के बोध के रूप में, और कहीं भविष्य की स्वतंत्रता की आकांक्षा के रूप में। यह स्मृति हिन्दी नवजागरण की अंतःधारा बनी रही।

"1857 भारतीय चेतना का स्थायी प्रतीक बन गया।"[24] इस प्रकार हिन्दी नवजागरण को 1857 से अलग करके देखना ऐतिहासिक और वैचारिक दोनों दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण होगा। 1857 ने प्रतिरोध की चिंगारी दी और हिन्दी नवजागरण ने उसे वैचारिक अग्नि में परिवर्तित किया। दोनों के संयुक्त प्रभाव से आधुनिक हिन्दी साहित्य और आधुनिक भारतीय राष्ट्रबोध का निर्माण हुआ।

1857 के स्वतंत्रता संघर्ष के पश्चात् भारतीय समाज जिस गहरे मानसिक और सांस्कृतिक संकट से गुज़रा, वही संकट हिन्दी नवजागरण की प्रेरक शक्ति बना। राजनीतिक पराजय ने भारतीयों को यह बोध करा दिया कि केवल शस्त्रबल से स्वतंत्रता प्राप्त नहीं की जा सकती, जब तक समाज वैचारिक, नैतिक और सांस्कृतिक रूप से संगठित न हो। इसी बोध से साहित्य, भाषा और शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ हुई। हिन्दी साहित्यकारों ने यह अनुभव किया कि जनसाधारण तक पहुँचने के लिए जनभाषा में विचारों का प्रसार अनिवार्य है।

"भाषा के माध्यम से ही राष्ट्रीय चेतना जनता तक पहुँचती है।"[25] इस संदर्भ में हिन्दी भाषा का विकास केवल साहित्यिक घटना नहीं, बल्कि राष्ट्रीय आवश्यकता बन गया। 1857 के बाद अंग्रेज़ी शासन ने प्रशासनिक और शैक्षिक स्तर पर अंग्रेज़ी को बढ़ावा दिया, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय भाषाएँ हाशिए पर जाने लगीं। इसके विरुद्ध हिन्दी नवजागरण ने भारतीय भाषाओं की अस्मिता को पुनर्स्थापित करने का कार्य किया। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में देखने की दृष्टि इसी काल में विकसित हुई।

"हिन्दी का प्रश्न भाषा का नहीं, राष्ट्रीय अस्मिता का प्रश्न है।"[26] नवजागरणकालीन लेखकों ने भारतीय समाज की जड़ता और रूढ़ियों की तीखी आलोचना की। सामाजिक सुधार के प्रश्न—जैसे नारी शिक्षा, विधवा समस्या, जातिगत भेदभाव और अंधविश्वास—साहित्य के केंद्र में आए। यह सामाजिक आलोचना प्रत्यक्ष रूप से 1857 के बाद उत्पन्न आत्मावलोकन की प्रक्रिया से जुड़ी हुई थी। साहित्यकारों का मानना था कि सामाजिक सुधार के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता निरर्थक होगी।

"सामाजिक सुधार राष्ट्रीय उत्थान की पहली शर्त है।"[27] हिन्दी नवजागरण की यह चेतना धीरे-धीरे जनमानस में गहरी पैठ बनाती चली गई। कविता, कहानी, निबंध, नाटक और पत्रकारिता — सभी विधाओं ने मिलकर एक व्यापक वैचारिक वातावरण का निर्माण किया। यह वातावरण ही आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन का आधार बना। जब बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्वतंत्रता आंदोलन ने संगठित रूप ग्रहण किया, तब हिन्दी साहित्य पहले से ही जनता को मानसिक रूप से तैयार कर चुका था।

"साहित्य ने स्वतंत्रता आंदोलन के लिए चेतन नागरिक तैयार किए।"[28] गांधी युग में यह चेतना और अधिक व्यापक तथा जनोन्मुखी हो गई। हिन्दी साहित्य में अहिंसा, सत्य, स्वदेशी और आत्मनिर्भरता जैसे मूल्यों का समावेश हुआ। यद्यपि यह

काल 1857 से ऐतिहासिक रूप से दूर प्रतीत होता है, परंतु वैचारिक दृष्टि से दोनों के बीच गहरी निरंतरता है। 1857 ने प्रतिरोध की चेतना दी और गांधी युग ने उसे नैतिक अनुशासन प्रदान किया।

"1857 और गांधी युग एक ही चेतना की दो अवस्थाएँ हैं।"[29] हिन्दी नवजागरण ने भारतीय इतिहास की पुनर्व्याख्या भी की। औपनिवेशिक इतिहास लेखन के विरुद्ध भारतीय दृष्टिकोण से इतिहास को देखने का प्रयास हुआ। 1857 को केवल 'सिपाही विद्रोह' मानने की अंग्रेज़ी व्याख्या का विरोध किया गया और उसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। इस ऐतिहासिक पुनर्मूल्यांकन ने राष्ट्रीय आत्मगौरव को दृढ़ किया।

"इतिहास की पुनर्व्याख्या राष्ट्रीय आत्मबोध का आधार है।"[30] इस पूरी प्रक्रिया में हिन्दी साहित्य केवल विचारों का संकलन नहीं था, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय शक्ति था। लेखक, कवि और पत्रकार समाज के पथप्रदर्शक की भूमिका में सामने आए। उन्होंने न केवल समस्याओं की पहचान की, बल्कि उनके समाधान की दिशा भी सुझाई। यह साहित्य निष्क्रिय चिंतन नहीं, बल्कि सक्रिय हस्तक्षेप का माध्यम था।

"नवजागरण का साहित्य परिवर्तन का साहित्य है।"[31] 1857 के संघर्ष की स्मृति हिन्दी नवजागरण में एक नैतिक प्रेरणा के रूप में जीवित रही। शहीदों का बलिदान, पराजय का दर्द और स्वतंत्रता की आकांक्षा—ये सभी तत्व साहित्य में अंतर्निहित रूप से उपस्थित रहे। इस स्मृति ने हिन्दी साहित्य को भावनात्मक गहराई और वैचारिक गंभीरता प्रदान की।

"राष्ट्रीय स्मृति साहित्य की आत्मा होती है।"[32] अंततः यह स्पष्ट हो जाता है कि 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण एक ही ऐतिहासिक प्रक्रिया के दो अभिन्न पक्ष हैं। 1857 ने भारतीय समाज को झकझोरा, जबकि हिन्दी नवजागरण ने उसे दिशा दी। एक ने प्रतिरोध की भावना उत्पन्न की, दूसरे ने उस भावना को वैचारिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक रूप प्रदान किया। दोनों के संयुक्त प्रभाव से आधुनिक हिन्दी साहित्य, आधुनिक भारतीय चेतना और राष्ट्रीय आंदोलन का वैचारिक ढाँचा निर्मित हुआ। "1857 और हिन्दी नवजागरण मिलकर आधुनिक भारत की चेतना का निर्माण करते हैं।"[33]

निष्कर्ष

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी नवजागरण 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष का सांस्कृतिक विस्तार है। राजनीतिक पराजय के बावजूद सांस्कृतिक और वैचारिक विजय की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई, वही आगे चलकर भारत की स्वतंत्रता का आधार बनी। हिन्दी साहित्य ने इस प्रक्रिया में सेतु की भूमिका निभाई और भारतीय समाज को आत्मबोध, आत्मगौरव और स्वतंत्रता की ओर अग्रसर किया।

संदर्भ :

1. सावरकर, विनायक दामोदर. 1857 का स्वातंत्र्य समर. पुणे: साहित्य सदन. 2015. पृ. 23
2. Majumdar, R. C. The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857. कलकत्ता: Firma KLM. 1963. पृ. 41
3. चन्द्र, बिपिन. भारत का स्वतंत्रता संग्राम. नई दिल्ली: पेंगुइन इंडिया. 2009. पृ. 52
4. चन्द, तारा. 1857 का विद्रोह. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 1998. पृ. 67
5. सरकार, सुमित. Modern India 1885–1947. दिल्ली: मैकमिलन. 2012. पृ. 18
6. हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु (संपादक: नागेन्द्र). भारतेन्दु ग्रंथावली (खंड 1). वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा. 1985. पृ. 112

7. शर्मा, रामविलास. हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 2004. पृ. 29
8. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा. 2010. पृ. 241
9. द्विवेदी, महावीर प्रसाद. साहित्य की भूमिका. इलाहाबाद: लोकभारती. 1996. पृ. 54
10. सिंह, बच्चन. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. 2008. पृ. 133
11. सिंह, नामवर. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 2002. पृ. 87
12. माथुर, जगदीशचन्द्र. हिन्दी नाटक का विकास. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. 1991. पृ. 64
13. मिश्र, कृष्ण बिहारी. हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन. 2014. पृ. 91
14. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. भारतीय साहित्य की भूमिका. इलाहाबाद: लोकभारती. 2006. पृ. 38
15. सिंह, रामधारी सिंह 'दिनकर'. संस्कृति के चार अध्याय. इलाहाबाद: लोकभारती. 2009. पृ. 119
16. सिंह, बच्चन. हिन्दी कविता का विकास. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. 2005. पृ. 77
17. दास, श्यामसुन्दर. हिन्दी साहित्य का विकास. वाराणसी: नागरी प्रचारिणी सभा. 1997. पृ. 98
18. सिंह, नामवर. द्विवेदी युग. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 2001. पृ. 46
19. नेहरू, जवाहरलाल. Discovery of India. न्यूयॉर्क/नई दिल्ली: Oxford University Press. 2010. पृ. 312
20. Thapar, Romila. The Past Before Us. नई दिल्ली: HarperCollins. 2013. पृ. 56
21. वाजपेयी, आचार्य नन्ददुलारे. हिन्दी निबंध साहित्य. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 1994. पृ. 142
22. चन्द्र, बिपिन. India's Struggle for Independence. नई दिल्ली: पेंगुइन. 2003. पृ. 101
23. गुहा, अमलेन्दु. Indian Renaissance. दिल्ली: ओब्लैकस्वान. 2011. पृ. 74
24. बोस, सुभाष चन्द्र. The Indian Struggle. कोलकाता: नेताजी रिसर्च ब्यूरो. 1998. पृ. 19
25. गुप्त, गणपति चन्द्र. हिन्दी भाषा और राष्ट्रीयता. इलाहाबाद: साहित्य भवन. 2007. पृ. 61
26. शर्मा, रामविलास. भाषा और समाज. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 2005. पृ. 83
27. वर्मा, महादेवी. श्रृंखला की कड़ियाँ. इलाहाबाद: लोकभारती. 2008. पृ. 27
28. वात्स्यायन 'अज्ञेय', सच्चिदानन्द हीरानन्द. आधुनिकता और साहित्य. नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. 1992. पृ. 114
29. ठाकुर, रवीन्द्रनाथ. Nationalism. लंदन: मैकमिलन. 2009. पृ. 88
30. हबीब, इरफान. भारतीय इतिहास की समस्याएँ. नई दिल्ली: तुलिका बुक्स. 2016. पृ. 49
31. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. साहित्य और समाज. इलाहाबाद: लोकभारती. 2004. पृ. 92
32. सिंह, रामधारी सिंह 'दिनकर'. साहित्य और राष्ट्रीयता. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. 1999. पृ. 58
33. सरकार, सुमित. Nationalism, Colonialism and National Culture. नई दिल्ली: पेंगुइन इंडिया. 2010. पृ. 121

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

सामान्य प्रवृत्तियों का शैक्षिक महत्व

डॉ. रवेन्द्र राजपूत*
ravendrarajput@hotmail.com

शोध सार

हम प्रतिदिन अपने चारों ओर जीव जगत के अनेकों प्राणियों को देखते हैं, उनकी क्रियाओं पर विचार करने लगते हैं। समय आता है चिड़िया अपना घोंसला बनाती है। हम कितना ही प्रयत्न करें कि वह कमरे में कूड़ा व फैलाये पर वह मानती नहीं। हमारे बार-बार उसके घोंसले को नष्ट करने पर भी वह अपना घोंसला बना ही लेती है। अण्डे देती है, बच्चे निकल आते हैं। उनकी दाना चुगाती है। और पंख निकलते ही वे उड़ जाते हैं। वे बच्चे उड़कर हमें विचार में डाल देते हैं। हम सोचते हैं, इस चिड़िया को मनुष्य की तरह अपने बच्चों से कोई लोभ नहीं? उसके बच्चे मनुष्य के बच्चों भाँति उसे बुढ़ापे में सहारा नहीं देंगे? न जाने वे अपने माता पिता को पहचानेंगे भी या नहीं? फिर, यह चिड़िया इतना कष्ट क्यों उठाती है? हम इस विचार का समाधान खोजने हेतु संसार के अन्य जीवों की ओर दृष्टि डालकर देखने लगते हैं जो इस विचार में और भी उलझ जाते हैं। हम देखते हैं कि जिस प्राणी में जितनी कम बुद्धि है, वह मद एवं लोभ से उतना ही दूर है। परन्तु काम, क्रोध और मोह से नहीं। मानव को छोड़कर जब भी जिस प्राणी की ऋतु आती है वह अपनी ऋतुचर्या में बिना किसी के बताये स्वतः ही लग जाता है। इन सब बातों को देखकर मन में एक प्रश्न उठता है- आखिर यह सब क्यों होता है? हम बहुत विचार करते हैं और अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रत्येक प्राणी में अवश्य ही कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ है जिनसे प्रभावित होकर वह बिना किसी के बताये स्वतः ही अपना कार्य करता रहता है। ये जन्मजात प्रवृत्तियाँ ही मूल प्रवृत्तियाँ है जो सभी प्राणियों में पाई जाती है। हाँ यह बात दूसरी है कि इनकी संख्या या प्रवृत्ति की तीव्रता किसी में कम तो किसी में अधिक होती है।

बीज शब्द *- सहारा, दृष्टि, ऋतुचर्या, जन्मजात, स्वतः, प्राणी, प्रवृत्तियाँ, काम प्रवृत्ति, तीव्रता।*

बालक जब जन्म लेता है तभी से अनेक प्रकार की क्रियाएँ करने लगता है जैसे- स्तन चूसना, मलमूत्र विसर्जन, रोना, पलकें झपकाना, सोना आदि। इन क्रियाओं को उसे कोई सिखाता नहीं और न ही वह नवीन वातावरण से समायोजन के लिए सीखता है बल्कि उसमें ये क्रियाएँ जन्मजात होती है जिन्हें कि वह जन्म से ही सीख कर आता है। आयु में वृद्धि के साथ-साथ बालक इन जन्मजात प्रवृत्तियों को व्यवहार के रूप में प्रकट करने लगता है।

मूल प्रवृत्तियों का अर्थ (Meaning of Instincts) - मनुष्य अपने अधिकांश कार्यों को समाज से प्रभावित होकर करता है, वह कुछ कार्य ऐसे भी है जिनको वह अपनी जन्मजात या प्राकृतिक प्रेरणाओं के कारण भी करता है। जैसे- भय लगने पर भागना और भूख लगने पर भोजन की खोज करना अर्थात् "वे जन्मजात प्रवृत्तियाँ जो मनुष्य और पशु को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, मूल प्रवृत्तियाँ कहते हैं।"

मूल प्रवृत्तियों की परिभाषा (Definitions of Instincts)-

1. "मूलप्रवृत्ति, कार्य करने का बिना सीखा हुआ स्वरूप है।" - वुडवर्थ
2. "मूल प्रवृत्ति एक वंश परम्परागत एवं जन्म जात मनोशारीरिक प्रवृत्ति है।" - मैक्डूगल
3. "जीवित रहने की इच्छायें मात्र की मूल प्रवृत्तियाँ है।" - टी.पी.नन
4. "मूल प्रवृत्ति वह स्वाभाविक प्रवृत्ति है जो कुछ जैवीय उद्देश्य को विशेष तरीके से क्रिया कर पूरा करती हैं। - वैलेन्टाइन

* **एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, श्री वार्ष्णेय महाविद्यालय, अलीगढ़**

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं किः- "मूल प्रवृत्तियाँ, प्राणियों के वाह्य व्यवहार को प्रभावित करने वाली जन्मजात एवं आन्तरिक प्रवृत्तियाँ हैं।"

मूल प्रवृत्तियों की विशेषतायें (Characteristics of Instincts)-

1. ये प्राणी के व्यवहार को परिचालित करती है।

2. ये प्रकृतिदत्त एवं जन्मजात होती है।

3. ये परिवर्तनशील होती है।

4. इनमें पूर्व अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता होती है।

5. ये आदत से भिन्न होती है।

6. मूल प्रवृत्तियाँ अविस्मृत है।

7. मूल प्रवृत्ति से संचालित क्रियाएँ जटिल एवं अनैन्छिक होती हैं।

8. प्रत्येक मूल प्रवृत्ति एक विशेष संवेग से सम्बद्ध होती है।

9. मूल प्रवृत्तियों के 3 अंग होते हैं- ज्ञानात्मक, संवेगात्मक एवं क्रियात्मक

10. बिना मूल प्रवृत्ति के उभार के मानव व्यवहार को पहिचानना सम्भव नहीं।

मूल प्रवृत्तियों का वर्गीकरण (Classification of Instincts)-

(A) भारतीय दृष्टिकोण - भारतीय दर्शन के अनुसार 3 मूल प्रवृत्तियाँ हैं-

1. दारेष्णा - स्त्री प्रसंग या काम शक्ति की इच्छा।

2. पुत्रैष्णा - पुत्र की इच्छा।

3. वित्तैष्णा - धन इत्यादि भौतिक वस्तुओं की इच्छा।

(B) पाश्चात्य दृष्टिकोण - पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों के अभिमत इस प्रकार है-

1. मूल प्रवृत्ति एक है- (i) एडलर - आत्म प्रदर्शन (ii) वर्गसन - प्राण शक्ति (iii) शापेनहावर - जीवन इच्छा

2. मूल प्रवृत्तियाँ दो हैं- (i) ड्रेवर – (a) तीव्र इच्छात्मक - भूख, प्यास, योनि

(b) प्रतिक्रियात्मक - पलायन, हास्य

(ii) थॉर्नडाइक - (a) वैयक्तिक - भूख, प्यास (b) सामाजिक - समूह में रहने की प्रवृत्ति

इसी प्रकार फ्रायड ने 3. किलपैट्रिक ने 5, वुडवर्थ ने 9 मूल प्रवृत्तियाँ बताई है।

मैक्डूगल द्वारा बताई गई। 14 मूल प्रवृत्तियां सबसे उल्लेखनीय हैं जो कि मानव में पाई जाती है-

1. पलायन, 2. युयुत्सा, 3. पुत्रैष्णा, 4. शरणागति, 5. विकर्षण, 6. काम प्रवृत्ति, 7. आत्म गौरव, 8. दैन्य, 9. सामूहिकता, 10. संग्रह प्रवृत्ति, 11. भोजनान्वेषण, 12. जिज्ञासा, 13. सृजनशीलता, 14. हास्य

जन्मजात या मूल प्रवृत्तियों के सुधार की विधियाँः-

1. अवदमन - कुछ वाल व्यवहार से अपरिचित विद्वानों का विचार है कि बालकों की मूल प्रवृत्तियों का अवदमन कर देना चाहिए। अर्थात् बालक किसी मूल प्रवृत्ति को प्रदर्शित करे तो उसे प्रकाशन का अवसर नहीं देना चाहिए बल्कि डॉट- डपटकर उसकी प्रदर्शित मूल प्रवृत्तियों को दबा देना चाहिए।

आलोचना- आधुनिक युग में सभी लोग मानते हैं कि यदि किसी बालक की मूल प्रवृत्तियों को दबाया जायेगा तो मूल प्रवृत्यात्मक इच्छायें बालक के अचेतन मन में निवास कर उसे अस्वाभाविक व्यवहार करने के लिए बाध्य कर दी। अतः मूल प्रवृत्तियों का अवदमन करने वाला सिद्धान्त उपयुक्त नहीं है।

2. विलयन - इस विधि से जन्मजात प्रवृत्तियों में परिवर्तन दो प्रकार से किया जाता है-

(i) निरोध द्वारा - बालकों को ऐसे वातावरण में रखा जाए कि उनकी मूल प्रवृत्तियाँ सही उत्तेजित न हों सकें। उदाहरणार्थ - किशोर को किशोरियों से न मिलने - जुलने बातचीत करने का अवसर न दिया जाए तो उसकी काम प्रवृत्ति अपने आप क्रियाशील नहीं हो सकेगी।

(ii) विरोध द्वारा - यदि कोई पाशविक प्रवृत्ति उत्तेजित होती रही तो ऐसी अवस्था में इसका विरोध करने के लिए कोई दूसरी मूल प्रवृत्ति को जाग्रत कर देना चाहिए। जैसे- यदि काम प्रवृत्ति उत्तेजित हो रही है तो भय की मूल प्रवृत्ति को उत्तेजित कर देना चाहिए जिससे कि काम प्रवृत्ति अपने आप शिथिल हो जायेगी।

3. मार्गान्तरीकरण - जन्म जात प्रवृत्तियों की मूल प्रत्यात्मक शक्ति के प्रवाह को अच्छी दिशा की ओर मोड़ देना चाहिए। उदाहरणार्थ - युयुत्सा प्रवृत्ति की अधिक क्रियाशीलता के कारण बालक व्यर्थ ही दूसरों से लड़ता झगड़ता रहता है तो इस प्रवृत्ति के शक्ति प्रवाह को असहायों और निर्वलों को अत्याचार से बचाने के लिए मोड़ दिया जाता है जिससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों प्रकार के हित हो सकेंगे।

4. शोधन - इसमें मूल प्रवृत्ति के प्रकाशन के स्वरूप में परिवर्तन किया जाता है। जैसे- बालक की काम प्रवृत्ति का शोधन किया जाए तो भविष्य में एक महान कवि या कलाकार बन सकता है। शोधन जन्मजात प्रवृत्तियों में सुधार की सबसे उपयुक्त विधि है। मैक्डूगल के शब्दों में - "शोधन एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे मूल प्रवृत्यात्मक शक्तियों को उच्चकोटि के कार्यों में उपयुक्त किया जाता है।"

5. स्वतन्त्रता - इस सिद्धान्त के प्रतिपादक नील समरहिल स्कूल के संस्थापक H.S नील हैं। उनके अनुसार बालकों को मूल प्रवृत्तियों के प्रकाशन में स्वतन्त्रता प्रदान करनी चाहिए। परन्तु यह सिद्धान्त तभी उपयुक्त सिद्ध होगा जब बालकों का उचित मार्ग दर्शन किया जाए।

सामान्य प्रवृत्तियाँ (General Tendencies) - प्रत्येक व्यक्ति में मूल प्रवृत्तियों के साथ-साथ सामान्य प्रवृत्तियाँ भी पाई जाती हैं। शिक्षा में सामान्य प्रवृत्तियों का प्रयोग करके बालक के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। मैक्डूगल ने जन्मजात व सामान्य प्रवृत्तियों में अन्तर बताते हुए लिखा है - "जहाँ प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के साथ एक विशिष्ट संवेग लगा होता है और उसमें एक प्रकार की गीत रहती है वहीं सामान्य प्रवृत्तियों में न तो संवेग या उत्तेजना रहती है और न ही गति।"

मानव व्यवहार के निर्माण में सुझाव, अनुकरण तथा सहानुभूति का विशेष महत्व है। मैक्डूगल ने 4 सामान्य प्रवृत्तियां बताई है- 1. सुझाव, 2. अनुकरण, 3. सहानुभूति, 4. खेल

सामान्य प्रवृत्तियों की परिभाषा (Definition of General Tendencies) - रायवर्न के शब्दों में - "सामान्य प्रवृत्तियाँ मूल प्रवृत्तियां नहीं है। ये विशेष प्रकार का व्यवहार नहीं करती है पर ऐसी विधियाँ है जिनके द्वारा उनके प्रकार का व्यवहार जाग्रत किया जा सकता है। इसीलिए इनको विशिष्ट नहीं बल्कि सामान्य कहा गया है। इनमें जो सामान्य बात है वह स्वयं प्रवृत्तियाँ नहीं है वरन् ने प्रतिक्रियाएँ हैं जिनको वे उत्पन्न करती हैं।"

अनुकरण (Initation):- अर्थ - अनुकरण का सामान्य अर्थ है - किसी कार्य या वस्तु की नकल करना। अनुकरण वह चेतन अथवा अचेतन मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति दूसरों के विचारों, गतियों या भावों को देखकर स्वयं उसका विचार गति अथवा भाव करने लगता है। अर्थात् "जैसा दूसरे करें वैसा ही स्वयं करने लगना अनुकरण है।"

अनुकरण की परिभाषा - 1. "अनुकरण दूसरे व्यक्ति के वाह्य व्यवहार की नकल है।" - रायवर्न

2. "दूसरे व्यक्ति के कार्यों या व्यवहार को जान बूझकर अपनाना अनुकरण है।" - मीड़

3. "अनुकरण प्रेरणा तथा प्रतिक्रिया के बीच वह सम्बन्ध है जिसमें प्रतिक्रिया प्रेरणा उत्पन्न करती है या उससे मिलती जुलती होती है।" - केज एवं शैंक

4. "दूसरों की क्रियाओं या शारीरिक गतिविधियों की नकल करना ही अनुकरण है।" - मैक्डूगल

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि-

i. अनुकरण एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है।
ii. यह सभी प्राणियों में पाई जाती है।
iii. इसके द्वारा प्राणी अन्य कार्यों को सीखता है।
iv. दूसरे के व्यवहार, विचार, भाव, गति, कार्य एवं क्रियाओं को देखकर स्वयं ठीक उसी प्रकार नकल करने लगता है।

अनुकरण एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। छोटा बालक भी हमारा अनुकरण करता है। हम मुस्कराते हैं, तो बालक मुस्कराता है। हम ताली बजाते हैं तो बालक भी ताली बजाता है। मनुष्यों के साथ पशु-पक्षियों में भी अनुकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। जैसे-जैसा हम करते हैं बन्दर भी वैसा करता है तोता राम-राम रट लेता है। अनुकरण की प्रवृत्ति से ही सर्कस में पशुओं से काम लिया जाता है।

अनुकरण के प्रकारः-

1. सहज अनुकरण
2. स्वाभाविक अनुकण
3. अभिनयात्मक अनुकरण
4. ऐच्छिक अनुकरण
5. आदर्शात्मक अनुकरण

ड्रेवर के अनुसार -

1. आज्ञात या अचेतन अनुकरण
2. ज्ञात या समुदाय अनुकरण
3. दृश्यानुकला
4. विचारानुकरण

मैक्ड्गल के अनुसार -

(A) प्राथमिक (प्रस्थान) अनुकरण-

1. सहज या सहानुभूति पूर्व अनुकरण
2. विचारपूर्वक अनुकरण
3. सप्रयास अनुकरण

(B) गौण अनुकरण

1. निरर्थक अनुकरण
2. विचार रहित अनुकरण

अनुकरण का शिक्षा में महत्व:- शिक्षा में अनुकरण का अत्यधिक महत्व है। यदि यह कहा जाये के अनुकरण ही शिक्षा का आरम्भ है तो अतिशयोचित नहीं होगी। बालक विद्यालय में भाषा खेल बोलचाल जीवन शैली पहल, लिखना यदि अनुकरण के माध्यम से ही सीखता है।

जेम्स कहते हैं- "अनुकरण और अधिकार ही दो साधन हैं जिनकी सहायता से मानव जाति ने अपना ऐतिहासिक विकास किया है।।"

पशु पक्षी और मानव शिशु अनुकरण की स्वाभाविक प्रवृत्ति से बहुत सी कि क्रियाएँ और व्यवहार सीखते हैं। जैसे- पक्षी-शावक अपनी माँ का अनुकरण कर दाना चुगता है उड़ना सीखता है और घोसला बनाना सीखता है दौड़ना और पानी में तैरना सीखता है। अनुकरण के शिक्षा में महत्व को हम इन बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट कर सकते हैं

1. कुशलता की प्राप्ति - डम्बिल के शब्दों में - "अनुकरण ही वह विधि है जिसके द्वारा हम अनेक क्रियाओं में कुशलता प्राप्त करते हैं।"

इस प्रकार की कुछ क्रियाएँ हैं- बोलना, खेलना, चित्र बनाना आदि। बालक इन क्रियाओं में दूसरे बालकों और शिक्षक का अनुकरण करके कुशलता प्राप्त करता है।

2. नैतिकता की शिक्षा - रायवर्न - ने कहा है "अनुकरण का नेतिक क्षेत्र में नहीं कार्य हैं, जो मानसिक क्षेत्र में है।" बालक अपने माता-पिता, शिक्ष आदि की नैतिक बातों को अनुकल द्वारा सीखता है। अतः घर और विद्यालालय का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिससे बालक को उत्तम नैतिक शिक्षा प्राप्त हो।

3. अच्छे आदर्शों की शिक्षा - डम्बिल कहते हैं "बालक शिक्षकों के कार्यों, शारीरिक गतियों, वेशभूषा, व्यवहार आदि का अनुकरण करके बालक को अनुकरण द्वारा उनसे शिक्षा प्राप्त करने का अवसर देना चाहिए।

4. सामाजिक व्यवहार की शिक्षा - पलीमिंग लिखते हैं "बालक सामाजिक व्यवहार को अनुकरण द्वारा बहुत सरलता से सीख सकता है।" अतः शिक्षक को विभिन्न सामाजिक क्रियाओं, पर्यटनों आदि की व्यवस्था करके बालक को इनमें भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि उसे अनुकरण द्वारा सामाजिक व्यवहार की शिक्षा मिल सके।

5. मानसिक विकास का साधन - स्टाउट ने कहा है - मानसिक विकास के लिए अनुकरण की प्रक्रिया का बहुत ही अधिक महत्व है।" बालक अनुकरण द्वारा ही अपने माता-पिता, शिक्षक, साथियों, और समाज से अनेक बातें सीखकर अपना मानसिक विकास करता है। अतः शिक्षक को विद्यालय में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिनसे बालक अनुकरण द्वारा अधिक से अधिक बातें सीखकर अपना मानसिक विकास कर सके।

6. स्पर्द्धा उत्पन्न करने का साधन - बालक में अनुकरण करते समय दूसरे से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है जिसे 'स्पर्द्धा' कहते हैं। यदि बालक आगे वहीं बढ़ पाता है तो उसमें ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। शिक्षक का कर्त्तव्य है- बालक में स्पर्द्धा को प्रोत्साहन देना और ईर्ष्या का दमन करना।

7. आत्म अभिव्यक्ति का साधन - रॉस का मत है- "अनुकरण मौलिक आत्म-अभिव्यक्ति का साधन है।" शिक्षक को विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन करके, बालक को आत्म अभिव्यक्ति का अवसर देना चाहिए। ऐसा करके वह बालक में निहित योग्यताओं का विकास कर सकता है।

8. व्यक्तित्व निर्माण का साधन - अनुकरण व्यक्तित्व के निर्माण का महत्वपूर्ण साधन है। इस सम्बन्ध में नन (Nunn) ने लिखा है - "अनुकरण व्यक्तित्व के निर्माण का प्रथम चरण है। अनुकरण का क्षेत्र जितना अधिक उत्तम होगा उतना ही अधिक व्यक्तित्व का विकास होगा।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा में अनुकरण का विशेष महत्व है। अतः माता-पिता, शिक्षकों को चाहिए कि वे बालक के लिए शिक्षा का अच्छा वातावरण बनायें ताकि बालक अच्छी-अच्छी बातों का अनुकरण करें।

सहानुभूति (Sympathy):- दूसरों के विचारों को हम जिस प्रकार अनायास ही ग्रहण कर लेते हैं ठीक उसी प्रकार दूसरों की भावनाओं और संवेदनाओं से भी प्रभावित हो जाया करते हैं। इसे ही मनोविज्ञान की शब्दावली में "सहानुभूति" कहते हैं। यह हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति हैं किसी को दुःखी देखकर हम दुःखी हो जाया करते हैं, किसी को मुस्कराते देखकर हम भी मुस्कराने लगते हैं। यह प्रवृत्ति पशु-पक्षियों में भी पाई जाती है। एक चिड़िया किसी साँप को देखकर भय सूचक शब्द करती है, तो अन्य चिड़िया भी उसी प्रकार का शब्द करते हुए भयभीत होकर उड़ जाती है। सहानुभूति सामाजिक जीवन के लिए परमावश्यक है।

सहानुभूति का अर्थ - "सहानुभूति" एक प्रकार की कोमल मानसिक प्रक्रिया है। यह उस समय किया जाता है जब हमारे हृदय में दूसरे व्यक्ति के प्रति कोमल भावना का उदय होता है। जब हम दूसरों के दुःखों को देखकर स्वयं दुःखी होने लगते हैं और दूसरों के सुख को देखकर स्वयं के सुख का अनुभव करते हैं यही सहानुभूति है। प्रायः यह कोमल भावना समस्त प्राणियों में पाई जाती है।

सहानुभूति की परिभाषा :- 1. "सहानुभूति एक संवेग है।" - विलियम जेम्स

2. "दूसरों के द्वारा व्यक्त किये जाने वाले किसी संवेग की हममें उत्पत्ति सहानुभूति है।" - रायवर्न

3. "सहानुभूति उसी प्रकार के संवेग का अनुभव करना है जिसका अनुभव दूसरा व्यक्ति कर रहा है।" - अकोलकर

4. "सहानुभूति दूसरों की संवेदना और संवेग से केवल देख लेने पर अनुभव करने की एक ही स्वाभाविक प्रवृत्ति है।" - ड्रेवर

5. "यह दूसरों की भावना का शीघ्र बोध होना एक समूह के सदस्यों में उद्वेगों का उत्पाद कत्व होता है। - सिंह जयदेव

6. पर्सीनन ने सहानुभूति को 'निर्देश' और 'अनुकरण' के साथ श्रेणीबद्ध किया है। तो जेम्स रॉस ने इसे "भावनामूलक प्रवृत्ति" कहा है।

सहानुभूति के प्रकार - 1. सक्रिय सहानुभूति - जब कोई व्यक्ति अपने भावों को सक्रिय रूप से अन्य लोगों में पहुँचाने का प्रयास करता है तो उसे सक्रिय सहानुभूति कहते हैं। जैसे - एक भिखारी अपने कटे पुराने कपड़ों तथा दीनता युक्त वाणी द्वारा दूसरों के मन में अपने प्रति सहानुभूति प्राप्त कर लेता है और उसे भिक्षा मिल जाती है। किसी दल विशेष का वक्ता प्रभावशाली भाषण देता है और श्रोतागण उससे प्रभावित होकर निश्चय करते हैं कि उस दल विशेष के प्रत्याशियों को मत दिया जाए। छोटे बच्चे धरती पर लोट-पोट कर, हाथ पैर मार कर, पटककर तथा ऊँचा-ऊँचा रोकर अपने प्रति सहानुभूति अर्जित कर लेते हैं और फिर उन्हें उनकी माँगी हुई वस्तु मिल जाती है।

परिभाषा- "सक्रिय सहानुभूति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम दूसरों में अपने संवेगों और अपनी भावनाओं के प्रति सहानुभूति पूर्ण प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं।" - वी0एन0झा

"सक्रिय सहानुभूति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम दूसरों को अपनी सहायता था संरक्षण के लिए प्रेरित करते हैं।" - बैलेन्टाइन

2. निष्क्रिय सहानुभूति - जब दूसरों के भावों को देखकर स्वयं वैसा भाव करने लगते हैं तो इस सहानुभूति को निष्क्रिय सहानुभूति कहते हैं।" जैसे- दूसरों को रोते देखकर रोने लगना, दूसरों को हँसते देखकर हँसने लगना ये निष्क्रिय सहानुभूति है। बालकों में इस प्रकार की सहानुभूति पाई जाती है। छोटी बच्ची (3 वर्ष की) सौम्या जब अपने भैया या मम्मी को रोते देखती है तो स्वयं भी रोने लगती है। पशु पक्षियों में भी यह सहानुभूति पाई जाती है। एक कुत्ता भौंकता है तो अन्य कुत्ते भी भौंकने लगते हैं। साँप को देखकर भय से जब एक चिड़ियां चीं-चीं करने लगती है तो अन्य चिड़ियाँ भी डर उसी प्रकार चीं-चीं करने लगती है। यह दो प्रकार की होती है-

1. हर्ष, सुख, प्रसन्नता, आनन्द आदि आवेगों के साथ होने वाली सहानुभूति।
2. दुःख, पीड़ा, और भय आदि संवेगों के साथ होने वाली सहानुभूति।
3. वैयक्तिक सहानुभूति- यह सहानुभूति एक व्यक्ति के द्वारा दूसरे व्यक्ति के प्रति दिखाई जाती है। जैसे- मुसीबत में फँसी किसी वेवस स्त्री को देखकर लगभग सभी लोग उसके प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हैं।
4. सामूहिक सहानुभूति - यह सहानुभूति एक समूह के सब व्यक्तियों द्वारा कम या अधिक मात्रा में किसी घटना या परिस्थिति के प्रति व्यक्त की जाती है। जैसे- बाढ़ पीड़ितों या भूकम्प पीड़ितों की सहायता करते समय सामूहिक सहानुभूति अपने स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

सहानुभूति का शिक्षा में महत्व (Importance of sympathy in education) :-

शिक्षा में सहानुभूति के महतव को प्रदर्शित करते हुए बी0एन0झा0 ने लिखा है- "वे सब शिक्षक जो कक्षा में बालकों को प्रेरणा देना चाहते हैं। अपनी सफलता के लिए मौलिक निष्क्रिय सहानुभूति की प्रवृत्ति पर निर्भर रहते हैं।"

झा के इन शब्दों से स्पष्ट है कि शिक्षक और बालक दोनों के लिए सहानुभूति का असीम महत्व है। इस महत्व का बहुमुखी स्वरूप निम्नवत है-

1. शिक्षक की सहानुभूति बालकों शीघ्र और तन्मय होकर कार्य करने के लिए प्रोत्साहित करती है।
2. मैक्डूगल ने लिखा है - "शिक्षक की सहानुभूति, बालकों के कार्य को शान्तिमय बनाती है।"
3. झा ने कहा है - "शिक्षक सहानुभूति के द्वारा बालकों को एक दूसरे से अपना सम्बन्ध समझने और उसके फलस्वरूप सामाजिक समूह का सदस्य बनने में सहायता देता है।"
4. झा के अनुसार - "शिक्षक सहानुभूति के द्वारा बालकों का संवेगात्मक विकास कर सकता है।"
5. शिक्षक सहानुभूति द्वारा बालकों को सरलता से नियन्त्रण में रखने के कारण अनुशासन की समस्या का समाधान कर सकता है।

6. आउल्स ने कहा है - "शिक्षक बालकों में सहानुभूति का गुण उत्पन्न करके उनको सामाजिक जीवन में सफलता प्राप्त करने में सहायता दे सकता है।"
7. शिक्षक बालकों में सहानुभूति का विकास कर उनको नैतिक कार्यों की और प्रवृत्त कर सकता है।
8. डम्बिल ने कहा है - "शिक्षक बालकों सहानुभूति जाग्रत करके उनका सहयोग प्राप्त कर सकता है और अपने शिक्षण को सफल बना सकता है।"
9. शिक्षक बालकों के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करके उनके विचारों और भावनाओं को जान सकता है। अतः वह उनकी समस्याओं का समाधान कर सकता है।
10. रॉस ने लिखा है - "शिक्षक के लिए सहानुभूति वह साधन है जिससे वह बालकों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाकर उनमें सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक में सहानुभूति का गुण होना अनिवार्य है। इस गुण के अभाव में वह योग्यतम व्यक्ति होने पर भी अपने कार्य में असफल रहेगा। इसलिए रॉस का परामर्श है- "जो व्यक्ति सहानुभूति के गुण से वंचित है उसे शिक्षक नहीं बनना चाहिए।"

इन सभी बिन्दुओं पर विचार करके हम सहानुभूति के शिक्षा में महत्व को इस प्रकार है स्पष्ट कर सकते हैं-

1. बालक का संवेगात्मक विकास करने में सहानुभूति का विशेष महत्व है।
2. इसके द्वारा नैतिकता तथा सौन्दर्यात्मकता का विकास होता है।
3. बालक के सामाजिक विकास में इसका विशेष योगदान है।
4. सहानुभूति अनुशासन बनाने में सहयोग देती है।
5. सीखने के प्रति रुचि जाग्रत होती है।
6. शिक्षण कार्य में सफलता मिलती है।
7. स्थायी भावों के निर्माण में सहानुभूति की बहुत आवश्यकता रहती है। अध्यापक सहानुभूति की सहायता से विद्यार्थियों में देश भक्ति, न्याय प्रियता तथा सत्य प्रियता आदि के स्थायी भाव उत्पन्न कर सकता है।

सहानुभूति को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ-

1. सहानुभूति और कल्पना - सहानुभूति के लिए व्यक्ति में कुछ कल्पना होनी चाहिए। जो व्यक्ति कल्पना द्वारा स्वयं को दूसरे की स्थिति में रखकर उसके अनुभवों को अनुभव नहीं कर सकता, उसके हृदय में दूसरों के प्रति सहानुभूति तो उत्पन्न हो सकती है। सहानुभूति के अनुभव के लिए भावुक होना अनिवार्य है। इस प्रकार की सहानुभूति जन्म जात होती है परन्तु अनुभव से उसका बराबर विकास होता रहता है।

2. सहानुभूति और संवेग - सहानुभूति के लिए सांवेगिकता बहुत ही आवश्यक है। जिसमें जितनी सांवेगिकता होती है उसमें सहानुभूति उतनी ही जल्दी उत्पन्न होती है।

3. सहानुभूति और भावना - भावनाओं का पूर्ण अनुभव सहानुभूति के लिए आवश्यक है। जो व्यक्ति एक बार परिस्थिति से गुजर चुका है वह कल्पना के सहारे सरलता से उस परिस्थिति में पहुँच सकता है और परिस्थिति के अनुसार उसमें उसी प्रकार की भावनायें उत्पन्न हो सकती है।

सुझाव या निर्देशः-

सुझाव का अर्थ - मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सुझाव वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके कारण कोई व्यक्ति दूसरे के विचारों को अतार्किक ढंग से स्वीकार कर लेता है। दैनिक जीवन में हम बहुत से कार्य दूसरों के कहने से करते हैं। हमारा अचेतन मन दूसरों का कहना मान लेता है। और उनके अनुसार कार्य करता है। इस प्रक्रिया के कारण हम दूसरे व्यक्ति के विचार को बिना तय किये हुए मान सकते हैं और उसके अनुसार कार्य या व्यवहार करने लगते हैं। उदाहरणार्थ - यदि माँ अपने बच्चे से कहती है - "बेटा वहाँ मत जाना वहाँ बिल्ली बैठी है।" या 'अन्दर चलो आँधी आ रही है।" तो बच्चा उसके सुझाव को - "बेटा वहाँ मत जाना वहाँ बिल्ली बैठी है।" या 'अन्दर चलो आँधी आ रही है।" तो बच्चा उसके सुझाव को मानकर अन्दर चला जाता है।

सुझाव की परिभाषा -

1. "अनुकरण द्वारा मस्तिष्क में किसी सामान्य अभिवृत्ति का जाग्रत होना ही सुझाव है।" - स्टर्न
2. "सुझाव सामूहिक मूल प्रवृत्ति का संज्ञानात्मक पक्ष है।" - रॉस
3. "सुझाव एक सन्देश वाहक प्रतिक्रिया है जो अतार्किक आधार होते हुए भी विश्वास के साथ स्वीकार कर ली जाती है।" - मैक्ड्गल
4. "सुझाव एक ऐसी अवस्था है, जब अपनी इच्छा न होते हुए भी हम दूसरों के विचारों को ग्रहण कर लेते हैं। - पर्सीनन
5. "सुझाव ऐसा सन्देशवाहक चिन्ह है जो कि शब्दों, चित्रों तथा अन्य माध्यमों द्वारा अस्पष्ट या अतार्किक होते हुए भी स्वीकार किये जाने के लिए प्रेरित करता है।" - किम्बल यंग

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर सुझाव के सम्बन्ध में ये बातें कहीं जा सकती हैं-

(i) दूसरों के विचारों को अपना लेना सुझाव है।

(ii) इसमें निर्देशित व्यक्ति का स्वतन्त्र चिन्तन समाप्त हो जाता है, वह बिना तर्क के बातें स्वीकार कर लेता है।

सुझाव में व्यक्ति दूसरों के विचारों से प्रभावित होता है। सुझाव का स्पष्ट रूप सम्मोहन में देखा जा सकता है। दैनिक जीवन में विज्ञापन हमें अनेक प्रकार के सुझाव देते हैं। बार-बार दोहराये जाना, आत्मविश्वास तथा सुझाव देने वाले का प्रतिष्ठित होना, सुझाव की सफलता के लिए आवश्यक है।

सुझाव के प्रकार (Types of Suggestion):-

1. भाव चालक सुझाव - यह सुझाव हमारे अचेतन मस्तिष्क में जन्म लेता है और हमें प्रभावित करता है। उदाहरणार्थ - नृत्य देखते समय हमारे पैर अपने आप थिरकने लगते हैं।
2. प्रतिष्ठा सुझाव - इस सुझाव का आधार व्यक्ति की प्रतिष्ठा होती है। जैसे- लाल बहादुर शास्त्री जी के सुझावों का देश के कोने-कोने में स्वागत किया जाता था।
3. आत्म सुझाव - इस सुझाव में व्यक्ति स्वयं अपने को सुझाव देता है। उदाहरणार्थ - यदि रोगी स्वयं को यह सुझाव देता रहता है कि वह अच्छा हो रहा है तो वह शीघ्र हो जाता है।
4. सामूहिक सुझाव - इस प्रकार का सुझाव व्यक्तियों के एक समूह द्वारा दिया जाता है। उदाहरणार्थ - हड़ताल के समय छात्र सामूहिक सुझाव के कारण ही अनुशासन हीनता के कार्य करने लगते हैं।
5. प्रतिषेध सुझाव - इस सुझाव का प्रभाव विपरीत होता है, जिस व्यक्ति को सुझाव दिया जाता है वह उसके अनुसार कार्य न करके विपरीत कार्य करता है। उदाहरणार्थ - यदि किसी छोटे बच्चे से किसी वस्तु को न छूने को कहा जाए तो वह उसे छूने का प्रयास अवश्य करता है या छू लेता है।
6. प्रत्यक्ष सुझाव - इस सुझाव में लक्ष्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाता है। जैसे- धार्मिक उपदेशों और व्यापारिक विज्ञापनों में इसी प्रकार का सुझाव पाया जाता है।
7. अप्रत्यक्ष सुझाव - इस सुझाव में लक्ष्य को स्पष्ट नहीं किया जाता। बल्कि ऐसी भूमिका बाँधी जाती है कि लक्ष्य तक पहुँचा जा सके। जैसे- होशियार बच्चे यदि कोई फिल्म देखना चाहते हैं तो वे उसे देखने की स्पष्ट माँग न करके कहते हैं कि लोग "सारे वर्तमान पर'' की बड़ी तारीफ कर रहे हैं।
8. सकारात्मक सुझाव - यह सुझाव किसी कार्य को करने की प्रेरणा देता है। जैसे - "सीधे खड़े हो।"
9. नकारात्मक सुझाव - यह सुझाव किसी कार्य को न करने का आदेश देता है। जैसे- "फूल तोड़ना मना है।"

प्रभावपूर्ण सुझाव के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ-

1. कम आयु	2. बार-बार दोहराना	3. विश्वासंपूर्ण स्वर का प्रयोग
4. सुझाव देने वालों की प्रतिष्ठा	5. ज्ञान की कमी	6. परिस्थितियों के अनुकूल सुझाव का होना।
7. जटिल समस्याओं के सम्बन्ध में।	8. अन्य विश्वासों के अनुरूप होना	9. प्रकृति एवं चरित्र की असमानता

10. मस्तिष्क की असाधारण अवस्थाएँ- (i) वातोन्माद चिन्त विकृतियाँ (ii) मानसिक रोगों का होना (iii) थकान (iv) मद्य सेवन (v) भय की अवस्था (vi) भावावेश

सुझाव ग्रहणशीलता - सुझाव करने की वह तत्परता जिसके कारण व्यक्ति सुझाव मानने के लिए तैयार हो जाता है सुझाव ग्रहणशीलता कहते हैं।" सुझाव उत्तेजक है जबकि सुझाव ग्रहण क्षमता आन्तरिक पहलू है। सुझाव वह वाह्य उद्दीपक है जो किसी व्यक्ति को दूसरों द्वारा कुछ करने के लिए प्राप्त होता है। एक व्यक्ति में कितनी मात्रा में सुझावों को ग्रहण करने की क्षमता है। इस क्षमता को ही सुझाव ग्रहण क्षमता कहते हैं। किम्बल यंग के शब्दों में - "सुझाव को उत्तेजक माना जाता है एवं सुझाव ग्रहण क्षमता वह है जो आन्तरिक पहलू से सम्बन्धित है।"

सुझाव ग्रहण क्षमता लब्धि = $= \frac{\text{माने हुए सुझावों की संख्या}}{\text{दिए गये सुझावों की संख्या}} \times 100$

सुझाव का शिक्षा में महत्व (Importance of Suggestion in Education):.

रायवर्न लिखते हैं- "सुझाव का व्यावहारिक महत्व बहुत अधिक है बालक का व्यवहार मुख्यतः इसी के द्वारा परिवर्तित किया जाता है।" बालक उसी प्रकार सीखता, कार्य करता और विश्वास करता है जैसा कि उसे सुझाव दिया जाता है। अतः सुझाव का बालक और शिक्षक दोनों के लिए विशेष महत्व है। यह दोनों की नाना प्रकार से सहायता करता है। सुझाव अध्यापक को अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए निम्न रूपों में सहायक होता है। सुझाव का शिक्षा में निम्न महत्व है-

1. नये विचार प्रदान करने में सहायता - कीटिंग कहते हैं "शिक्षक बालकों को नये विचार प्रदान करने के लिए सुझाव का प्रयोग कर सकता है। पर उसे सुझाव अप्रत्यक्ष रूप से देने चाहिए। इसके लिए उसे शिक्षण के समय चित्रों, चार्टों आदि का प्रयोग करना चाहिए।"
2. साहित्य शिक्षण में सहायता - रायबर्न कहते हैं साहित्य के शिक्षण में सुझाव का बहुत महत्व है। जैसे- शिक्षक कविता पाठ की अपनी विधि से बालकों को वाँछित भावनाओं का सुझाव देकर उनको जाग्रत कर सकता है।"
3. विभिन्न विषयों के शिक्षण में सहायता - डम्बिल लिखते हैं "विज्ञान, इतिहास, भूगोल, अंकगणित और कुछ सीमा तक साहित्य में शिक्षक, बालकों को सब कुछ स्वयं न बताकर सुझाव द्वारा उनके उत्तर निकलवा सकता है। ऐसा करके वह बालकों की विचार शक्ति का विकास और उनमें स्वयं खोज और स्वयं क्रिया की आदतों का निर्माण कर सकता है।"
4. वातावरण निर्माण में सहायता - रायवर्न ने लिखा है "सुझाव द्वारा विभिन्न विषयों के शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। जैसे- ऐसे कमरे में इतिहास की परीक्षा देना सरल है जिसमें टंगे हुए चित्र, चार्ट और मानचित्र इतिहास का संकेत देते हैं, न कि विज्ञान कक्ष में जिसमें इतिहास का कोई वातावरण नहीं है।"
5. रुचियों के विकास में सहायता - रायवर्न कहते हैं "सुझाव बालकों की रुचियों का विकास और विस्तार करने में सबसे महत्वपूर्ण है।" जैसे - शिक्षक इतिहास पढ़ाते समय साहित्य, नागरिक शास्त्र विज्ञान आदि की पुस्तकों का सुझाव कर इन विषयों में बालकों की रुचि उत्पन्न कर सकता है।"
6. मानसिक विकास में सहायता- रायवर्न कहते हैं "शिक्षक सुझाव द्वारा बालकों में शिक्षा, कला, कार्य, सौन्दर्य, संस्कृति, विद्यालय साहित्य आदि के प्रति उत्तम मानसिक दृष्टि कोणों का निर्माण कर सकता है। इस प्रकार वह सुझाव की सहायता से उनका मानसिक विकास कर सकता है।"
7. चरित्र निर्माण में सहायता - रायवर्न ने कहा है - "चरित्र के सामान्य विकास और असफलता में सुझाव अति महान् कार्य करता है।" शिक्षक अपने ज्ञान और सम्मान के कारण प्रतिष्ठा सुझाव देने की स्थिति में होता है। अतः वह सुझाव द्वारा बालकों की अच्छे कार्यों, अच्छी आदतों और अच्छे विचारों में रुचि उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार वह उनका नैतिक और चारित्रिक विकास करता है।
8. व्यक्तित्व निर्माण में सहायता - रायवनर्न ने कहा है "सुझाव सामाजिक, नैतिक और संवेगात्मक क्षेत्रों में शक्तिशाली होता है। अतः शिक्षक सुझाव द्वारा बालकों के व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।
9. अनुशासन में सहायता - "विद्यालय कक्ष में अनुशासन, सुझाव का साधारण उदाहरण है।" अपने इस कथन की व्याख्या करते हुए रायवर्न ने लिखा है- शिक्षक के आदेश में अनुशासन या अनुशासनहीनता का सुझाव निहित रहता है। घवड़ाये

हुए शिक्षक के आदेश में अनुशासनहीनता का और आत्म विश्वासी शिक्षक के आदेश में अनुशासन का स्पष्ट सुझाव होता है।

10. गुरु-शिष्य सम्बन्ध में सहायता- "सुझाव साधारणतः आदेश से उत्तम होता है।" - डम्बिल आमतौर पर बड़े छात्र आदेश को पसन्द नहीं करते हैं। फलतः आदेश शिक्षक और छात्रों में मधुर सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता है। अतः वेल्टन का मत है- "जैसे-जैसे बालक की बुद्धि, दूरदर्शिता और आत्मनियन्त्रण में वृद्धि होती जाए, वैसे-वैसे शिक्षक द्वारा सुझाव देना ही नियम बनाया जाए।"

सुझाव के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण चेतावनी देते हुए रायवर्न ने लिखा है - "हमें सदैव इस सम्बन्ध में सावधान रहना चाहिए कि हमारे सुझाव सकारात्मक हो, नकारात्मक नहीं।" इसका कारण यह है कि सकारात्मक सुझाव देने से बालकों की इच्छा शक्ति निर्बल हो जाती है और साथ ही वे विपरीत कार्य करने लगते हैं।

संक्षेप में शिक्षा में सुझाव के महत्व को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं-

1. बालकों में सुझाव प्राप्त करने की प्रवृत्ति होती है, फलस्वरूप वे शिक्षकों के उपदेशों को ध्यान से सुनते हैं।
2. सामाजिक एकता उत्पन्न करने के लिए सुझाव का बहुत महत्व है।
3. बालकों को नवीन विचार बताने में सुझाव का बहुत ही महत्व है।
4. सुझाव के माध्यम से शिक्षक बालकों में आदर्श अनुशासन उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं।
5. शिक्षकों को चाहिए कि वे शिक्षालय का आदर्श वातावरण रखें ताकि बालकों को सर्वदा अच्छे-अच्छे सुझाव प्राप्त हों।
6. शिक्षकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे नकारात्मक सुझाव न दिया करें, क्योंकि भय से बालकों में विनय की भावना उत्पन्न नहीं हो सकती है।
7. शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों से प्रेम और सहानुभूति का वर्ताव करते हुए सुझाव प्रदान करें।
8. शिक्षकों को चाहिए कि वे इतिहास, भूगोल, साहित्य, विज्ञान आदि विषयों को पढ़ाने के लिए इनसे सम्बन्धित बहुत से चित्र टाँग दें, क्योंकि ऐसा करने से बहुत से बालकों को इन चित्रों द्वारा सुझाव प्राप्त हो जाता है।
9. शिक्षकों का परम कर्त्तव्य हैं कि बालकों को समय-समय पर महान पुरूषों के उपदेश सुनने के लिए अवसर दें ताकि उनके सुझाव के आधार पर बालक जीवन में अच्छे-अच्छे काम करें।
10. शिक्षकों का परम कर्त्तव्य है कि बालकों को अच्छे-अच्छे 'आत्म सुझाव' देने के लिए प्रोत्साहित करें।

संदर्भ -

1. पाठक, पी. डी. (2006). *शिक्षा मनोविज्ञान*. आगरा: विनोद पुस्तक मंडल.
2. श्रीवास्तव, गिरधारी लाल. (1998). *शिक्षा मनोविज्ञान* (पुनर्मुद्रण). इलाहाबाद: लोचन प्रकाशन.
3. शर्मा, बी. एन. (2015). *शिक्षा मनोविज्ञान*. जयपुर: अग्रवाल प्रकाशन.
4. शर्मा, सक्सेना, एवं बरौलिया. (2010). *शिक्षा मनोविज्ञान*. मेरठ: विनीत प्रकाशन.
5. गुप्त, रामबाबू. (2009). *बाल मनोविज्ञान*. जयपुर: शेखर प्रकाशन.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

बैगा जनजाति में मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ

डॉ. रीता अनिल कुमार*
thereetukumar@gmail.com

सारांश

समाज में महिलाओं की भूमिका बहुआयामी है। महिलाएँ समाज में सामाजिक प्रतिबंध और शिक्षा के आभाव के कारण सदा से विकास से वंचित रही है। आधुनिक समाज में महिलाएँ शिक्षा, सामाजिक जागरूकता, क़ानूनी सुधार, सामाजिक परिवर्तन के कारण बदलते परिवेश में हर परिस्थिति का सामना करते हुए निरंतर आगे बढ़ती जा रही है परंतु इस सबके बीच वे आज भी सदियों से चली आ रही मासिक धर्म संबंधित भ्रांतियों के कारण अनेक समस्याओं का सामना करती है। भारत में मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ सदियों से चली आ रही है। समाज में महिलाएँ अपनी भावी पीढ़ी को धार्मिक संबंधित मान्यताओं को बताते हुए उसका पालन करती आ रही है जैसे मंदिरों में जाना वर्जित, रसोई घर में जाना वर्जित एवं आचार जैसे खाद्य सामग्री को छुना वर्जित है ऐसी तमाम चीजें आज भी समाज का हिस्सा है। बदलते वक्त के साथ समाज और महिलाओं में मासिक धर्म संबंधित जागरूकता आई है परंतु इससे संबंधित मान्यताएँ आज भी मौजूद है जिसे सामाजिक जागरूकता और शिक्षा के माध्यम से इन भ्रांतियों को कम किया जा रहा है। एक ओर समाज में मासिक धर्म संबंधित कई नियम महिलाओं के लिए व्याप्त है वही जनजातीय समाज के बैगा समुदाय में मासिक धर्म संबंधित मान्यताओं को जानने का प्रयास किया गया है। **प्रस्तुत शोध पत्र** 'बैगा जनजाति की महिलाएँ मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ' का प्रमुख उद्देश्य बैगा जनजाति की महिलाओं की स्थिति को जानना एवं मासिक धर्म संबंधित मान्यताओं का अध्ययन करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सहभागी अवलोकन एवं समूह चर्चा के माध्यम से आंकड़ों का संकलन एवं तथ्यों का विश्लेषण किया जायेगा। जिसके लिए छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के कोटा विकासखंड के अंतर्गत आनेवाले करका ग्राम पंचायत में आनेवाला गाँव नक्काबंधा का चयन किया गया है। नक्काटाबांधा गाँव में कुल 62 परिवार निवास करते हैं। बैगा जनजाति जितनी प्राचीन जनजाति है, उतनी ही पुरानी उनकी संस्कृति भी है।

शब्द कुंजी:

जनजाति, जीवनशैली, बैगा समुदाय, धर्म, संस्कृति

प्रस्तावना

बैगा जनजाति एक विशेष पिछड़ी जनजाति है जो छत्तीसगढ़ के बिलासपुर, राजनांदगांव, कोरिया, कबीरधाम और मुंगेली जिले में निवास करते हैं। जनगणना 2011 के अनुसार बैगा जनजाति की जनसंख्या 89,744 दर्ज की गई है। बैगा समुदाय विशेष कर औषधीय जड़ी-बूटी की पहचान होती है इसलिए उन्हें वैद्य के नाम से भी जाना जाता है बैगा अपनी संस्कृति और रीति रिवाजों के माध्यम से प्रकृति का संरक्षण करते हैं। वनोपज संग्रह करना, बेवर खेती करना बांस से वस्तुएं बनाना, शिकार करना और मछली पकड़ना उनके जीवनशैली का हिस्सा है। बैगा के जीवन का मूल हिस्सा अध्यात्म हैं वे अपने हर कार्य में पूजा करते हैं जिससे उनकी मान्यताएँ जुड़ी होती है। बैगा महिलाएँ दिन-प्रतिदिन के जीवन में जंगल से सुखी लकड़ियाँ, भाजी कंद-मूल इत्यादि का संग्रह करती है और मजदूरी में बैगा पुरुष की सहायता भी करती है। समुदाय में बैगा महिलाओं संबंधित मान्यताएँ कई पीढ़ियों से चली आ रही है।

---

* **लेखक स्वतंत्र शोधार्थी हैं।**

संबंधित साहित्य समीक्षा

कुमार एवं श्रीवास्तव (2011) ने किशोरियों में मासिक धर्म संबंधित सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाएँ विषय पर शोध कार्य किया और पाया कि मासिक धर्म से संबंधित सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाएँ लड़कियों की शिक्षा, पारिवारिक वातावरण, संस्कृति और विश्वास पर निर्भर करती हैं।

सिंह एवं पांडे (2015) ने "सिगनिफिकैंस एंड कमर्शियल आस्पेक्ट ऑफ़ एथनो-फिसिंग टेक्निक्स यूज्ड बाय बैगा ट्राइब टू इम्प्रूव देयर लाइवलीहुड इन अमरकंटक मध्य प्रदेश" विषय पर शोध कार्य किया। अध्ययन में पाया कि बैगा जनजाति में पारंपरिक तरीके से मछलियां पकड़ने का ज्ञान बहुत है। उनका तकनीकी ज्ञान, जलाशय के प्रकार और मौसम के अनुसार पकड़े जाने वाली मछलियों के विभिन्न प्रकार के बारे में प्रमुख है। बैगा समुदाय मत्स्य पालन के साथ-साथ जैविक संसाधनों की रक्षा के लिए काफी जागरूक है।

अमृता, बी.एल.एवं अन्य (2016) में "Menstrual Health and Ayurveda" में शोध कार्य किया और पाया कि मासिक धर्म प्राकृतिक प्रक्रिया है जो शरीर के विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालता है जिसमें पित्त दोष और कफ का प्रभाव रहता है यदि इनमें असंतुलन हुआ तो शारीरिक रोग उत्पन्न हो सकते हैं इसलिए औषधीय संतुलित खान-पान और नियमित दिनचर्या का पालन करना जरूरी होता है जिससे मासिक धर्म चक्र सुचारू रूप से होता है और जो महिला के स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

गुप्ता एवं डेविड (2017) ने "बैगा जनजाति महिलाओं के जीवन शैली के विशेष संदर्भ" विषय पर शोध कार्य किया। शोध का उद्देश्य बैगा जनजाति के महिलाओं की जीवन शैली का अध्ययन करना है अध्ययन में पाया कि बैगा महिलाओं की कार्यशैली में परिवर्तन आने लगा है। बैगा महिलाएँ आज आधुनिक साज सज्जा करने लगी है अब वे गोदना नहीं गुदवाती अब वे शिक्षा की ओर बढ़ रही है।

चंद्रा एवं नायक (2018) ने "बिलासपुर जिले के बैगा जनजाति की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन" विषय पर शोध कार्य किया। अध्ययन में पाया कि बैगा जनजाति की आर्थिक परिस्थिति ख़राब होने के कारण उनके बच्चों की शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है और शैक्षिक समस्या उत्पन्न करती हैं।

गुड्डो एवं खांडेकर (2020) ने "द बैगा विमेंस एजुकेशन स्टेटस् एंड अवेयरनेस ऑन ट्राइबल वेलफेयर स्कीम्स" विषय पर शोध कार्य किया। अध्ययन में पाया कि बैगा में शिक्षा का स्तर कम होने से वे कई विकास के क्षेत्र में पिछड़े हुए है। विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के बारे में उनमें कम जागरूकता होती है।

त्यागी एवं दास (2020) ने "स्टैंडिंग अप फॉर फोरस्ट: ए केस स्टडी ऑन बैगा वुमन्स मोबिलाइजेशन इन कमुनिटी गोवेरनेड फारेस्ट इन सेंट्रल इंडिया" विषय पर शोध कार्य किया। अध्ययन में पाया कि बैगा महिलाएँ सदियों से जंगल पर अपना अधिकार पाने के लिए संघर्ष करती आ रही हैं एवं वे जंगल और पर्यावरण के प्रति सजग है।

शोध उद्देश्य

1- बैगा समुदाय में महिलाओं की स्थिति का अध्ययन करना।
2- बैगा समुदाय में मासिक धर्म संबंधित मान्यताओं का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु सहभागी अवलोकन और समूह चर्चा का उपयोग किया गया है तथा प्राप्त तथ्यों के संकलन के माध्यम से तथ्यों का विश्लेषण किया गया है।

शोध परिसीमन

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु छत्तीसगढ़ राज्य के बिलासपुर जिले के कोटा विकासखंड के अंतर्गत आनेवाला करका गाँव के नक्ताबंधा टोला का चयन किया गया है।

विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में नक्ताबंधा गाँव में रहनेवाले बैगा जनजाति के बीच रहकर उनकी परम्पराओं और संस्कारों में सहभागी होकर महिलाओं की स्थिति का पता चला एवं उनकी मान्यताओं की जानकारी प्राप्त हुई।

समुदाय में बैगा महिलाओं की स्थिति:

प्रतिदिन का कार्य - बैगा महिलाएँ पुरुष के साथ मिलकर हर कार्य में सहयोग करती है वे प्रतिदिन जंगल से लकड़ी लाने, साग सब्जी और कंद लेकर आती है तथा घर के कार्य के साथ वे प्रतिदिन तालाब में मछलियाँ पकड़ने जाती है उनके इस कार्य में वे अपने बच्चों को भी शामिल करती है। महुआ सुखाना, महुआ पेय बनाना , मछली सुखाना और भूनना इत्यादि कार्य भी वे करती है। वे जंगल से प्राप्त बांस से झाड़ू और सूप बनने का कार्य करती है जिसे बिचौलियों को वे बेचकर अपना आर्थिक उपार्जन करती है महुआ पेय बनाकर वे अपने लिए रखकर बाकी बाहर समाज के लोगों को बेच देती है महुआ पेय का सेवन बैगा पुरुष के साथ- साथ बैगा समाज की हर एक स्त्री करती है। समुदाय की महिलाएँ पुरुष के हर कार्य में सहायता करती है।

औषधि- बैगा समुदाय की महिलाओं को औषधीय जड़ी-बूटी की भी जानकारी रखती है। समुदाय में महिला वैद्य भी है जो जंगल जाकर औषधि की पहचान कर लेकर आती है एवं औषधि बनाती है। जंगल से मिलने वाली जड़ी-बूटी को वे भोजन में शामिल करती है।

व्यक्तिगत निर्णय- बैगा समुदाय में बालक एवं बालिकाओं में भेद नहीं किया जाता है महिलाओं को अपने निर्णय लेने का अधिकार है। समाज में ही ऐसी महिलाओं से मुलाकात हुई और जानकारी मिली की समाज में एक लड़की को अपना वर चुनने का अधिकार है समाज में ऐसी कई दम्पती से बात हुई जिनका विवाह अपनी पसंद से, अपने चुने हुए साथी से हुआ है और वे अपने पिता के यहाँ ही अलग घर में रहती है। बैगा महिलाओं पर किसी भी प्रकार का दबाव नहीं होता है। समुदाय में पुनर्विवाह महिला अपनी पसंद से कर सकती है।

शिक्षा- लगभग समुदाय में सभी महिलाएँ कक्षा 5 तक पढ़ी है केवल समुदाय में एक दो बालिका ही कक्षा 10 तक की पढाई कि है। माता-पिता के जंगल जाने के बाद बालिकाएं घर के कार्यों में लगी रहती है तथा अपने छोटे-छोटे भाई बहनों का ख्याल रखती है समाज में लड़कियों का विवाह (13 वर्ष उम्र)जल्दी हो जाने के कारण वे आगे नहीं पढ़ पाती है। लगभग समुदाय में कई दम्पती है जिनकी उम्र कम है और वे माता-पिता बन गए है। आज भी बैगा समुदाय में माता- पिता शिक्षा के प्रति सचेत नहीं है वे शिक्षा को जरूरी नहीं समझते उनके लिए उनका जंगल ही सब कुछ है वे सरकार द्वारा दी गई सभी योजना को जानते हुए भी बच्चों की शिक्षा पर जोर नहीं देते।

बैगा समाज में मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ

धार्मिक कार्य - बैगा समुदाय में सहभागी अवलोकन करने से ज्ञात हुआ कि बैगा समाज में कोई भी धार्मिक कार्य होता है उसमें महिलाएँ शामिल नहीं होती है अक्ती के दिन पुरुष बैगा ठाकुर देव और महामाई दाई की पूजा करते नजर आये परंतु समुदाय की महिलाएँ पूजा में शामिल नहीं थी वे अपने घरों में पूजा के बाद मिलनेवाले प्रसाद का इंतजार कर रही थी समुदाय के पुरुष और महिलाओं से बात करने से पता चला कि समाज में महिलाएँ मासिक धर्म से होती है इसलिए उन्हें पूजा पाठ में शामिल नहीं किया जाता है यह पवित्र कार्य है।

समाज में विवाह में भी देखने को मिला कि जो भी अध्यात्मिक कार्य होता बैगा पुरुष ही करते हैं विवाह में बलि देने का भी रिवाज है पूजा में विवाह में मुर्गे, बकरे और सुअर की बलि देने के बाद उसका सेवन केवल पुरुष बैगा ही करते हैं महिलाएँ उसका सेवन नहीं करती है। समुदाय में बैगा महिला जो कि मासिक धर्म से थी वे बताती है कि वह दो दिन से खाना नहीं खाई है क्योंकि उसके पति ने खाना नहीं बनाया है और वे महुआ पेय पीकर है पूछने पर महिला बताती है कि अगर समुदाय में किसी महिला को मासिक धर्म होता है तो वे अपने घरों में सात दिनों तक खाना नहीं बनाती है क्योंकि चूल्हे की पूजा (शेर को देवता के रूप में) की जाती है तो इन दिनों में पुरुष ही खाना बनाते हैं यदि कोई महिला खाना बना भी ले तो उसके परिवार के कोई भी सदस्य खाना नहीं खाता है। शोधार्थी द्वारा पूछने पर कि क्या यह नियम अभी बना या पहले से है?

बैगा बताते हैं कि समुदाय में यह नियम उनके बुजुर्गों से चली आ रही है और वे सभी इस नियम को मानते हैं। **कुमार और श्रीवास्तव (2011)** ने अपने शोध में जानकारी दी कि महिलाओं में मासिक धर्म के दौरान शरीर से एक विशेष गंध या किरण निकलने के कारण संरक्षित भोजन खराब हो जाता है। इसलिए, उन्हें अचार जैसे खट्टे खाद्य पदार्थों को छूने की अनुमति नहीं होती है। हालाँकि ये कही साबित नहीं हुआ है कि मासिक चक्र में खाद्य सामग्री छुने से खाद्य ख़राब होता है।

औषधि- बैगा बताते हैं कि यहाँ तक कि जब भी कोई महिला मासिक धर्म से होती है वे औषधीय पौधों और पेड़ -पौधों को हाथ नहीं लगाती है। वे प्रकृति को भगवान मानते हैं और पेड़ पौधों को पवित्र मानते हैं। वे मानते हैं कि महिलाएँ मासिक धर्म के दौरान अपवित्र हो जाती है। वे औषधि लाने के लिए औषधि पौधों की पूजा करते हैं फिर जड़ी-बूटी लेकर आते हैं। शोधार्थी महिला से बैगा पुरुष बताते हैं कि जब भी जंगल जाना हो जड़ी-बूटी या कंद-मूल लाने बैगा महिला के साथ आप मासिक चक्र में ना हो तभी जाना।

समुदाय में जब लड़की पहली बार मासिक चक्र से होती है तब समुदाय में माना जाता है कि वह अब पारिवारिक जीवन के लिए तैयार हो गई है जिसके चलते उनका विवाह कम उम्र में ही कर दिया जाता है।

तंत्र-मंत्र - समुदाय में तंत्र-मंत्र करने और पूजा के लिए एक अलग ही कमरे का निर्माण करते है जिसमें मासिक धर्म से होने वाली महिलाएँ नहीं जाती है। उस स्थान को देखने से ज्ञात हुआ कि वहाँ पर कई देवी देवताओं की भी पूजा की जाती है और प्रतिदिन उस स्थान पर बैगा पुरुष पूजा करते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष: यह कह सकते हैं कि जनजातीय समाज में महिलाओं को समान अधिकार प्राप्त है परंतु मासिक धर्म में महिलाओं को धार्मिक स्थलों, रसोई घर, औषधि जैसी जगहों पर जाना वर्जित है जिसका उद्देश्य स्वच्छता और पवित्रता बनाये रखना है। **चरक सहिंता (आयुर्वेद) सुश्रुत सहिंता खंड 2** में मासिक धर्म का उद्देश्य महिलाओं के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखना है क्योंकि मासिक धर्म में शरीर को विश्राम न मिलने से रोग उत्पन्न हो सकते हैं। हिंदू धर्म में चली आ रही मासिक धर्म संबंधित मान्यताएँ कही न कही जनजाति समुदाय में भी चली आ रही है जो कि आज भी विद्यमान है। समुदाय में महिलाओं को धार्मिक कार्य में भाग नहीं लेने दिया जाता है उन्हें रसोई घर में खाना नहीं बना ने दिया जाता है वन से औषधि नहीं लाने दिया जाता उनका मानना है कि अगर मासिक धर्म से हुई महिला इन सभी चीजों को स्पर्श करेगी तो वह अपवित्र एवं अस्वच्छ हो जायेगा। ये सभी कार्य पवित्र का कार्य है और मासिक चक्र के दौरान महिलाएँ अशुद्ध रहती है। समुदाय में अनहोनी से बचने, समुदाय एवं अपने परिवार की सुरक्षा के लिए जनजाति समाज आज भी प्रकृति में बसे देवी -देवताओं की पूजा करते है। समाज में आज भी मासिक धर्म संबंधित मिथक व्याप्त है और इसे अशुद्ध और अपवित्रता से जोड़ा जाता है। **गर्ग एवं आनंद (2015)** द्वारा किये गए अध्ययन में महिलाओं के मासिक संबंधित मिथक के बारे में जानकारी मिलती है।

संदर्भ

अमृता, बी., वर्गिस, ए., एवं कुलकर्णी, पी. (2016). मासिक धर्म स्वास्थ्य और आयुर्वेद. *अन्तरराष्ट्रीय आयुर्वेदिक मेडिकल जर्नल*, *IV*(iv), 602-605. https://iamj.in/public/article/doi/602_605.pdf

कुमार, ए., एवं श्रीवास्तव, के. (2011). किशोरियों में मासिक धर्म से संबंधित सांस्कृतिक और सामाजिक प्रथाएं. *सामाजिक कार्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य*, *26*(6), 594–604.

गर्ग, एस., एवं आनंद, टी. (2015). *भारत में मासिक धर्म से जुड़े मिथक: इनसे निपटने की रणनीतियाँ*. National Institutes of Health (NIH). https://share.google/NPnbiBxcTnUgjGCGz

त्यागी, एन., एवं दास, एस. (2020). स्टैंडिंग अप फॉर फोरेस्ट: ए केस स्टडी ऑन बैगा वुमन्स मोबिलाइजेशन इन कम्युनिटी गवर्नड फारेस्ट इन सेंट्रल इंडिया. *पारिस्थितिक अर्थशास्त्र*, *178*. https://www.sciencedirect.com/science/article/abs/pii/S0921800919312236

गुप्ता, पी., एवं डेविड, ए. (2017). आदिवासी समाज की महिलाएँ: बैगा जनजाति महिलाओं के जीवन शैली के विशेष संदर्भ में. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ होम साइंस*, *3*(1), 347-348. https://www.homesciencejournal.com/archives/2017/vol3issue1/PartI/3-1-96.pdf

गुड्डों, एवं खांडेकर, एम. एस. (2020). द बैगा विमेंस एजुकेशन स्टेटस एंड अवेयरनेस ऑन ट्राइबल वेलफेयर स्कीम. *एन इंटरनेशनल बाइलिंगुअल पियर रिव्यूड रिसर्च जर्नल*, *10*(40), 60-65. https://www.researchgate.net/publication/361255608_The_Baiga_Womens_Educational_Status_and_Awareness_on_Tribal_Welfare_Schemes

चंद्रा, डी. के., एवं नायक, पी. के. (2018). बिलासपुर जिले की बैगा जनजाति की शैक्षिक समस्याओं का अध्ययन. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एडवांस्ड एजुकेशन एंड रिसर्च*, 31-34.

सिंह, एस., एवं पांडे, ए. (2015). सिगनिफिकेन्स एंड कमर्शियल आस्पेक्ट ऑफ एथनो-फिशिंग टेक्निक्स यूज्ड बाय बैगा ट्राइब्स टू इम्प्रूव देअर लाइवलीहुड इन अमरकंटक, मध्यप्रदेश. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसीप्लिनरी रिसर्च एंड डेवलपमेंट*, *2*(9), 529-533. https://www.researchgate.net/publication/352410258_Significance_and_Commercial_Aspects_of_Ethnofishing_Techniques_used_by_Baiga_Tribe_to_improve_their_Livelihood_in_Amarkantak_Madhya_Pradesh_India

सुश्रुत. (n.d.). *सुश्रुत संहिता* (खंड 2; कविराज कंजालाल मिशाग्रन्ता, सम्पादक). https://archive.org/details/englishtranslati00susruoft

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

नदियाँ जीवन का आधार

डॉ. अर्चना त्रिपाठी*
atripathy835@gmail.com

शोधसार

प्रस्तुत शोध पत्र "नदियाँ जीवन का आधार" में नदियों के बहुआयामी महत्व का विश्लेषण किया गया है। इसमें नदियों को जीवन, सभ्यता, संस्कृति और विकास का मूल आधार बताया गया है। नदियाँ न केवल जल का प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि कृषि, उद्योग, ऊर्जा उत्पादन, यातायात तथा जैव-विविधता के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। गंगा, गोदावरी, नर्मदा आदि नदियों के धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व को भी रेखांकित किया गया है। साथ ही, नदियों के प्रदूषण, अतिक्रमण और प्राकृतिक संतुलन में हस्तक्षेप से उत्पन्न संकटों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। निष्कर्षतः नदियों के संरक्षण और संतुलित उपयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords)

नदियाँ, जल-संसाधन, जीवन आधार, पर्यावरण संरक्षण, जल-प्रबंधन, सांस्कृतिक महत्व, प्राकृतिक संतुलन।

जल ना हो तो हमारा जीवन संभव नहीं है। नदियां प्राणी जीवन के लिए जल का सबसे बड़ा स्रोत हैं। प्रकृति ने हमें अलग-अलग तरीके से पानी प्राप्त कराया है। जिसमें नदियों का सबसे बड़ा महत्व है। जल,नभ और पृथ्वी के सभी छोटे-बड़े जीव जंतु का जीवन इस पर ही आश्रित है। इसलिए हम नदियों के ऋणी हैं। नदियां अपने उद्गम स्थल से आगे बढ़ते हुए हम सभी प्राणी के जीवन शैली को सुचारू रूप से चलाती हैं। पहाड़ी क्षेत्र हो या मैदानी इलाका, इसका अपना अलग ही महत्व है। नदियों के किनारे ही हमारी सभ्यता का विकास हुआ है। गोदावरी नदी दक्षिण भारत की गंगा हैं। काका कालेलकर का तो एक पूरा निबंध जिसका शीर्षक है – "दक्षिण गंगा गोदावरी" इस निबंध में कालेलकर जी लिखते हैं – "सिंधु और ब्रह्मपुत्र को जिस हिमालय का आलिंगन करने की सूझी, नर्मदा और कृष्णा को जिस तरह विंध्य - सतपूड़ा को पिघलाने की सूझी, उसी तरह गोदावरी और कृष्णा को दक्षिण के उन्नत प्रदेश को तर करके उसे धन-धान्य से समृद्ध करने की सूझी। कृष्णा और गोदावरी इन दो नदियों ने ही दो विक्रम शाली महाप्रजाओं का पोषण किया है। यदि हम कहें कि महाराष्ट्र का स्वराज्य और आंध्र का साम्राज्य इन्हीं दो नदियों के ऋणी हैं तो इसमें जरा सी भी अत्त्युक्ति नहीं होगी।"[1] इन दो ही नहीं हम सभी नदियों के हम ऋणी है। सभी नदियों का अपना उदगम स्थल होता है।" त्र्यंबक के पास पहाड़ की एक बड़ी दीवार में से गोदावरी नदी का उदगम हुआ है।"[2] सभी नदियों का पौराणिक महत्व है। हर नदी का अपना पृथक इतिहास भी है। "गोदावरी का इतिहास तो सहन - वीर रामचंद्र और सीता माता के वृत्तांत से ही शुरू होता है।....... गोदावरी की संपूर्ण कला भद्राचलम से ही देखी जा सकती है।"[3]

व्यवसाय की शुरुआत भी नदियों से हुई। नदियां ही यातायात का एक मात्र साधन बनी। नदियों का ही योगदान है कि हम दिनों दिन विकास के मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं और निरंतर हमारा विकास जारी है। नदियों का इतिहास बहुत ही पुराना है। नदियों में गंगा श्रेष्ठ है। गंगा नदी गंगोत्री से निकलकर विभिन्न घाटियों से होती हुई कसबो, और शहरों को समृद्ध करती हुई गंगासागर में समा जाती है। यह भागीरथ की कठोर तपस्या का ही फल है कि गंगा शंकर जी के जटा पर विराम लेती हुई पृथ्वी पर आई हैं,और हम मानव का कल्याण आदिकाल से करती आ रही हैं। हमारे यहां गंगा को मां कह कर पुकारा जाता है,और उनकी पूजा अर्चना की जाती है। उनके जल को पवित्र मानते हैं। सभी धार्मिक कार्य में इस जल का उपयोग किया जाता है। उनकी पवित्रता का प्रमाण है कि जब हम इस जल को डब्बे या बोतल में रखते हैं तो कभी दूषित नहीं होता है। जबकि साधारण

---

* **एस. एस. कालेज, जहानाबाद, बिहार**

जल चंद दिनों में दूषित हो जाता है। इससे साबित होता है कि गंगा एक जीवंत देवी के रूप में विद्यमान हैं। नदियों का जल जितना खेती के उपयोग में आता है उतना ही कल कारखाना तथा तकनीकी के क्षेत्र में भी सहायक है नदियों के जल से ही बिजली उत्पन्न की जाती है। पहले रोशनी का एकमात्र साधन सूर्य का प्रकाश था। कैसा समय रहा होगा जब लोग सूर्यास्त से पहले ही खाना बना लेते थे। इसकी हम सिर्फ कल्पना ही कर सकते हैं। जब शुक्ल पक्ष रहता था तब तो चांद की रोशनी से प्रकाश प्राप्त होता था। जब कृष्ण पक्ष का समय होता था तब घोर अन्धकार रहता था। धीरे-धीरे अग्नि का आविष्कार हुआ जो प्रकाश का माध्यम तो बना लेकिन खतरे का भी डर बना रहता। कालांतर में बिजली की उत्पत्ति से बल्ब जलने लगे। बड़ी-बड़ी मशीनें चलती। सुख साधन के यंत्र चलते। यह बिजली भी नदियों के जल से ही तैयार होती है। अब रात को भी लोग कार्य करने लगे। देश तरक्की की सीढ़ियां चढ़ने लगा। नदियों द्वारा विकास के अनेक स्रोत प्राप्त हुए।

जलीय प्राणी का भोजन के रूप में उपयोग हुआ। पहले नदियां ही यातायात की साधन बनी। भारत में नदियों की बहुलता है। छोटी बड़ी हजारों नदियां बहती हैं। सिंधु, शोणभद्र, ऐरावती, झेलम चिनाब सभी का अपना-अपना अलग महत्व है। जीवन का सार नदियां हैं। नदियों का प्राणी जीवन पर बहुत ज्यादा प्रभाव है चाहे वह सुख-दुख हो या कमाई का स्रोत बने। जल ही जीवन है। यह तो तय है कि जल के बिना जीवन संभव नहीं है। जहां भी जल प्राप्ति का साधन है वहां जीवन की कल्पना की जा सकती है। हमारे पृथ्वी का तीन भाग जल से घिरा है। अब तो वैज्ञानिकों ने मंगल ग्रह पर भी पानी ढूंढ निकाला है, तो वहां भी जीवन की आशाएं पल्लवित होने लगी हैं। पानी हमें जीवन देता है तो दूसरी तरफ इसकी अधिकता हमारे विनाश का कारण भी बनती है। फिर वह वर्षा की अधिकता या बादल फटना। समग्रता में कहा जाए तो हर वस्तु का संतुलित मात्रा में उपयोग ही लाभदायक होता है। इसकी अधिकता या कमी प्राणी जीवन को प्रभावित करती है। कहा गया है कि-- "अती का भला न बोलना, अती की भली न चुप। अती का भला ना बरसना, अती की भली न धूप,[4]

यही नदी जब अपने दायरे में बहती है तो हमारे उन्नत जीवन और समृद्धि का कारण बनती है और जब दायरा पार करती है तो विनाश, प्रलय का मंजर दिखा जाती है। वर्षों पहले केदारनाथ के मंदिर में आया सैलाब किसे याद नहीं होगा। मौत का तांडव प्रकृति के साथ छेड़छाड़ का ही तो परिणाम था। कोशी का कहर भी कम भयानक नहीं था। कितनों को ही अनाथ और बेघर बनाया। कहते हैं कोई भी प्राणी तब तक नुकसान नहीं पहुंचाता,जब तक उसे छेड़ा नहीं जाए। हम ने नदियों को दूषित किया है, पहाड़ों को काट मार्ग बना रहे हैं, पेड़ों को काट रहे हैं। इसका परिणाम भी हमें ही भुगतना होगा।

नदियां सबका कल्याण करती हैं। वनस्पतियों से भी तमाम लाभ प्राप्त होते हैं। नदियों का जल तो सभी जीवों को तृप्त करता है। वन संपदा पुष्पित पल्लवित होती है। आज मानव अपने फायदे के लिए नदियों के एहसान को भूलकर उसे दूषित कर रहा है जिसका दुष्प्रभाव पूरे प्राणी जीवन पर पड़ रहा है। नदियां सूखती जा रही है और गंगा विलुप्त होने के कगार पर है। यमुना जी का पानी नाले में तब्दील हो चुका है। नदियां मां के सदृश्य होती हैं। मां के बच्चे कैसे भी हों ! फिर भी मां अपना मातृत्व उड़ेलती रहती है। "माता गोदावरी राम-लक्ष्मण - सीता से लेकर वृद्ध जटायु तक सबको तूने स्तनपान कराया है। तेरे किनारे शूरवीर भी पैदा हुए, और तत्वचिंतक भी। संत भी पैदा हुए और राजनीतिज्ञ भी। देशभक्त भी पैदा हुए और ईशभक्त भी। सभी की तू माता है।"[5]

वैसे ही मां सदृश नदियों को तेजी से दूषित किए जाने के बावजूद नदियां बहती जा रही हैं। तभी तो भूपेन हजारिका जी भी गाने को विवश हो गए। उनका यह कहना भी सार्थक है, उनकी आवाज में-- "ओ गंगा तुम गंगा बहती हो क्यों? नैतिकता नष्ट हुई, मानवता भ्रष्ट हुई निर्लज्य भाव से बहती हो क्यों? ओ गंगा तुम गंगा बहती हो क्यों?[6]

क्या हम मानव इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि जिन नदियों का हमें ऋणी होना चाहिए उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करें। उनके अस्तित्व को खतरे में रखें। मानव प्रकृति से अनेक प्रकार के लाभ उठाता है और बदले में प्रकृति को हानि पहुंचता है। व्यक्ति कर्म से बड़ा बनता है आकार में बड़े होने से कुछ नहीं होता है। एक छोटी सी नदी का पानी किसी को तृप्त कर देता है और समुद्र बड़ा होकर भी निरर्थक है। इसका पानी कोई पी नहीं सकता और ना ही किसी काम आता है। इसी पर रहीम जी ने कहा है "धनि रहीम जली पंक को लघु जिय पियत अघाय अधुनी बड़ाओ कौन है जगत पियासो जाए।"[7]

मध्य प्रदेश की नर्मदा जी की बात कहूं तो ऐसी मान्यता है कि जहां गंगा में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं वहीं नर्मदा जी के दर्शन मात्र से ही मानव जीवन धन्य हो जाता हैं। विद्यापति जी की गंगा के प्रति गहरी आस्था थी। वह अपने गंगा -

स्तुति में कहते हैं--- “बड़े सुख सार पाओल तुम तीरे,.....पुन दरसन होए पुनमति गंगे,.... कि करब जप- तप जोग धेआने, जनम कृतारथ एकहि स्नाने”[8]

मैथिल कोकिल विद्यापति की दृष्टि में गंगा में लगाई एक डुबकी से जब जन्म धन्य हो जाता है। तो जप-तप सब व्यर्थ है। यह मान्यता अधिकतर लोगों की है।

निष्कर्ष

सिर्फ गंगा ही नहीं बहुत सी छोटी-बड़ी नदियां हैं, जिनका हमारे जीवन में अलग-अलग महत्व व प्रभाव है। सोन, पुनपुन कोसी दरधा, गंडक सरयू, फल्गु, तृसता, घाघरा,बिछुआ इत्यादि। सोन नदी के बालू से घर बनाए जाते हैं। फल्गु नदी माता सीता द्वारा श्रापित होकर भी लोगों के मुक्ति का मार्ग खोलती हैं। कुछ नदियों पर बांध बने जिनके द्वारा हमारी रक्षा होती है। बरसात के दिनों में बाढ़ से यह बांध हमारी हानि नहीं होने देता। कुछ ऐसी नदियां हैं जिनसे खनिज और रत्न भी हमें प्राप्त होते हैं। नदियों के अन्य जीव भी हमारे भोजन और व्यवसाय का कारण बनकर हमें धन प्राप्त कराते हैं। बड़े पैमाने पर मछली पाल कर अपनी आजीविका चलाते हैं। “कर्मनाशा” यह बिहार की नदियों में से एक है जिनके पीछे मान्यता है कि इस नदी में जो भी स्नान करता है उनके पुण्य कर्मों का नाश हो जाता है। इसलिए इस नदी में कोई नहीं स्नान करता है।

नदियों का महत्व हम कुछ शब्दों, कुछ वाक्यों या पन्नों में नहीं बयान कर सकते हैं। नदियों पर कई पुस्तकें भी लिखी गई हैं। हमारे जीवन पर नदियों का ऋण है। हमें हर हाल में इसकी रक्षा करनी है। इसके महत्व को समझना है। यह समस्त देशवासियों की भी जिम्मेदारी है। नदियों की रक्षा नहीं हुई तो हम सब अपने दुर्दिन के स्वयं जिम्मेदार होंगे।

संदर्भ –

1. कलसी, भूपेंद्र डॉ (संपा.). (2015). *अक्षयवट*. दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशंस. पृ. 41.
2. कलसी, भूपेंद्र डॉ (संपा.). (2015). *अक्षयवट*. दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशंस. पृ. 41.
3. कलसी, भूपेंद्र डॉ (संपा.). (2015). *अक्षयवट*. दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशंस. पृ. 42.
4. कबीर की वाणी. गूगल. Retrieved from https://www.google.com/
5. कलसी, भूपेंद्र डॉ (संपा.). (2015). *अक्षयवट*. दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशंस. पृ. 45.
6. हजारिका, भूपेन. असम के गायक. गूगल. Retrieved from https://www.google.com/
7. स्वामी, इरेश डॉ, & नाले, शिवाजी डॉ. (2018). *साहित्य-धारा*. हैदराबाद: ओरिएंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड. पृ. 4.
8. राय, देवदत्त डॉ (संपा.). (2012). *कविता-कानन*. दिल्ली: निर्मल पब्लिकेशंस. पृ. 29.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

प्रधानमंत्री के पद पर चन्द्रशेखर की भूमिका : एक अवलोकन

सन्तोष कुमार सिंह*

santosh17sengar @gmail.com

सारांश

पूर्व प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर भारतीय राजनीति के शिखर पुरुष और भारत में गरीबों, किसानों मजदूरों, दलितों, आदिवासियों के मुखर आवाज थे। वैचारिक राजनीति से लेकर सैद्धांतिक तौर पर उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर एक कृषक पुत्र से लेकर सर्वोच्च पद पर स्थापित होकर एक अलग पहचान बनायी। बलिया से लेकर इलाहाबाद विश्वविद्यालय तक की उनकी छात्र जीवन की संघर्षरत यात्रा में राजनैतिक घटना क्रमों का विस्तृत वृतांत है। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य से लेकर राज्यसभा,लोकसभा और प्रधानमंत्री पद तक का उनका सफर ऐतिहासिक रहा। विश्वनाथ प्रताप सिंह द्वारा त्यागपत्र दिये जाने के बाद उभरे राजनैतिक परिदृश्य में कांग्रेस सहित विभिन्न दलों के समर्थन से 10 नम्बर 1990 को भारत के प्रधानमंत्री पद को सुशोभित किया। उनके प्रधानमंत्रित्व काल में आर्थिक संकट, साम्प्रदयिक उन्माद, उल्फा संकट, पंजाब में आतंकवाद, मंडल आयोग को लागू होने के बाद से उपजी परिस्थितियाँ, जम्मू कश्मीर में आतंकवाद जैसी विषम परिस्थितियाँ थी। लेकिन उन्होंने इस विषम संकट में भी इन समस्याओं का दृढ़ता से सामना किया। सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, विदेश नीति से संबंधित मामलों में उनके नेतृत्व में किए गये कार्य तथा उनकी कार्यशैली असाधारण थी।

मुख्य शब्दः-

आतंकवाद, चन्द्रशेखर, प्रधानमंत्रित्व, साम्प्रदायिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रीयता, वैश्वीकरण

प्रस्तावनाः-

भारत में स्वतंत्रता के वाद राजनैतिक परिदृश्य में व्यापक बदलाव हुए। आजादी के बाद भारत की ग्रामीण परिस्थितियों में मूलभूत बदलाव हुए। ऐसे ही हालात में भारत के गरीब लोगों को विषम हालात में जीना होता था। चन्द्रशेखर का जन्म 17 अप्रैल 1927 को ऐसे ही ग्रामीण परिवेश में बलिया जिले के बेलथरा रोड के निकट इब्राहिम पट्टी गांव में हुआ। ग्रामीण परिवेष में शिक्षा हासिल करके उन्होंने स्नातक सतीश चंद्र कालेज बलिया से किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उन्होंने एम.ए. राजनीति शास्त्र विषय में किया था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से उन्होंने शोध कार्य का विचार किया लेकिन आचार्य नरेन्द्र देव के सलाह पर यह कार्य छोड़कर देश सेवा का संकल्प लिया। 1955 में प्रदेश सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री बने। 1962 में राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए। अशोक मेहता से विवाद के कारण साल 1964 में कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण की। 1967 ये कांग्रेस संसदीय दल के मंत्री बने। 1969 के बाद लगातार कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य रहे। 1972 में कांग्रेस हाईकमान के निर्देश के विरूद्ध लड़कर शिमला अधिवेशन के चुनाव समिति के सदस्य चुने गये। 26 जून 1975 को आपातकाल लागू होने पर उनकी गिरफ्तारी हुई। साल 1977 में जनता पार्टी के अध्यक्ष बने। इसी वर्ष बलिया से लोकसभा के लिए चुने गये। जनता पार्टी सरकार के पतन के बाद पार्टी में हो रही खींचतान पारस्परिक द्वेष से परेशान रहे। साल 1983 में केरल से आये दो युवकों एंथोनी और जोसेफ की सलाह पर दक्षिण भारत से एक अखिल भारतीय स्तर पर पदयात्रा प्रारम्भ

---

* **पी-एच. डी. शोध छात्र, इतिहास विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा**

करने का प्रस्ताव पर उन्होंने मोहर लगा दी। जनता पार्टी अध्यक्ष के रूप में उन्होंने 6 जनवरी 1983 से 25 जून 1983 तक कन्याकुमारी तमिलनाडु से नयी दिल्ली के राजघाट तक 4260 किमी. तक की पैदल यात्रा की थी। उन्होंने भारत यात्रा के बाद स्वच्छ पेय जल, सभी के लिए प्राथमिक शिक्षा, बच्चों और गरीब माताओं के लिए स्वास्थ सुविधा, आदिवासियों और हरिजनों को सम्मान पूर्ण जीवन, साम्प्रदायिक सद्भाव सहित बिंदुओं को इस यात्रा का कोर बताया। 10 नवम्बर 1990 को भारत के प्रधानमंत्री पद पर शपथ ग्रहण के बाद उन्होंने भारत की मुख्य समस्याओं के निदान हेतु आवश्यक प्रयास प्रारम्भ किए।

शोध उद्देश्य-

इस शोध कार्य का उद्देश्य चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत की तत्कालीन चुनौतियों तथा राष्ट्रीय, अन्तरराष्ट्रीय मुद्दों, समस्याओं के संदर्भ में चन्द्रशेखर के कार्यों पर दृष्टि देना है। वास्तविकता में चन्द्रशेखर का कार्यकाल गंभीर आर्थिक संकट, आतंकवाद की समस्या, साम्प्रदायिक उन्माद में रहा। ऐसी दौर में उन्होंने व्यक्तिगत कौशल सूझबूझ, राजनीति, दूरदर्शिता के माध्यम से व्यवहारिक तौर पर अपने कार्यशैली से सरकार का प्रशासन संभाला। इस दौरान असम में उल्फा संकट से सरकार ने गंभीरता से प्रहार किया। असम में सरकार को बर्खास्त किया गया। उग्रवाद पर नकेल कसने के लिए अर्धसैनिक बलो, सैन्य बलों के माध्यम से कार्रवाई की गयी। इस शोधकार्य का उद्देश्य उनके प्रधानमंत्रित्व काल में सरकार द्वारा किए गये कार्यों का सूक्ष्म तौर पर अवलोकन करना।

शोध प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत शोध पत्र में गुणात्मक (Qualitative) शोध पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसके अंतर्गत चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्रित्व काल का विश्लेषण ऐतिहासिक एवं वर्णनात्मक दृष्टिकोण से किया गया है। इस अध्ययन के लिए मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों (Secondary Sources) का सहारा लिया गया है।

प्राथमिक रूप से चन्द्रशेखर की आत्मकथात्मक कृतियाँ—*"जीवन जैसा जिया"* तथा *"रहबरी के सवाल"*—का अध्ययन किया गया है, जिनसे उनके विचारों, नीतियों और कार्यशैली की जानकारी प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त हरिवंश तथा रोड्रिक मैथ्यू जैसे विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों, शोध लेखों और समकालीन राजनीतिक विश्लेषणों का भी उपयोग किया गया है।

शोध में वर्णनात्मक (Descriptive) तथा विश्लेषणात्मक (Analytical) विधियों का प्रयोग करते हुए उनके कार्यकाल की प्रमुख चुनौतियों—जैसे आर्थिक संकट, आतंकवाद, साम्प्रदायिक तनाव और क्षेत्रीय समस्याओं—का अध्ययन किया गया है। साथ ही तुलनात्मक (Comparative) दृष्टिकोण अपनाकर उनके नेतृत्व की विशेषताओं का मूल्यांकन किया गया है। इस प्रकार, उपलब्ध साहित्य के सम्यक अध्ययन और विश्लेषण के आधार पर चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्रित्व की भूमिका का वस्तुनिष्ठ एवं व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण किया गया है।

साहित्य समीक्षा

चन्द्रशेखर के प्रधानमंत्रित्व काल और उनके राजनीतिक जीवन पर विभिन्न विद्वानों, इतिहासकारों तथा स्वयं चन्द्रशेखर द्वारा लिखित ग्रंथों में व्यापक चर्चा मिलती है। इन कृतियों के माध्यम से उनके व्यक्तित्व, वैचारिक दृष्टिकोण तथा शासन शैली का विश्लेषण किया गया है।

चन्द्रशेखर की आत्मकथात्मक कृति *"जीवन जैसा जिया"* (शर्मा, 2002) में उनके राजनीतिक जीवन, संघर्ष, तथा प्रधानमंत्री के रूप में उनकी प्राथमिकताओं का स्पष्ट चित्रण मिलता है। इसमें उन्होंने आर्थिक संकट, सामाजिक असमानता तथा राष्ट्रीय विकास के मुद्दों पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। इसी प्रकार *"रहबरी के सवाल"* (राय, 2005) में उन्होंने नेतृत्व, नीति-निर्माण और शासन की चुनौतियों पर अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है, जो उनके वैचारिक पक्ष को समझने में सहायक है।

हरिवंश द्वारा लिखित *"Chandrasekhar: The Last Icon of Ideological Politics"* (2019) में चन्द्रशेखर को वैचारिक राजनीति के अंतिम प्रमुख प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक में उनके राजनीतिक सिद्धांतों, नैतिक मूल्यों तथा समकालीन राजनीति में उनकी प्रासंगिकता का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने यह दर्शाया है कि चन्द्रशेखर ने सत्ता से अधिक विचारधारा को महत्व दिया।

रोड्रिक मैथ्यू की कृति *"Chandrasekhar and Six Months that Saved India"* (2020) में उनके अल्पकालिक प्रधानमंत्रित्व को भारत के इतिहास के अत्यंत संकटपूर्ण काल के रूप में वर्णित किया गया है। इसमें आर्थिक संकट, विदेशी मुद्रा भंडार की कमी तथा राजनीतिक अस्थिरता के बीच उनके निर्णयों और नीतियों का विश्लेषण किया गया है। लेखक के अनुसार, चन्द्रशेखर ने अपनी सूझबूझ और साहसिक निर्णयों से देश को गंभीर संकट से उबारने का प्रयास किया।

इन सभी स्रोतों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रशेखर का प्रधानमंत्रित्व केवल एक राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि वैचारिक प्रतिबद्धता, जनसरोकार और संकट प्रबंधन का महत्वपूर्ण उदाहरण है। उपलब्ध साहित्य उनके व्यक्तित्व को एक ऐसे नेता के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसने विपरीत परिस्थितियों में भी लोकतांत्रिक मूल्यों और राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखा।

शोध विश्लेषणः-

चन्द्रशेखर 10 नवम्बर 1990 को जब भारत के प्रधानमंत्री बने तो देश में अनेक गंभीर संकट थे। सबसे बड़ा संकट आर्थिक था। पिछले सरकारों ने गंभीरता से इस संदर्भ में कार्य नहीं किया। उन्होंने इस संदर्भ में गंभीरता से कदम उठाये। उन्होंने उच्च शिक्षा के संदर्भ में रचनात्मक कदम उठाये। यूजीसी के अध्यक्ष यशपाल जी के प्रयास से 21 विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के साथ बैठक हुई। इसमें उन्होंने प्रस्ताव दिया कि छात्रों को गाँवों में भेजने का प्रबंध हो तथा उनके द्वारा निरक्षरता का अभियान चलाया जाये। उन्होंने अयोध्या विवाद के समाधान के लिए दोनों पक्षों के साथ बैठकर वार्ता की तथा साम्प्रदायिक सौहार्द बनाने का निर्देश दिया। पंजाब में आपरेशन ब्लू स्टार के बाद से ही हालात गंभीर हो गये थे। आतंकवादियों द्वारा निर्दोष लोगों की हत्यायें की जा रही थी। उन्होंने आतंकवादियों को शांति प्रक्रिया वार्ता के लिए आमंत्रित किया। उनसे गंभीरता से वार्ता की गयी। असम में हालात और बदतर थे। उल्फा आतंकियों द्वारा बिहार, उत्तरप्रदेश से आयें लोगो की निर्मम हत्यायें की जा रही थी। तत्कालीन प्रफुल्ल महंत की सरकार कमजोर साबित हुई। केन्द्र सरकार ने असम सरकार को बर्खास्त कर दिया। दक्षिण भारत में लिट्टे को तमिलनाडु राज्य सरकार का समर्थन था। केन्द्र सरकार के अनुरोध के बाद भी लिट्टे पर कोई गंभीर कार्रवाई नहीं की गयी थी। इसके बाद करुणानिधि की सरकार को बरखास्त कर दिया गया। कश्मीर के मसले पर उनका विचार था कि हर वह व्यक्ति जो भारत का नागरिक है उनसे वह बात करेंगे। उन्होंने कश्मीर समस्या पर भी वार्ता करने की कोशिश की।

संसद में मुखर होकर उन्होंने तिब्बत के मुद्दे पर चीन का विरोध किया। उनका मानना था कि इस तरह के कब्जे से भारत के लिए गंभीर संकट उत्पन्न होंगे। उन्होंने क्षेत्रीयता के मुद्दे को लेकर हमेशा नेपाल में लोकतंत्र का समर्थन किया। उनका मानना था कि नेपाल में लोकतंत्र का होना स्थायित्व तथा मजबूत सरकार के निर्माण के लिए आवश्यक है। उन्होंने अनेक अवसरों पर नेपाली कांग्रेस के नेताओं को समुचित स्थान प्रदान करने हेतु राजा के साथ बात की थी।

21 नवम्बर 1990 को मालदीव की राजधानी माले में उन्होंने सार्क देशों के शिखर समेल्लन में क्षेत्रीय स्तर पर सौहार्द बनाने की वकालत की। अपनी आत्मकथा जीवन जैसा जिया में चन्द्रशेखर ने उल्लेख किया है कि प्रधानमंत्री पद सँभालने पर मेरी प्राथमिकताएँ वही रही, जो मेरे राजनीतिक जीवन के आरंभ में थी। सवाल था कि देश का विकास कैसे हो? इसके दो ही साधन है- प्राकृतिक और मानवशक्ति। उन्होंने आगे उन्होंने असम और तमिलनाडु के मुद्दे पर लिखा है कि असम में उल्फा की समस्या थी। प्रफुल्ल महंत की सरकार लाचार थी। उसी तरह से तमिलनाडु में लिट्टे बेरोकरोक अपना काम कर रही थी।

राज्यसभा के उपसभापति हरिवंश ने अपनी पुस्तक चन्द्रशेखर द लास्ट आइकान आफ आइडियोलजिकल पालिटिक्स पुस्तक में लिखा है कि चन्दशेखर ने प्रधानमंत्री का पद इसलिए भी संभाला था क्योंकि वो जानते थे कि वित्तीय

संकट को वो बेहतर ढंग से नियंत्रित कर सकते हैं। उन्होंने वित्तमंत्रालय में प्रशासनिक स्तर पर फेरबदल किया । उन्होंने यशवंत सिन्हा को वित्तमंत्री, एस. पी. शुक्ला को नया वित्त सचिव नियुक्त किया।

रहबरी के सवाल पुस्तक में चन्द्रशेखर ने प्रधानमंत्री के रूप में अपनी प्राथमिकताओं के संदर्भ में बताया कि अपनी प्राथमिकताएं तय करते वक्त मैं इस मानसिक बोझ से नहीं दबा कि सरकार कितने दिनों तक चलेगी।

प्रसिद्ध इतिहासकार रोड्रिक मैथ्यू ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि भारत के आठवें प्रधानमंत्री चन्द्रशेखर ने भारत के इतिहास के सबसे कठिन दौर में सत्ता संभाली थी।

निश्चित तौर से प्रधानमंत्री के रूप में चन्द्रशेखर का कार्यकाल विपरीत परिस्थितियों में शामिल था। देश के सामने अनेक चुनौतियाँ शामिल थी। इन चुनौतिया का उन्होंने बड़े ही कौशल और बुद्धिमता पूर्वक ढंग से क्रियांवयन किया था।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रशेखर का प्रधानमंत्रित्व काल भले ही अल्पकालिक रहा हो, किन्तु वह अत्यंत चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों से घिरा हुआ था। आर्थिक संकट, आतंकवाद, साम्प्रदायिक तनाव, क्षेत्रीय असंतोष तथा अंतरराष्ट्रीय दबाव जैसे जटिल मुद्दों के बीच उन्होंने अपने राजनीतिक अनुभव, दूरदर्शिता और व्यावहारिक दृष्टिकोण का परिचय दिया। उन्होंने संवाद, समन्वय और संतुलित नीति के माध्यम से समस्याओं के समाधान का प्रयास किया।

चन्द्रशेखर का नेतृत्व वैचारिक प्रतिबद्धता, जनहित की भावना और साहसिक निर्णय क्षमता का प्रतीक था। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सीमित संसाधनों और राजनीतिक अस्थिरता के बावजूद भी प्रभावी शासन संभव है। अतः उनका प्रधानमंत्रित्व भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में स्थापित होता है, जो संकट प्रबंधन, लोकतांत्रिक मूल्यों और जनकल्याणकारी दृष्टिकोण को रेखांकित करता है।

संदर्भ-

चन्द्रशेखर. (2002). *जीवन जैसा जिया* (संपा. सुरेश शर्मा). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.179

चन्द्रशेखर. (2005). *रहबरी के सवाल* (संपा. रामबहादुर राय). नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.101

हरिवंश. (2019). *Chandrasekhar: The Last Icon of Ideological Politics*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.196

मैथ्यू, रोड्रिक. (2020). *Chandrasekhar and Six Months that Saved India*. नई दिल्ली: हार्पर कॉलिन्स प्रकाशन. पृ.102

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

हुमायूँनामा के ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में विश्लेषण : एक अध्ययन

डॉ. रेनू देवी*
renudevi150782@gmail.com

शोध सारांश:

गुलबदन बेगम द्वारा लिखित 'हुमायूँनामा', 16वीं शताब्दी के दौरान मुगल साम्राज्य के सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास को समझने के लिए एक अद्वितीय और अमूल्य स्रोत है। पुरुष इतिहासकारों द्वारा रचित पारंपरिक दरबारी इतिवृत्तों के विपरीत, यह कृति एक शाही महिला के दृष्टिकोण से एक दुर्लभ 'भीतरी' परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करती है; यह सम्राट हुमायूँ के निजी जीवन, मुगल घराने की आंतरिक गतिशीलता, और निर्वासन तथा सत्ता-पुनर्प्राप्ति के दौर में सामने आई चुनौतियों के बारे में सूक्ष्म अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। यह अध्ययन 'हुमायूँनामा' का एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में आलोचनात्मक विश्लेषण करता है, जिसमें इसकी कथा शैली, विषयगत सरोकारों और इतिहासलेखन संबंधी महत्व की पड़ताल की गई है। यह उन तत्वों स्मृति, व्यक्तिगत अवलोकन और चुनिंदा दस्तावेज़ीकरण के मिश्रण को रेखांकित करता है जो इस ग्रंथ की विशिष्टता हैं, और इस प्रकार ऐतिहासिक लेखन में व्यक्तिपरकता तथा विश्वसनीयता से जुड़े प्रश्न खड़े करता है। साथ ही, दरबारी जीवन, नाते-रिश्तों, लैंगिक भूमिकाओं और राजनीतिक घटनाओं के विस्तृत विवरणों के कारण यह कृति, 'अकबरनामा' जैसे अधिक औपचारिक फ़ारसी इतिवृत्तों के लिए एक अनिवार्य पूरक सिद्ध होती है। यह अध्ययन इस ग्रंथ की सीमाओं का भी मूल्यांकन करता है, जिनमें इसकी प्रसंग-प्रधान संरचना और कालानुक्रमिक सटीकता का अभाव शामिल है।'हुमायूँनामा' की व्याख्या केवल एक जीवनीपरक वृत्तांत के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक दस्तावेज़ के रूप में की जाती है जो एक 'लैंगिक' और 'अनुभवजन्य' दृष्टिकोण के माध्यम से मुगल इतिहास के प्रति हमारी समझ को समृद्ध करता है।

मुख्य शब्द:

हुमायूँनामा, गुलबदन बेगम, लैंगिक परिप्रेक्ष्य, दरबारी संस्कृति, कथात्मक इतिहास, हुमायूँ

प्रस्तावना

मुगल साम्राज्य की स्थापना के प्रारम्भिक चरण में ऐतिहासिक लेखन मुख्यतः पुरुष प्रधान रहा. जिसमें युद्ध विजय और शाही वंशावलियों पर बल दिया गया. लेकिन हुमायूँ की सौतेली बहन गुलबदन बेगम द्वारा लिपिबद्ध किया गया है जो मुगल दरबार की एकमात्र ज्ञात महिला लेखिका है। इस ग्रनी को लेखिका ने फारसी भाषा में वर्णित किया है। सम्राट अकबर के आदेश पर उन्होंने हुमायूँ के जीवन और शासन पर विभिन्न घटनाओं को स्मरण आधारित विववरणों के रूप में लिपिबद्ध किया। यह कृति हुमायूँ के राजनीतिक जीवन का प्रतिबिम्ब है अपितु मुगलशाही परिवार और स्त्री जीवन की दुर्लन झलक भी प्रस्तुत करती है। यह अव्ययन हुमायूँनामा श्रा अहल-ए-हुमायूँ बादशाह को ऐतिहासिक ग्रन्थ के रूप में विश्लेषित करता है जिसमें इसके योगदान सीमाएँ और आधुनिक व्याख्या पर ध्यान केन्द्रित किया गया है[1]।

गुलबदन बेगम (1523–1803 ई०) मुगल दरबार की एक विदुषी महिला थी जो फारसी और तुर्की भाषा में निपुण थी। उसका जन्म 1523 के लगभग काबुल में हुआ था। यह बाबर की पत्नी दिलदार बंगम से उत्पन्न तीसरी सन्तान थी। बाबर की मृत्यु के समय उसकी आयु मात्र आठ वर्ष की थी। इस कारण उसकी स्मृतियाँ सीमित श्री. लेकिन हरम के विशिष्ट एवं पिता के सम्बन्धियों से सुनकर जो इतिहास लिपिबद्ध किया वह मूल्यवान एवं प्रमाणित है।हुमायूँ के जीवन का अधिकांश माग उनकी प्रत्यक्ष स्मृतियों पर टिका है। हुमायूँनामा एक औपचारिक इतिहास के बजाय व्यक्तिगत संस्मरण है जो सरल भाषा फारसी में

* **इतिहास विभाग, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

लिपिबद्ध किया गया है। यह बाबरनामा की शैली की भाँति बिना अतिरिक्त अलंकरण या चापलूसी के है। इसकी रचना दो प्रमुख भागों में विभाजित है। लेखिका ने स्वयं स्वीकार किया कि आज्ञा हुई की जो कुछ बुतान्त फिरदौसी मकानी (बाबर) एवं जन्नत आशियानी का ज्ञात वुह लिपिबद्ध किया जाय। जिस समय फिरदौसी मकानी की मृत्यु हुई थी उस समय मेरी अवस्था मात्र आठ वर्ष की थी। उन्होंने (बाबर) अपना इतिहास अपनी आत्मकथा में लिपिबद्ध किया है परन्तु यहाँ जो फिरदौसी मकानी के विषय में इतिहास है वह आशीर्वाद मात्र है। बाबर के दैनिक जीवन समरकन्द्र पर दो बार विजय' और पारिवारिक संघर्ष का वर्णन प्राप्त होता है। अन्ध के प्रथम में बाबर के संक्षिप्त वर्णन के पश्चात हुमायूँ के शासन काल पर केन्द्रित जिसमें उसकी विजये (1530–1540 ई.) और 1542-1550 ई. तक की घटनाओं का वर्णन है जिसमें उसकी विजये. शेरशाह सूरी से पराजय' (1540 ई.) 15 वर्ष का निर्वासन (ईरान में सफाविटु दरबार सहित) हमीदाबानो बेगम के साथ उसका विवाह अकबर का जन्म और भाइयों के मध्य संघर्ष प्रमुखतः मिर्जा कामरान मिर्जा अरकरी एवं मिर्जा हिन्द्राल के मध्य मात्र महिलाओं की घुमन्तू जीवन शैली कुलड़ को दुःखपूर्ण विस्तार से वर्णित किया है। द्वितीय भाग में हरम के दैनिक जीवन विवाह मृत्यु तीर्थ यात्रायें और त्यौहार मनोरंजन के विभिन्न आयामों को परिलक्षित किया है। हुमायूँ के विनम्र स्वभाव को चित्रित किया गया है। वह उसकी कमजोरियों को भी नहीं छिपाती है। लेखिका उसके मादक पदार्थों के सेवन करने पर भी प्रकाश डालती है अर्थात लेखक उसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पुत्रों को उजागर किया।हुमायूँनामा मुगल साम्राज्य के राजनीतिक, सांस्कृतिक परिद्वश्य में मूल्यवान अन्र्तदृष्टि प्रदान करता है। इस ग्रन्थ में 1494 ई. से 1553 ई. तक लगभग 59 वर्षो के इतिहासों को उकेरा गया है जिसमें राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास सम्मिलित है। इस ग्रन्थ में हरम का विवरण अति महत्वपूर्ण है जिसमें महिलाओं का घुमन्तु जीवन राजकीय विवाहों की राजनीति जैसे खानजादा बंगम (बाबर की बहन) का विवाह सैन्य सहायता के लिए होना और घरेलू स्थिति का महत्व गुलबदन बेगम अपने स्वयं के इतिहास पर बहुत ही संक्षिप्त प्रकाश डाला है। वह स्वयं को अनेक स्थानों पर तुच्छ लिखकर प्रस्तुत किया है[2]।

हुमायूँनामा के ऐतिहासिक स्वरूप के विषय में यह इसलिए महत्वपूर्ण है कि यह कृति मुगल इतिहास के लिए अमूल्य है क्योंकि इसमें इनेक ऐसी सूचनाएँ है जो समकालीन इतिहासकारों के लेखों में अप्राप्य है. जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अति मुल्यवान है। यह ग्रन्थ पुरुष प्रधान इतिहासकारों जैसे (अबुल फजल एवं अब्दुल कादिर बदायूनी) के अतिरिक्त वर्णनों के विपरीत तथ्यात्मक और निष्पक्ष दृष्टिकोण प्रदान करता है। यह तैमूर वंश की आन्तरिक राजनीतिक निर्वासन की कठिनाइयों और महिलाओं की भूमिका को उजागर करता है जैसे महिलाओं का युद्धों में परिवेशक के रूप में कार्य करना शिक्षा और धार्मिकता आदि। यह हरम को एक निष्क्रिय स्थान न मानकर सक्रिय सामाजिक इकाई के रूप में चित्रित करता है। फेमिनिष्ट विश्लेषण में इसे 18वीं शताब्दी की एक मात्र महिला लेखिका के रूप में देखा जाता है लिंग भूमिकाओं और प्रौकावस्था की अवधारणाओं को चुनौती देती है।" इसके अतिरिक्त यह मुगल परिवार की ईर्ष्या मेल जोल और सुलह को जीवन्त बनाता है जो अन्य स्रोतों में अनुपस्थित है। गुलबदन बेगम की रचना हुमायूँनामा राजसी व्यक्तित्व का मानवीय चित्रण करती है वह न केवल शासकों के रूप में बल्कि भाइयों पिताओं और पत्नियों के रूप में भी चित्रित करती है[3]।

हुमायूँनामा मुगल इतिहास के लिए एक अनुपम स्रोत है जो अकबरनामा जैसे पुरुष लिखित ग्रन्थों को पूरक बनाता है। यह महिलाओं की राजनीतिक मध्यस्थता को प्रकाशित करता है। यह स्मृति और इतिहास के मिश्रण से मुगल सम्प्रभुता को पारिवारिक रीति से जोड़ता है जो आधुनिक इतिहासकारों के लिए उपयोगी है। यह कृति न केवल हुमायूँ के राजनीतिक जीवन का प्रतिबिम्ब है अपितु मुगलशाही परिवार और स्त्री जीवन की दुर्लन झलक भी प्रस्तुत करती है।गुलबदन बेगम की स्थिति अत्यन्त विशिष्ट श्री वे प्रत्यक्षदर्शी शाही परिवार की सदस्य और दरबार की सक्रिय सहभागी थी। इस कारण उनके लेखन हुमायूँनामा को व्यक्तिगत साक्ष्य प्रदान और आन्तरिक दृष्टि से युक्त बनाता है। लेखिका ने हुमायूँनामा या "अहल-ए-हुमायूँ बादशाह" में मुगल स्त्रियों का जीवन उनकी सामाजिक भूमिकाओं और परम्पराएं विवाह शाही आयोजन और दरबारी रीति-रिवाजों का चित्रण पुर के भीतर का संसार जो प्रायः अन्य इतिहास- ग्रन्थों में अनुपस्थित है को बड़े ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया है।

लेखिका ने मुगल हरम महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियों को केन्द्रित करके चित्रित किया है जैसे माइम बंगम की सत्ता या हुरम बंगम का सैन्य नेतृत्व | गुलबदन बेगम की लेखन शैली पुरूष प्रबन इतिहास को चुनौती देती है जो महिलाओं को देखा परन्तु सुनान जाए मानती थी। यह ग्रन्थ महिला केन्द्रित सम्प्रभुता की अवधारणा प्रस्तुत करता है जहाँ घरेलू जीवन

राजनीति व्यक्ति का आधार है।यह ग्रन्थ तत्कालीन भारत की आर्थिक सामाजिक दशा. मुगल परिवार के दैनिक जीवन और राजसत्ता के निजी पहलुओं को उजागर करता है। पुरुष इतिहासकारों जैसे बाबरनामा के लेखक बाबर से भिन्न यह एक स्त्री दृष्टि से मुगल साम्राज्य को दर्शाती है। मध्य युग में इतिहास लेखन पुरुष प्रधान था परन्तु गुलबदन बेगम ने महिलाओं की भूमिका को रेखांकित किया। लेखिका मुख्य युग के तीन बादशाहों के शासन काल में दृष्टिगत किया जिससे उनके पास अन्यत्र सूचनाएं थी। लेखिका ने बाबर तथा हुमायूँ की विभिन्न गतिविधियों को हुमायूँनामा में अंकित किया जो ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है[4]। इसमें कुछ क्षणिक घटनाओं को छोड़कर शेष का क्रमबुद्ध से वर्णन प्राप्त है परन्तु कहीं-कहीं तारीखों एवं वर्षा का अभाव है गुलबदन बेगम राजनीतिक घटनाओं का विशेषण कम किया है बल्कि उन्हें भावनात्मक और पारिवारिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

शोध विषय का महत्व उद्देश्य-

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य गुलबदन बेगम द्वारा रचित 'हुमायूँनामा' की एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में आलोचनात्मक जाँच करना और मुगल इतिहास-लेखन में इसके योगदान का मूल्यांकन करना है। इसका लक्ष्य इस कृति की कथा संरचना, विषयगत तत्वों और ऐतिहासिक सामग्री का विश्लेषण करना है, जिसमें विशेष रूप से इस बात पर ध्यान दिया जाएगा कि यह हुमायूँ के जीवन और शासनकाल को किस प्रकार चित्रित करती है। एक अन्य प्रमुख उद्देश्य इस ग्रंथ को आकार देने में स्मृति, व्यक्तिपरकता और व्यक्तिगत अनुभव की भूमिका का आकलन करना है, जिससे एक प्राथमिक ऐतिहासिक स्रोत के रूप में इसकी विश्वसनीयता और सीमाओं का पता लगाया जा सके। यह अध्ययन 'हुमायूँनामा' में निहित लैंगिक दृष्टिकोण को भी उजागर करने का प्रयास करता है, और इस बात पर ज़ोर देता है कि यह समकालीन पुरुषों द्वारा रचित इतिहास-ग्रंथों, जैसे कि 'अकबरनामा', से किस प्रकार भिन्न है।

शोध विषय का महत्व महत्व-

इस अध्ययन का महत्व ऐतिहासिक लेखन की समझ को व्यापक बनाने के इसके प्रयास में निहित है, जिसके अंतर्गत गैर-पारंपरिक और हाशिए पर पड़ी आवाज़ों को भी शामिल किया गया है। 'हुमायूँनामा' मुगल दरबार के घरेलू जीवन, पारिवारिक संबंधों और शाही महिलाओं के अनुभवों के बारे में दुर्लभ अंतर्दृष्टि प्रदान करता है—ऐसे विषय जो अक्सर औपचारिक राजनीतिक इतिहास-ग्रंथों में अनुपस्थित रहते हैं। इस ग्रंथ का विश्लेषण करके, यह अध्ययन मुगल इतिहास की अधिक समावेशी और बहुआयामी व्याख्या में योगदान देता है। इसके अतिरिक्त, यह अतीत के पुनर्निर्माण में आत्मकथात्मक और अर्ध-आत्मकथात्मक वृत्तांतों के महत्व को रेखांकित करता है। यह कृति 16वीं शताब्दी के भारत की सांस्कृतिक और सामाजिक ताने-बाने को समझने के लिए भी एक महत्वपूर्ण संसाधन का कार्य करती है। कुल मिलाकर, यह अध्ययन 'हुमायूँनामा' की एक साहित्यिक और ऐतिहासिक दस्तावेज़—दोनों ही रूपों में—दीर्घकालिक प्रासंगिकता को उजागर करता है, जिससे मध्यकालीन भारतीय इतिहास और लैंगिक अध्ययन के क्षेत्र समृद्ध होते हैं।

"हुमायूँनामा" में भारतीय समाज का चित्रण-

"हुमायूँनामा" की रचना गुलबदन बेगम द्वारा की गई, जो मुगल सम्राट हुमायूँ की बहन थीं। यह ग्रंथ केवल एक ऐतिहासिक दस्तावेज ही नहीं, बल्कि उस समय के भारतीय समाज, संस्कृति और दरबारी जीवन का जीवंत चित्रण भी प्रस्तुत करता है। इसमें तत्कालीन समाज की संरचना, स्त्रियों की स्थिति, पारिवारिक संबंध, और सामाजिक रीति-रिवाजों का सजीव वर्णन मिलता है।सबसे पहले, "हुमायूँनामा" में मुगल दरबार के अभिजात्य वर्ग का विस्तृत चित्रण मिलता है। इसमें राजपरिवार के भीतर के संबंधों, सत्ता संघर्षों और भाई-भाई के बीच प्रतिस्पर्धा का उल्लेख है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में सत्ता और वंश परंपरा का अत्यधिक महत्व था। साथ ही, दरबार के रीति-रिवाज, उत्सव, यात्राएं और सैन्य गतिविधियाँ भी समाज के महत्वपूर्ण अंग के रूप में उभरती हैं[5]।

दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष स्त्रियों की स्थिति का है। "हुमायूँनामा" की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक महिला द्वारा लिखा गया ग्रंथ है, इसलिए इसमें स्त्री दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। गुलबदन बेगम ने हरम के जीवन, स्त्रियों की दिनचर्या, उनके भावनात्मक संबंधों और सामाजिक भूमिका का सजीव वर्णन किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि यद्यपि

स्त्रियाँ प्रत्यक्ष राजनीतिक शक्ति से दूर थीं, फिर भी वे परोक्ष रूप से सत्ता और निर्णयों को प्रभावित करती थीं। साथ ही, महिलाओं के बीच सहयोग, सहानुभूति और पारिवारिक एकता की भावना भी इस ग्रंथ में परिलक्षित होती है।तीसरा, इस ग्रंथ में सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का भी उल्लेख मिलता है। इसमें विवाह, उत्सव, धार्मिक आस्थाओं और परंपराओं का वर्णन है, जो उस समय के भारतीय समाज की विविधता को दर्शाता है। मुगल समाज में इस्लामी परंपराओं के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के प्रभाव भी दिखाई देते हैं, जिससे एक मिश्रित सांस्कृतिक स्वरूप उभरता है।इसके अतिरिक्त, "हुमायूँनामा" में आम जनता का वर्णन अपेक्षाकृत कम है, क्योंकि यह मुख्यतः शाही जीवन पर केंद्रित है। फिर भी, युद्ध, यात्राओं और निर्वासन के प्रसंगों के माध्यम से सामान्य जनजीवन की झलक मिलती है। कठिन परिस्थितियों में लोगों की जीवनशैली और संघर्ष भी अप्रत्यक्ष रूप से सामने आते हैं।"हुमायूँनामा" भारतीय समाज का एक सीमित लेकिन महत्वपूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है[6]। यह ग्रंथ विशेष रूप से मुगल शाही परिवार और उच्च वर्ग के जीवन को उजागर करता है, साथ ही स्त्रियों की भूमिका और सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराओं को समझने में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार, "हुमायूँनामा" न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक अध्ययन के लिए भी एक अमूल्य स्रोत है।

निष्कर्ष:

गुलबदन बेगम द्वारा रचित 'हुमायूँनामा' मुग़ल इतिहास-लेखन में एक विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि यह शाही घराने के भीतर एक महिला के दृष्टिकोण से गढ़ा गया एक दुर्लभ वृत्तांत है। एक ऐतिहासिक ग्रंथ के रूप में, यह दरबारी इतिवृत्तों के पारंपरिक ढाँचे से ऊपर उठकर हुमायूँ और उनके समय की सामाजिक-राजनीतिक वास्तविकताओं का अधिक अंतरंग और मानवीय चित्रण प्रस्तुत करता है। इस कृति की शक्ति इसकी उस क्षमता में निहित है, जिसके द्वारा यह उन भावनात्मक गहराइयों, पारिवारिक संबंधों और रोज़मर्रा के अनुभवों को समेट लेती है, जिन्हें अक्सर औपचारिक ऐतिहासिक अभिलेखों में नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है।यद्यपि 'हुमायूँनामा' में कालानुक्रमिक क्रम की कठोरता और विस्तृत राजनीतिक विश्लेषण का अभाव हो सकता है, फिर भी एक प्राथमिक स्रोत के रूप में इसका महत्व निर्विवाद है। यह लिंग-भूमिकाओं, दरबारी रीति-रिवाजों और मुग़ल अभिजात वर्ग के जीवंत अनुभवों की अंतर्दृष्टि प्रदान करके आधिकारिक इतिहासों का पूरक बनता है। स्मृति और व्यक्तिगत संलिप्तता द्वारा गढ़े गए इस वृत्तांत की व्यक्तिपरक प्रकृति, ऐतिहासिक सटीकता के संबंध में कुछ प्रश्न अवश्य उठाती है; तथापि, यह साथ ही साथ हमारे बोध को समृद्ध भी करती है, क्योंकि यह दृष्टिकोणों की ऐसी परतें जोड़ती है जो अक्सर पारंपरिक वृत्तांतों में अनुपस्थित रहती हैं।'हुमायूँनामा' का मूल्यांकन केवल इतिहास-लेखन के पारंपरिक मानकों के आधार पर ही नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि ऐतिहासिक ज्ञान में इसके अद्वितीय योगदान के लिए इसकी सराहना की जानी चाहिए। यह एक ऐसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ के रूप में कार्य करता है जो राजनीतिक इतिहास और सामाजिक इतिहास के बीच की खाई को पाटता है, और अतीत के पुनर्निर्माण में वैकल्पिक स्वरों के महत्व को रेखांकित करता है। अंततः, यह ग्रंथ मुग़ल इतिहास की अधिक व्यापक और संतुलित समझ प्राप्त करने में समावेशी इतिहास-लेखन के महत्व पर ज़ोर देता है।

संदर्भ :

[1] बेगम, जी. (1902). हुमायूँ-नामा (ए. एस. बेवरिज, अनुवाद). लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृष्ठ 45–120.

[2] बेवरिज, ए. एस. (1902). हुमायूँ-नामा का परिचय. लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृष्ठ i–xxxv.

[3] अबुल फज़ल. (1873). अकबरनामा (खंड 1). कलकत्ता: एशियाटिक सोसाइटी, पृष्ठ 210–275.

[4] सतीश चंद्र. (2007). मध्यकालीन भारत: सल्तनत से मुगलों तक (1526–1748). नई दिल्ली: हर-आनंद पब्लिकेशन्स, पृष्ठ 98–110.

[5] आर. सी. मजूमदार. (2004). मुगल साम्राज्य. मुंबई: भारतीय विद्या भवन, पृष्ठ 134–150.

[6] एनेट बेवरिज. (1922). गुलबदन बेगम: एक जीवनीपरक अध्ययन. लंदन: रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, पृष्ठ 30–56.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

Floristic Diversity and Economic Significance of Mangroves and Associated Plants in Shoal Bay, South Andaman, India

Shareen Shahid* **S. Jayakumar†**

Abstract

Mangrove ecosystems of the Andaman and Nicobar Islands represent one of the most biologically diverse coastal habitats in India. However, detailed floristic documentation of many mangrove locations remains limited due to the geographical isolation of the archipelago. The present study provides a systematic floristic assessment of mangroves and associated plant species in Shoal Bay, South Andaman (11°40'N, 92°45'E). Field surveys conducted across approximately 7 km² recorded ***17 true mangrove species belonging to 8 genera and 5 families****, along with* ***28 mangrove-associated plant species*** *representing diverse taxonomic groups.*

Among the mangrove families, ***Rhizophoraceae*** *was dominant with seven species, followed by* ***Acanthaceae*** *(four species) and* ***Lythraceae*** *(three species). Distinct ecological zonation patterns were observed across the intertidal gradient. Rhizophora mucronata and R. apiculata dominated the seaward zones, whereas Ceriops tagal and Bruguiera species occurred in intermediate zones. Inland areas were primarily occupied by Avicennia marina and A. officinalis.*

The associated flora included ferns (Acrostichum spp.), orchids (Cymbidium aloifolium, Eria bractescens), and coastal strand species such as Ipomoea pes-caprae and Pandanus tectorius. Ethnobotanical analysis indicated that several species possess economic importance, including ***medicinal (11 species), timber (9 species), ornamental (8 species), and fodder (7 species) applications****.*

Despite their ecological and economic value, mangrove ecosystems in the Andaman Islands are increasingly threatened by anthropogenic pressures such as aquaculture expansion, habitat conversion, and climate-induced sea-level rise. The floristic inventory presented in this study provides baseline data essential for biodiversity conservation, ecological monitoring, and sustainable management of mangrove ecosystems in the Andaman region.

Keywords: *Mangrove biodiversity, floristic survey, Shoal Bay, Andaman Islands, coastal vegetation, economic botany, conservation ecology*

* **Department of Botany, Jawaharlal Nehru Rajkeeya Mahavidyalaya Port Blair (Sri Vijaya Puram), Andaman and Nicobar Islands, India**

† **Andaman College, Chakkargaon, South Andaman, A&N Islands**

Introduction

Global and Regional Context of Mangrove Ecosystems

Mangrove ecosystems represent one of the most productive and ecologically significant coastal habitats globally, occupying the intertidal zones of tropical and subtropical coastlines across 123 countries [2]. Despite covering less than 1% of tropical forests worldwide, mangroves sequester carbon at rates 3-5 times higher than terrestrial forests, storing approximately 20 petagrams of carbon globally and contributing significantly to climate change mitigation[3][4]. These specialized ecosystems provide critical services including coastal protection against storm surges and tsunamis, maintenance of fisheries through nursery habitat provision, water quality regulation, and support for millions of coastal livelihoods[5][6].

The Indo-Pacific region harbors the highest mangrove biodiversity globally, with Southeast Asia alone containing approximately 50,000 km² of mangrove cover—one-third of the world's total mangrove extent [2]. Within this biogeographic zone, the Andaman and Nicobar Islands represent a unique biodiversity hotspot, hosting 38 true mangrove species and over 50 associated flora species, making it one of India's most diverse mangrove regions [7] [8].

The Andaman and Nicobar Archipelago: A Biodiversity Haven

The Andaman and Nicobar Islands comprise India's largest archipelago, consisting of 572 islands spanning approximately 8,249 km² across the Bay of Bengal. These islands are characterized by exceptional biodiversity, with 106 designated protected areas including wildlife sanctuaries, national parks, and a UNESCO biosphere reserve [9]. The archipelago's isolation and varied topography have fostered high levels of endemism across multiple taxa, creating ecosystems of global conservation significance.

The islands' mangrove forests are ecologically vital, functioning as natural barriers against cyclones, tsunamis, and coastal erosion—services dramatically demonstrated during the 2004 Indian Ocean tsunami, where intact mangrove stands significantly reduced wave impact and coastal community damage [10]. These ecosystems also sustain local livelihoods by providing resources including fuel, food, medicinal plants, and supporting fisheries that currently produce 30,000 tonnes annually, representing only 12% of estimated potential [9].

However, mangrove ecosystems in the Andaman Islands face mounting threats. Over the past three decades, 47% of the archipelago's mangrove forests have suffered degradation due to anthropogenic pressures including conversion to aquaculture farms, unsustainable logging, urban expansion, and infrastructure development[1]. Climate change further exacerbates these threats through sea-level rise (1.5 mm annually from 1980-2009), increased storm frequency, and altered precipitation patterns affecting freshwater supply and sediment dynamics [1][11].

Mangrove Adaptations and Ecological Functions

Mangroves exhibit remarkable morphological and physiological adaptations enabling survival in harsh coastal environments characterized by waterlogged, hypoxic, saline soils and dynamic tidal regimes. Key adaptations include specialized root structures—pneumatophores in ***Avicennia*** and ***Sonneratia*** species for oxygen uptake, stilt roots in ***Rhizophora*** species for mechanical

stabilization, and buttress roots in *Xylocarpus* species[12][13]. Salt tolerance mechanisms involve ultrafiltration at root membranes, salt excretion through specialized leaf glands, and compartmentalization in senescent tissues [14].

These ecosystems support complex food webs, with detritus from decomposing mangrove leaves fueling both benthic and pelagic systems, contributing an estimated 3-10 g organic carbon per square meter daily to adjacent coastal waters[15]. Mangrove root systems serve as critical nursery habitats for commercially important fish species, crustaceans, and mollusks, directly linking mangrove health to regional fisheries productivity[16].

Mangrove Zonation: Ecological Niche Partitioning

Mangrove distribution typically follows distinct zonation patterns reflecting species-specific adaptations to environmental gradients including tidal inundation frequency, salinity levels, soil type, and wave energy[17][18]. In the Andaman Islands, seaward zones experiencing high salinity and frequent tidal inundation are typically dominated by ***Rhizophora*** species (**R. mucronata, R. apiculata, R. stylosa**), whose prop root systems effectively dissipate wave energy and stabilize sediments[19][20]. Inland zones with lower salinity and less frequent inundation host ***Avicennia*** species (***A. marina***, ***A. officinalis***), which utilize pneumatophores to access atmospheric oxygen in waterlogged soils[21]. Mid-zones are characterized by species including ***Ceriops tagal***, ***Bruguiera*** species, and ***Lumnitzera racemosa*****,** which tolerate moderate salinity and contribute significantly to organic matter accumulation [22].

Study Rationale and Objectives

Despite the ecological and economic importance of mangrove ecosystems in the Andaman and Nicobar Islands, comprehensive floristic documentation remains incomplete due to the region's remoteness, rugged terrain, and logistical challenges[9][23]. Taxonomic inventories are essential for understanding biodiversity patterns, assessing conservation status, and developing evidence-based management strategies. Shoal Bay in South Andaman represents a semi-urban coastal region encompassing diverse mangrove habitats, making it an ideal location for investigating floristic composition, zonation patterns, and species-specific economic applications.

This study aims to:

1. Conduct a comprehensive floristic survey documenting all mangroves and associated plant species in Shoal Bay;
2. Characterize zonation patterns and ecological relationships;
3. Assess the economic significance of documented species including medicinal, timber, ornamental, and fodder applications; and
4. Provide baseline data to inform conservation planning and sustainable management strategies for this globally significant ecosystem.

Materials and Methods

Study Area

The research was conducted in Shoal Bay and surrounding areas in South Andaman (11°40'N, 92°45'E), encompassing approximately 7 km² of coastal habitat. The study area is characterized by

semi-urban coastal zones featuring diverse mangrove ecosystems, intertidal zones, and adjacent terrestrial environments. Shoal Bay experiences a tropical climate with mean annual temperatures ranging from 23-31°C and annual rainfall of approximately 3,000 mm, concentrated during the southwest monsoon (May-September)[24].

The region exhibits complex geomorphological features including mudflats, tidal creeks, and estuarine channels that create varied microhabitats supporting diverse mangrove assemblages. Tidal amplitude ranges from 1.5-3.0 meters, creating distinct intertidal zonation patterns. Substrate composition varies from fine clay-silt sediments in protected inland areas to coarser sand-silt mixtures in seaward zones exposed to higher wave energy.

Field Survey and Specimen Collection

Field surveys were conducted during February-March 2026, covering the dry season when plant identification features including flowers and fruits are most accessible. Systematic transect surveys were established perpendicular to the coastline, traversing all zonation types from terrestrial boundaries through inland, mid-zone, and seaward mangrove communities.

All encountered plant species were documented, photographed in situ, and collected following standard botanical survey protocols [25]. For each species, data recorded included:

- GPS coordinates and habitat characteristics
- Growth form (tree, shrub, herb, climber, epiphyte)
- Phenological status (flowering, fruiting, vegetative)
- Zonation position (landward, mid-zone, seaward)
- Associated species and ecological relationships
- Local utilization patterns through community consultations

Specimens were carefully collected to include diagnostic features (leaves, flowers, fruits, bark samples) and transported to the laboratory in protective plastic covers with field labels indicating collection number, date, location, and habitat notes.

Laboratory Processing and Identification

In the laboratory, detailed morphological examinations were conducted using binocular dissection microscopes to observe fine structural features of flowers, fruits, and vegetative organs. Critical diagnostic characters including leaf venation patterns, flower structure, fruit morphology, and bark characteristics were documented through detailed descriptions and high-resolution photography.

Specimens designated for herbarium preservation were treated with a saturated solution of mercuric chloride in 95% ethyl alcohol to prevent fungal and insect damage. Poisoned specimens were then pressed between newspapers using standard plant presses, with regular newspaper changes to facilitate thorough drying over 5-7 days.

Completely dried specimens were mounted on standard herbarium sheets (42 × 28 cm) using fevicol adhesive, with additional stitching applied for secure attachment of heavy structures. Each mounted specimen received a herbarium label containing:

- Scientific name (family, genus, species, author)
- Collection number and date
- Precise locality information with GPS coordinates

- Habitat description and associated species
- Collector name
- Phenological observations

Taxonomic determinations were made primarily by consulting Parkinson's *Forest Flora of the Andaman Islands* (1923), the authoritative regional flora[26]. Critical specimens requiring verification were compared with authenticated specimens at the Botanical Survey of India (BSI) Herbarium, Port Blair. All processed specimens were deposited in the Department of Botany, Jawaharlal Nehru Rajkeeya Mahavidyalaya herbarium, with digital records submitted to institutional databases for future research accessibility.

Taxonomic Documentation and Key Construction

Species descriptions were prepared following standard taxonomic format, including nomenclatural details (scientific name, author citation, publication reference, year), detailed morphological descriptions emphasizing diagnostic features, habitat and distribution information, phonological observations, and economic uses documented through literature review and community consultations.

Artificial dichotomous keys were constructed for families, genera, and species using contrasting morphological characters readily observable in field and laboratory settings. Keys were formatted with strict dichotomies and indented structure for clarity and ease of use by researchers and field practitioners.

Economic Importance Assessment

Economic applications of documented species were assessed through multiple approaches including literature review of ethnobotanical and economic botany publications, consultation with local communities regarding traditional uses, observation of utilization patterns in coastal villages, and documentation of commercial applications where applicable. Species were categorized into use classes including medicinal, timber, ornamental, fodder, edible, and fiber-yielding plants.

Results

Floristic Composition of True Mangroves

The floristic survey documented **17 true mangrove species** representing **8 genera** and **5 families** in the Shoal Bay area (Table 1). Rhizophoraceae emerged as the dominant family with 7 species (41.2% of total), followed by Acanthaceae with 4 species (23.5%), Lythraceae with 3 species (17.6%), Meliaceae with 2 species (11.8%), and Euphorbiaceae with 1 species (5.9%).

Sl. No.	Species	Family
1	***Acanthus ebracteatus*** Vahl	Acanthaceae
2	***Acanthus ilicifolius*** L.	Acanthaceae
3	***Avicennia marina*** (Forssk.) Vierh.	Acanthaceae
4	***Avicennia officinalis*** L.	Acanthaceae
5	***Excoecaria agallocha*** L.	Euphorbiaceae
6	***Sonneratia alba*** J. Sm.	Lythraceae
7	***Sonneratia caseolaris*** (L.) Engl.	Lythraceae
8	***Sonneratia ovata*** Backer	Lythraceae

9	***Xylocarpus granatum*** J. Koenig	Meliaceae
10	***Xylocarpus mekongensis*** Pierre	Meliaceae
11	***Bruguiera gymnorrhiza*** (L.) Lam.	Rhizophoraceae
12	***Bruguiera parviflora*** (Roxb.) Wight & Arn.	Rhizophoraceae
13	***Ceriops tagal*** (Perr.) C.B. Rob.	Rhizophoraceae
14	***Rhizophora mangle*** L.	Rhizophoraceae
15	***Rhizophora mucronata*** Lam.	Rhizophoraceae
16	***Rhizophora apiculata*** Blume	Rhizophoraceae
17	***Rhizophora stylosa*** Griff.	Rhizophoraceae

Table 1: True mangrove species documented in Shoal Bay, South Andaman

The genus ***Rhizophora*** showed the highest species richness with 5 species, followed by ***Avicennia*** and ***Sonneratia*** with 2-3 species each. This diversity reflects the ecological complexity of the study area, encompassing varied tidal regimes, salinity gradients, and substrate types that support niche differentiation among congeners.

Mangrove Zonation Patterns

Distinct zonation patterns were observed across the intertidal gradient, reflecting species-specific adaptations to environmental stressors (Figure 1).

Seaward Zone: This zone, experiencing highest salinity (28-35 ppt) and most frequent tidal inundation (twice daily), was dominated by ***Rhizophora mucronata***, ***R. apiculata***, and ***R. stylosa***. These species form dense stands characterized by extensive stilt root systems that effectively dissipate wave energy and trap sediments. ***Bruguiera parviflora*** and ***Ceriops tagal*** occur as subdominants in this zone, particularly in areas with slightly reduced wave exposure.

Mid-Zone: Characterized by moderate salinity (20-28 ppt) and less frequent inundation, this transitional zone supports diverse assemblages including ***Bruguiera gymnorrhiza***, ***Ceriops tagal***, ***Xylocarpus granatum***, and ***Excoecaria agallocha***. Species in this zone typically exhibit knee roots or buttress root systems adapted to periodically waterlogged conditions.

Landward Zone: The inland margin, with lowest salinity (15-22 ppt) and least frequent tidal influence, is dominated by ***Avicennia marina*** and ***A. officinalis***, characterized by extensive pneumatophore systems. ***Sonneratia alba*** and ***S. caseolaris*** occur along creek margins in this zone, where their conical pneumatophores facilitate oxygen acquisition in poorly aerated soils. ***Acanthus*** species (***A. ilicifolius***, ***A. ebracteatus***) form herbaceous understory communities in sheltered landward areas.

This zonation pattern reflects the classic paradigm of mangrove distribution along environmental gradients, with stress-tolerant species (***Rhizophora*** spp.) dominating high-stress seaward zones and more competitive species (***Avicennia*** spp.) occupying lower-stress inland positions[17][27].

Mangrove-Associated Plant Flora

The survey documented **28 mangrove-associated plant species** representing diverse taxonomic groups and growth forms (Table 2). This associated flora significantly enhances the structural complexity and ecological functionality of the mangrove ecosystem.

Sl. No.	Species	Family
1	***Acrostichum aureum*** L.	Dipteridaceae
2	***Acrostichum speciosum*** Willd.	Dipteridaceae
3	***Caesalpinia bonduc*** (L.) Roxb.	Fabaceae
4	***Casuarina equisetifolia*** L.	Casuarinaceae
5	***Clerodendrum inerme*** (L.) Gaertn.	Lamiaceae
6	***Crinum defixum*** Ker Gawl.	Amaryllidaceae
7	***Cymbidium aloifolium*** (L.) Sw.	Orchidaceae
8	***Dalbergia pinnata*** (Lour.) Prain	Fabaceae
9	***Derris trifoliata*** Lour.	Fabaceae
10	***Drynaria quercifolia*** (L.) J. Sm.	Polypodiaceae
11	***Eria bractescens*** Lindl.	Orchidaceae
12	***Ficus microcarpa*** L.f.	Moraceae
13	***Flagellaria indica*** L.	Flagellariaceae
14	***Halophila ovalis*** (R. Br.) Hook.f.	Hydrocharitaceae
15	***Ipomoea pes-caprae*** (L.) R. Br.	Convolvulaceae
16	***Ipomoea sepiaria*** Roxb.	Convolvulaceae
17	***Manilkara littoralis*** (Kurz) Dubard	Sapotaceae
18	***Mallotus repandus*** (Willd.) Müll. Arg.	Euphorbiaceae
19	***Pandanus tectorius*** Parkinson	Pandanaceae
20	***Pongamia pinnata*** (L.) Pierre	Fabaceae
21	***Sarcolobus carinatus*** Wall.	Apocynaceae
22	***Suaeda monoica*** Forssk. ex J.F. Gmel.	Chenopodiaceae
23	***Sargassum*** sp.	Sargassaceae
24	***Scaevola sericea*** Vahl	Goodeniaceae
25	***Sesuvium portulacastrum*** L.	Aizoaceae
26	***Syzygium samarangense*** (Blume) Merr. & L.M. Perry	Myrtaceae
27	***Vitex trifolia*** L.	Lamiaceae
28	***Wedelia biflora*** (L.) DC.	Asteraceae

Table 2: Mangrove-associated plant species in Shoal Bay, South Andaman

Fabaceae emerged as the most species-rich family among associates with 4 species, indicating nitrogen-fixing contributions to ecosystem nutrient cycling. Notable diversity was also observed in ferns (Dipteridaceae, Polypodiaceae), orchids (Orchidaceae), and coastal strand species (Convolvulaceae, Goodeniaceae).

Ecological Guilds Among Associates:

Epiphytic Species: The mangrove canopy supports diverse epiphytes including the mangrove fern ***Acrostichum aureum*** (which also grows terrestrially), orchids (***Cymbidium aloifolium***, ***Eria bractescens***), and the oak-leaf fern ***Drynaria quercifolia***. These epiphytes contribute to vertical stratification and provide habitat for arboreal fauna.

Climbing Species: Lianas including ***Derris trifoliata***, ***Caesalpinia bonduc***, ***Flagellaria indica***, and ***Sarcolobus carinatus*** create structural connectivity between canopy layers and increase three-dimensional habitat complexity.

Coastal Strand Species: Beach margins adjacent to mangroves host specialized halophytic and salt-tolerant species including ***Ipomoea pes-caprae*** (beach morning glory), ***Scaevola sericea*** (beach naupaka), ***Sesuvium portulacastrum*** (sea purslane), and ***Casuarina equisetifolia*** (coastal she-oak), which provide transitional habitat between terrestrial and mangrove environments.
Seagrass: The presence of ***Halophila ovalis*** in subtidal areas adjacent to mangroves indicates connectivity between mangrove, seagrass, and coral reef ecosystems—a triad of coastal habitats with important ecological synergies[28].

Economic Importance of Mangrove Species

Assessment of utilization patterns revealed multiple economic applications across documented species (Table 3), emphasizing their importance to local livelihoods and regional economies.

Use Category	Number of Species (Mangrove/Associates)
Medicinal	4 / 10
Timber	9 / 4
Ornamental	4 / 7
Fodder	2 / 7
Edible	2 / 5
Fiber	2 / 0

Table 3: Economic use categories and species counts

Timber-Yielding Species: Nine mangrove species provide valuable timber for construction, boat-building, furniture, and charcoal production. ***Rhizophora*** species (*R.* ***mucronata***, ***R. apiculata***, ***R. mangle***, ***R. stylosa***) produce exceptionally durable wood resistant to marine borers, making them prized for marine construction. ***Avicennia*** species yield hard, dense wood suitable for poles and fuelwood. ***Xylocarpus granatum*** and ***X. mekongensis*** produce premium timber for furniture and boat construction[29].

Medicinal Plants: Traditional medicine systems utilize multiple species. ***Acanthus ilicifolius*** treats rheumatism, skin diseases, and respiratory ailments. ***Avicennia*** species have antimicrobial and anti-inflammatory properties. ***Excoecaria agallocha***, despite containing toxic latex, has medicinal applications when properly processed. Among associates, ***Derris trifoliata***, ***Caesalpinia bonduc***, ***Sesuvium portulacastrum***, and ***Wedelia biflora*** possess documented therapeutic properties[30].

Ornamental Species: Several species are cultivated for landscaping and ornamental purposes. ***Acanthus*** species provide attractive foliage and architectural interest. ***Sonneratia*** species produce showy nocturnal flowers attractive to bats. Among associates, orchids (***Cymbidium aloifolium***, ***Eria bractescens***), ***Clerodendrum inerme***, ***Crinum defixum***, and ***Scaevola sericea*** have horticultural value[31].

Fodder Plants: ***Acanthus ilicifolius*** and young leaves of ***Bruguiera gymnorrhiza*** serve as livestock fodder in coastal regions. Among associates, several species including ***Acrostichum***

aureum, ***Caesalpinia bonduc***, ***Casuarina equisetifolia***, and ***Ipomoea*** species provide supplementary fodder[32].

Edible Species: ***Sonneratia caseolaris*** produces edible fruits used in local cuisines for chutneys and preserves. Young leaves of ***Excoecaria agallocha*** are consumed in some communities, though caution is required due to toxicity. Among associates, ***Pandanus tectorius***, ***Pongamia pinnata***, ***Syzygium samarangense***, and ***Sargassum*** sp. have food applications[33].

Fiber and Craft Materials: ***Acanthus ebracteatus*** and ***Bruguiera gymnorrhiza*** provide fibers for rope-making, mat-weaving, and traditional crafts, supporting cottage industries in coastal communities[34].

Discussion

Floristic Diversity in Regional and Global Context

The documentation of 17 true mangrove species in Shoal Bay represents substantial diversity compared to global mangrove flora, which comprises approximately 70-80 species worldwide[35]. This diversity reflects the study area's position within the Indo-West Pacific biogeographic zone, which hosts the highest global mangrove diversity due to its equatorial location, complex coastal geomorphology, and evolutionary history[36].

The dominance of Rhizophoraceae (41.2% of species) aligns with patterns observed throughout Southeast Asian mangrove ecosystems, where this family typically constitutes the structural foundation of seaward communities[37]. The presence of all four ***Rhizophora*** species documented from the Andaman archipelago (***R. mucronata***, ***R. apiculata***, ***R. stylosa***, ***R. mangle***) indicates the ecological suitability of Shoal Bay for supporting complete species assemblages within genera, suggesting relatively intact habitat quality despite anthropogenic pressures.

The significant representation of Acanthaceae (23.5% of species) reflects the importance of ***Avicennia*** and ***Acanthus*** genera in Indo-Pacific mangroves, where these taxa occupy critical ecological niches in inland zones and forest margins[38]. The co-occurrence of multiple congeners (***A. marina*** and ***A. officinalis***; ***Sonneratia alba***, ***S. caseolaris***, and ***S. ovata***) demonstrates niche partitioning along fine-scale environmental gradients, a phenomenon crucial for maintaining high local diversity[39].

Ecological Significance of Zonation Patterns

The distinct zonation observed in Shoal Bay exemplifies fundamental ecological principles governing mangrove distribution: species-specific physiological tolerances to environmental stressors (salinity, inundation, wave energy) and competitive interactions determine community structure along environmental gradients[17][27]. The seaward dominance of ***Rhizophora*** species reflects their exceptional stress tolerance, particularly their efficient salt exclusion mechanisms and structural adaptations (stilt roots) that enable establishment in high-energy environments[40].

The mid-zone assemblage, featuring ***Bruguiera***, ***Ceriops***, and ***Xylocarpus*** species, represents a transitional community where both physiological stress tolerance and competitive ability influence species composition[41]. These species typically exhibit intermediate salt tolerance and structural characteristics adapted to moderate disturbance regimes.

The landward dominance of ***Avicennia*** species reflects their competitive superiority in lower-stress environments, combined with specialized pneumatophore systems that efficiently oxygenate roots in waterlogged, reducing soils[21]. This zonation pattern has important implications for ecosystem resilience: intact zonation provides redundancy in ecological functions, ensuring that critical services (wave attenuation, sediment stabilization, organic carbon production) persist across varying tidal and disturbance regimes[42].

Biodiversity Enhancement Through Associated Flora

The 28 documented mangrove-associated species significantly enhance ecosystem biodiversity, structural complexity, and functional diversity beyond contributions of true mangroves alone. This associated flora fulfills critical ecological roles including vertical stratification through epiphytes, structural connectivity via climbing plants, nitrogen fixation through legumes, and transitional habitat provision along the terrestrial-marine ecotone[43].

The presence of specialized groups merits particular attention. Mangrove ferns (***Acrostichum aureum*, *A. speciosum***) accumulate heavy metals and may function in biogeochemical cycling[44]. Epiphytic orchids contribute to regional biodiversity while providing resources for pollinators[45]. The seagrass ***Halophila ovalis*** indicates connectivity between mangrove and adjacent seagrass meadows, facilitating fauna movement and organic matter exchange between these linked ecosystems[28].

This associated flora also demonstrates the importance of maintaining habitat heterogeneity in mangrove conservation planning. Management strategies focusing exclusively on true mangrove species risk overlooking significant biodiversity components and ecosystem functions provided by associated taxa[46].

Economic Values and Sustainable Utilization

The documented multiple-use characteristics of Shoal Bay's flora underscore the critical linkage between biodiversity conservation and human well-being in coastal regions. The identification of 13 mangrove species and 21 associated species with direct economic applications (medicinal, timber, ornamental, fodder, edible) demonstrates the tangible benefits these ecosystems provide to local communities[47].

However, this economic value creates management challenges: over-exploitation for timber, medicinal plants, and other resources can degrade ecosystem integrity, ultimately diminishing the very resources communities depend upon[48]. Sustainable management requires balancing utilization with conservation through approaches including:

1. Regulating timber harvest intensity and implementing rotation systems that maintain forest structure
2. Promoting cultivation of economically valuable species in coastal plantations to reduce pressure on natural stands
3. Developing value-added products (traditional medicines, handicrafts, ecotourism) that incentivize conservation
4. Integrating traditional ecological knowledge with scientific management to optimize sustainable resource use[49]

The documentation of economic uses also provides baselines for monitoring over-exploitation. Species heavily utilized for timber (***Rhizophora*** spp., ***Xylocarpus*** spp.) or medicinal purposes (***Acanthus ilicifolius*, *Excoecaria agallocha***) should be prioritized for population monitoring and, where necessary, harvest regulation.

Conservation Challenges and Climate Change Vulnerability

The 47% degradation of Andaman mangroves over three decades represents an alarming trend that threatens both biodiversity and coastal community resilience[1]. Primary degradation drivers include land conversion for aquaculture (particularly shrimp farming), unsustainable logging, urban expansion associated with population growth and tourism development, infrastructure construction (roads, ports), and pollution from coastal settlements[50].

Climate change imposes additional stressors through multiple mechanisms. Sea-level rise (1.5 mm annually documented 1980-2009, with acceleration projected)[1] threatens mangroves through increased inundation stress and coastal squeeze—wherein landward migration is prevented by human development or steep topography[51]. Altered precipitation patterns affect freshwater inputs critical for maintaining salinity gradients, while increased storm intensity causes mechanical damage and sediment disruption [11].

The IUCN Red List of Ecosystems assessment (2024) classifies more than half of the world's mangrove ecosystems as at risk of collapse by 2050, with particular threats in regions experiencing combined pressures from climate change and anthropogenic land use change[52]. The Andaman mangroves face precisely these combined threats, emphasizing the urgency of implementing comprehensive conservation strategies.

Management Recommendations and Future Research Needs

Effective conservation of Shoal Bay's mangrove biodiversity requires integrated strategies addressing multiple threats simultaneously:

Immediate Priorities:

- Establish permanent monitoring plots to track population trends for key indicator species
- Implement strict regulations preventing further conversion of mangrove habitat to aquaculture or other land uses
- Develop and enforce sustainable harvest guidelines for economically important species
- Restore degraded areas through evidence-based replanting using locally appropriate species assemblages reflecting natural zonation patterns

Long-term Strategies:

- Integrate traditional ecological knowledge held by indigenous communities (Great Andamanese, Jarawas, Onges, Nicobarese) with scientific management approaches[53]
- Establish community-based conservation programs that provide alternative livelihoods reducing pressure on natural resources

- Implement climate adaptation strategies including protection of landward migration corridors to accommodate sea-level rise
- Develop comprehensive spatial planning that maintains connectivity between mangrove patches and adjacent coastal ecosystems (seagrass beds, coral reefs)

Research Gaps:

Despite this comprehensive floristic inventory, several knowledge gaps limit effective management:

- Genetic diversity assessments within species populations to inform restoration source selection and maintain evolutionary potential[54]
- Carbon sequestration quantification for Andaman mangroves to support climate mitigation policies and carbon credit schemes
- Species-specific responses to climate stressors (elevated temperature, altered salinity regimes, extreme events) to project future distribution shifts
- Fauna-flora interactions, particularly pollinator systems, seed dispersal mechanisms, and trophic relationships linking mangroves to adjacent marine ecosystems
- Economic valuation studies quantifying ecosystem services (coastal protection, fisheries support, carbon storage) to inform policy decisions[55]

Conclusion

This comprehensive floristic study documents substantial biodiversity in Shoal Bay's mangrove ecosystem, with 17 true mangrove species and 28 associated plant species representing diverse taxonomic groups and ecological guilds. The observed zonation patterns demonstrate ecological principles governing species distribution along environmental gradients, while the documented economic applications underscore the critical linkage between biodiversity and coastal livelihoods.

However, these ecosystems face severe threats from anthropogenic pressures and climate change, with 47% of Andaman mangroves already degraded over recent decades. The global assessment classifying more than half of mangrove ecosystems as at risk of collapse by 2050 emphasizes the urgency of conservation action.

Effective management requires integrated approaches combining scientific monitoring, sustainable resource use regulations, habitat restoration, community engagement, and climate adaptation strategies. By implementing evidence-based conservation measures informed by comprehensive floristic inventories such as this study, we can preserve these globally significant ecosystems and maintain their critical services to both biodiversity and human communities for future generations.

The Andaman and Nicobar Islands' mangroves represent a microcosm of global conservation challenges: balancing biodiversity protection, traditional resource use rights, economic development pressures, and climate change adaptation. Success in conserving these ecosystems can provide models for coastal conservation throughout the Indo-Pacific region and globally, making the preservation of Shoal Bay's mangrove biodiversity not merely a local priority but a contribution to global sustainability.

References

[1] Kumar, T., Mandal, A., Dutta, D., Nagaraja, R., & Kumar, A. (2019). Future mangrove suitability assessment of Andaman to strengthen sustainable development. *Journal of Cleaner Production*, 234, 597-614. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2019.06.257

[2] Global Mangrove Alliance. (2020). State of the World's Mangroves 2024. International Union for Conservation of Nature. https://www.mangrovealliance.org

[3] Alongi, D. M. (2014). Carbon cycling and storage in mangrove forests. *Annual Review of Marine Science*, 6(1), 195-219. https://doi.org/10.1146/annurev-marine-010213-135020

[4] Donato, D. C., Kauffman, J. B., Murdiyarso, D., Kurnianto, S., Stidham, M., & Kanninen, M. (2011). Mangroves among the most carbon-rich forests in the tropics. *Nature Geoscience*, 4(5), 293-297.

[5] Spalding, M., Kainuma, M., & Collins, L. (2010). *World Atlas of Mangroves*. Earthscan, London.

[6] Barbier, E. B., Hacker, S. D., Kennedy, C., Koch, E. W., Stier, A. C., & Silliman, B. R. (2011). The value of estuarine and coastal ecosystem services. *Ecological Monographs*, 81(2), 169-193.

[7] Kathiresan, K., & Rajendran, N. (2005). Coastal mangrove forests mitigated tsunami. *Estuarine, Coastal and Shelf Science*, 65(3), 601-606.

[8] Ragavan, P., Ravichandran, K., Mohan, P. M., Saxena, A., & Jayaraj, R. S. C. (2016). Taxonomy and distribution of species of *Rhizophora* in India. *Feddes Repertorium*, 127(1), 15-24.

[9] Dagar, J. C., Mongia, A. D., & Bandyopadhyay, A. K. (1991). *Mangroves of Andaman and Nicobar Islands*. Oxford & IBH Publishing, New Delhi.

[10] Danielsen, F., Sørensen, M. K., Olwig, M. F., Selvam, V., Parish, F., Burgess, N. D., et al. (2005). The Asian tsunami: A protective role for coastal vegetation. *Science*, 310(5748), 643.

[11] IUCN. (2024). The first-ever global assessment for the IUCN Red List of Ecosystems reveals that more than half of the world's mangroves are at risk of collapse by 2050. International Union for Conservation of Nature. https://iucn.org/news/202405

[12] Tomlinson, P. B. (1986). *The Botany of Mangroves*. Cambridge University Press, Cambridge.

[13] Saenger, P. (2002). *Mangrove Ecology, Silviculture and Conservation*. Kluwer Academic Publishers, Dordrecht.

[14] Ball, M. C. (1988). Ecophysiology of mangroves. *Trees*, 2(3), 129-142.

[15] Odum, W. E., & Heald, E. J. (1975). The detritus-based food web of an estuarine mangrove community. In L. E. Cronin (Ed.), *Estuarine Research* (Vol. 1, pp. 265-286). Academic Press.

[16] Nagelkerken, I., Blaber, S. J. M., Bouillon, S., Green, P., Haywood, M., Kirton, L. G., et al. (2008). The habitat function of mangroves for terrestrial and marine fauna: A review. *Aquatic Botany*, 89(2), 155-185.

[17] Duke, N. C., Ball, M. C., & Ellison, J. C. (1998). Factors influencing biodiversity and distributional gradients in mangroves. *Global Ecology and Biogeography Letters*, 7(1), 27-47.

[18] Macnae, W. (1968). A general account of the fauna and flora of mangrove swamps and forests in the Indo-West-Pacific region. *Advances in Marine Biology*, 6, 73-270.

[19] Walsh, G. E. (1974). Mangroves: A review. In R. J. Reimold & W. H. Queen (Eds.), *Ecology of Halophytes* (pp. 51-174). Academic Press, New York.

[20] Ragavan, P., Saxena, A., Mohan, P. M., & Ravichandran, K. (2019). Genetic connectivity and diversity of *Rhizophora* species in the Andaman and Nicobar Islands. *Aquatic Botany*, 155, 58-65.

[21] Rajendran, N., & Kathiresan, K. (2007). Microbial flora associated with submerged mangrove leaf litter in India. *Revista de Biologia Tropical*, 55(2), 393-400.

[22] Naskar, K. (2004). *Manual of Indian Mangroves*. Daya Publishing House, Delhi.

[23] Sahany, K. C. (1987). Mangrove forests of the Andaman and Nicobar Islands. In *Proceedings of Mangrove Symposium*, Calcutta, October 16-19, 1987 (pp. 114-123).

[24] Sewell, R. B. S. (1922). The temperature and salinity of the surface waters of the Bay of Bengal and Andaman Sea with reference to submarine topography. *Records of the Indian Museum*, 24, 169-178.

[25] Jain, S. K., & Rao, R. R. (1977). *A Handbook of Field and Herbarium Methods*. Today & Tomorrow's Printers and Publishers, New Delhi.

[26] Parkinson, C. E. (1923). *A Forest Flora of the Andaman Islands*. Government of India Central Publication Branch, Shimla.

[27] Dahdouh-Guebas, F., Jayatissa, L. P., Di Nitto, D., Bosire, J. O., Lo Seen, D., & Koedam, N. (2005). How effective were mangroves as a defence against the recent tsunami? *Current Biology*, 15(12), R443-R447.

[28] Unsworth, R. K. F., Nordlund, L. M., & Cullen-Unsworth, L. C. (2019). Seagrass meadows support global fisheries production. *Conservation Letters*, 12(1), e12566.

[29] Giesen, W., Wulffraat, S., Zieren, M., & Scholten, L. (2006). *Mangrove Guidebook for Southeast Asia*. FAO Regional Office for Asia and the Pacific, Bangkok.

[30] Bandaranayake, W. M. (1998). Traditional and medicinal uses of mangroves. *Mangroves and Salt Marshes*, 2(3), 133-148.

[31] Duke, J. A., & Wain, K. K. (1981). *Medicinal Plants of the World*. Computer Index with More Than 85,000 Entries. Longman, Harlow.

[32] Primavera, J. H. (2000). Development and conservation of Philippine mangroves: Institutional issues. *Ecological Economics*, 35(1), 91-106.

[33] Agoramoorthy, G., Chen, F. A., & Hsu, M. J. (2007). Threat of heavy metal pollution in halophytic and mangrove plants of Tamil Nadu, India. *Environmental Pollution*, 155(2), 320-326.

[34] FAO. (1994). *Mangrove Forest Management Guidelines*. FAO Forestry Paper 117. Food and Agriculture Organization, Rome.

[35] Duke, N. C. (2016). Oil spill impacts on mangroves: Recommendations for operational planning and action based on a global review. *Marine Pollution Bulletin*, 109(2), 700-715.

[36] Ellison, A. M., Farnsworth, E. J., & Merkt, R. E. (1999). Origins of mangrove ecosystems and the mangrove biodiversity anomaly. *Global Ecology and Biogeography*, 8(2), 95-115.

[37] Duke, N. C., Lo, E. Y. Y., & Sun, M. (2002). Global distribution and genetic discontinuities of mangroves—emerging patterns in the evolution of Rhizophora. *Trees*, 16(2-3), 65-79.

[38] Li, Y., Duke, N. C., Yang, Y., Zhu, Y., Jin, A., Huang, J., et al. (2019). Phylogeographic structure in *Avicennia marina* populations across the Indo-West Pacific region. *Estuarine, Coastal and Shelf Science*, 225, 106235.

[39] Clarke, P. J., & Kerrigan, R. A. (2000). Do forest gaps influence the population structure and species composition of mangrove stands in northern Australia? *Biotropica*, 32(4), 642-652.

[40] Krauss, K. W., Lovelock, C. E., McKee, K. L., López-Hoffman, L., Ewe, S. M. L., & Sousa, W. P. (2008). Environmental drivers in mangrove establishment and early development: A review. *Aquatic Botany*, 89(2), 105-127.

[41] Ball, M. C., & Pidsley, S. M. (1995). Growth responses to salinity in relation to distribution of two mangrove species, *Sonneratia alba* and *S. lanceolata*, in northern Australia. *Functional Ecology*, 9(1), 77-85.

[42] McLeod, E., Chmura, G. L., Bouillon, S., Salm, R., Björk, M., Duarte, C. M., et al. (2011). A blueprint for blue carbon: Toward an improved understanding of the role of vegetated coastal habitats in sequestering CO_2. *Frontiers in Ecology and the Environment*, 9(10), 552-560.

[43] Feller, I. C., Lovelock, C. E., Berger, U., McKee, K. L., Joye, S. B., & Ball, M. C. (2010). Biocomplexity in mangrove ecosystems. *Annual Review of Marine Science*, 2, 395-417.

[44] MacFarlane, G. R., & Burchett, M. D. (2000). Cellular distribution of copper, lead and zinc in the grey mangrove *Avicennia marina* (Forsk.) Vierh. *Aquatic Botany*, 68(1), 45-59.

[45] Zotz, G., & Vollrath, B. (2003). The epiphyte vegetation of the palm *Socratea exorrhiza*—correlations with tree size, tree age and bryophyte cover. *Journal of Tropical Ecology*, 19(1), 81-90.

[46] Ewel, K. C., Twilley, R. R., & Ong, J. E. (1998). Different kinds of mangrove forests provide different goods and services. *Global Ecology and Biogeography Letters*, 7(1), 83-94.

[47] Walters, B. B., Rönnbäck, P., Kovacs, J. M., Crona, B., Hussain, S. A., Badola, R., et al. (2008). Ethnobiology, socio-economics and management of mangrove forests: A review. *Aquatic Botany*, 89(2), 220-236.

[48] Barbier, E. B. (2016). The protective service of mangrove ecosystems: A review of valuation methods. *Marine Pollution Bulletin*, 109(2), 676-681.

[49] Berkes, F., Colding, J., & Folke, C. (2000). Rediscovery of traditional ecological knowledge as adaptive management. *Ecological Applications*, 10(5), 1251-1262.

[50] Valiela, I., Bowen, J. L., & York, J. K. (2001). Mangrove forests: One of the world's threatened major tropical environments. *BioScience*, 51(10), 807-815.

[51] Saintilan, N., Wilson, N. C., Rogers, K., Rajkaran, A., & Krauss, K. W. (2014). Mangrove expansion and salt marsh decline at mangrove poleward limits. *Global Change Biology*, 20(1), 147-157.

[52] Keith, D. A., Ferrer-Paris, J. R., Nicholson, E., & Kingsford, R. T. (Eds.). (2020). *The IUCN Global Ecosystem Typology 2.0: Descriptive Profiles for Biomes and Ecosystem Functional Groups*. IUCN, Gland, Switzerland.

[53] Singh, V. P., Garge, A., Pathak, S. M., & Mall, L. P. (1987). Pattern and process in mangrove forests of the Andaman Islands. *Vegetatio*, 71(3), 185-188.

[54] Sandoval-Castro, E., Muñiz-Salazar, R., Enríquez-Paredes, L. M., Riosmena-Rodríguez, R., Dodd, R. S., Tovilla-Hernández, C., et al. (2012). Genetic population structure of red mangrove (*Rhizophora mangle* L.) along the northwestern coast of Mexico. *Aquatic Botany*, 99, 20-26.

[55] Costanza, R., de Groot, R., Sutton, P., van der Ploeg, S., Anderson, S. J., Kubiszewski, I., et al. (2014). Changes in the global value of ecosystem services. *Global Environmental Change*, 26, 152-158.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

पाण्डो जनजाति कि सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान

रितेश कुमार बंजारे* **डॉ. अजय कुमार सिंह†**
riteshbanjare00@gmail.com **शोध निर्देशक**

सारांश

छत्तीसगढ़ राज्य के भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर उत्तर आदिवासी क्षेत्र के सरगुजा संभाग की पांडो समुदाय एक प्रमुख जनजाति है। पांडो जनजाति पूर्व में बेवरा कृषि करने वाली जनजाति मानी जाती है, आर्थिक जीवन, सामाजिक तथा आर्थिक विकास के आधार पर यह समुदाय आदिम कृषक, शिकारी, खाद्य संकलन व अविकसित जनजातियों के समूह में आती है। पांडो जनजाति राज्य के सरगुजा जिले के अंबिकापुर, लखनपुर, उदयपुर, सूरजपुर जिले के सूरजपुर, भैयाथान, ओड़गी, रामानजुनगर, प्रेमनगर, प्रतापपुर एवं बलरामपुर-रामानुजगंज जिले के वाड्रफनगर एवं रामचन्द्रपुर विकास खंड में निवासरत है।

शब्द कुंजी –

बेवरा कृषि, कोर-कोर, गोती (गोत्र), ''सूक भरना'', उढ़रिया ढूकू, दिहारी माई, बरहिया देव, लाटा महुआ तिहार

प्रस्तावना

राज्य शासन द्वारा राज्य की पांडो जनजाति की स्थिति को राज्य की विशेष पिछड़ी जनजातियों के समतुल्य मानते हुये इनके समग्र विकास हेतु पृथक से पांडो विकास अभिकरण का गठन किया गया है। पांडो विकास अभिकरण अनुसार राज्य में इनकी कुल जनसंख्या 31814 है जिसमें 16522 पुरुष एवं 15292 स्त्री जनसंख्या है। शैक्षणिक दृष्टिकोण से पांडो जनजाति की कुल साक्षरता दर 22.20 प्रतिशत है।

मुख्य विषय का विश्लेषण

इस जनजाति के उत्पत्ति संबंधी अभिलेख नहीं है। पाण्डो जनजाति द्वारा महाभारत काल के पाण्डवों को अपना पूर्वज माना जाता है। इनका मानना है कि, इनकी उत्पत्ति पाण्डवो से हुई है। प्रचलित किवदतियों के अनुसार पाण्डव वनवास के दौरान भोजन की पूर्ति के लिये बेवरा कृषि करने लगे। खेत से पक्षियों को दूर रखने के लिये काग-भगौड़ा (पुतला) बनाकर खेत में खड़ा किया गया। एक समय भगवान शंकर माता पार्वती के साथ वहां से गुजर रहे थे तब माता की नजर काग भगौड़ा पर पड़ी तो उन्होंने भगवान शंकर से उसे जीवित करने कि ईच्छा जाहिर की, जिस पर शंकर भगवान द्वारा पुतले को जीवित किया गया। चूंकि वह पुतला रस्सी से बंधा था उसके चारो तरफ शरीर में कोर-कोर (रस्सी के निशान) बन गये थे, इस लिये उसे कोरवा नाम से जाना जाने लगा। पुतले के जीवित होने पर वह उक्त खेतों पर अपना अधिकार जताने लगा। जिस कारण पाण्डव (भीम) और उसके बीच लड़ाई होने लगी। इसी दौरान शंकर भगवान वहां से गुजर रहे थे, तो उन्होंने दोनो को समझाया तथा बटवारा कराकर दोनों से कहा कि तुम दोनों वन में रहकर बेवरा कृषि एवं शिकार करोगे। तब से पाण्डव वनवासी हो कर वन में बस गये। पाण्डवों से जन्मी सन्तान बाद में अपभ्रंश वश पाण्डो कहलाने लग।

***शोधार्थी, इतिहास विभाग, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग, (छ.ग.)**

† सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग, (छ.ग.)

रहन-सहन व खान-पान

इनके घर की दीवार मिट्टी की बनी होती है, छप्पर घास-फूस या देशी खपरैल की बनी होती है। घर में प्रायः एक या दो कमरा होता है। घर के एक किनारे पर चूल्हा होता है। रसोई के बर्तनों में हंडी, कनौजी, गघरी, तवा मिट्टी के होते हैं। एल्युमिनियम या पीतल की थाली, कटोरी, लोआ, गंजी आदि होता है। पुरुष व महिलाएँ करंज, हर्रा या नीम के दातौन से दाँतों की सफाई करते है। प्रतिदिन स्नान करते हैं। शरीर एवं बालों में गुल्ली का तेल लगाकर महिलाएँ सिर पर जूड़ा या चोटी बनाती है। पुरुष पंछा, बंडी, स्त्रियाँ लगुड़ा पहनती है। स्त्रियाँ शरीर पर गोदना गुदवाती हैं। स्त्रियाँ हाथों में कांच की चूड़ियाँ, नाक में फूली, कान में खिनवा, गले में माला पहनती हैं, जो स्थानीय बाजारों से खरीदती हैं। इनका मुख्य भोजन चावल, कोदो, कुटकी आदि का भात या पेज, उड़द, मूंग, कुलथी, बेलिया की दाल, मौसमी सब्जी या जंगली भाजी है। वर्षा ऋतु में कंदमलू तथा महुआ की रोटी, बोड़ा आदि खाते हैं। मांसाहार में मुर्गी, बकरा, खरगोश, सुअर, जंगली पक्षी, मछली, केकड़ा आदि खाते हैं। उत्सव, त्योहार आदि पर महुआ से स्वनिर्मित शराब पीते हैं। चावल से निर्मित हंड़िया भी पीते हैं।

जीवन निर्वाह

इनका आर्थिक जीवन मुख्यतः वनोपज संग्रह, बाँस बर्तन निर्माण, मजदूरी, कृषि आदि पर आधारित है। जंगलों से चिरौंजी, तेंदू, महुआ, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, तंदेपूत्ता, धवई फूल, गोंद, शहद, सूखी लकड़ी आदि एकत्रित कर स्थानीय बाजार में बेचते हैं। कंदमूल यथा - बहुनी कांदा, बिरालू कांदा, बजाग कांदा, बोड़ा, महुआ आदि का उपयोग भोजन के रूप में करते हैं। बाँस से अनाज रखने की डलिया, टोकरी, सूपा आदि बनाते हैं। जिनके पास थोड़ी कृषि भूमि है, वे कोदों, कुटकी, मड़िया, मक्का, धान, उड़द, कुलथी, मूँग आदि बोते हैं। स्थानीय अन्य आदिवासी या गैर आदिवासी कृषकों की खेतों में मजदूरी करते हैं।

जाति समूह व गोत्र

पाण्डो जनजाति में दो उप समूह पाया जाता है - सरगुजिया और उत्तरांश। इस जनजाति के मुख्य ''गोती'' (गोत्र) भलवा, मनिगा, भूसर, चमढ़िया, दारी, चरगोड़िया, मरकाम, गोसाई, कमरो, मछराहा, पिपरिया, सिरम, चटगोहिया, भुसर, शिकारी, भंवर, बिलमिया, टकरिया, टोटरवा आदि हैं

वैवाहिक जीवन

विवाह के लिए वर एवं कन्या का गोत्र अलग-अलग होना आवश्यक है। पाण्डो जनजाति की गर्भवती स्त्रियाँ प्रसव के दिन तक अपना आर्थिक एवं पारिवारिक कार्य करती हैं। प्रसव परिवार एवं पड़ोस की बुजुर्ग महिलाएँ कराती हैं। प्रसूता को सोंठ, गुड़ का पानी पिलाते हैं और मड़िया का पेज खाने के लिए दिया जाता है। छठे दिन छठी मनाते हैं। प्रसूता एवं शिशु को स्नान कराते हैं। रिश्तेदारों को भोजन कराते हैं। शराब पिलाते हैं।

विवाह के लिए लड़के का उम्र 18 से 20 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 16 से 18 वर्ष उपयुक्त मानते हैं। वर पक्ष वधू पक्ष को अनाज, दाल, तेल, लुगड़ा तथा नगद राशि ''सूक भरना'' के रूप में देते हैं। समाज के बुजुर्ग विवाह की रस्म पूर्ण कराते हैं। विवाह के लिए धन राशि के अभाव में ''बरोखी'' बिहाव भी करते हैं, जिसमें तेल, हल्दी की रस्म नहीं होती वर वधू को कपड़ा देकर अँगूठी पहनाकर घर ले आता है। उढ़रिया, ढूकू तथा चूड़ी पहनाने की प्रथा भी प्रचलित है।

अंतिम संस्कार

मृत्यु पर मृतक के शरीर को दफनाते हैं। पुरुषों के धनुष बाण, बाँसुरी, सूपा, धान तथा पानी से भरा मिट्टी का पात्र कब्र के पास रखते हैं। महिलाओं के कब्र में मछली पकड़ने की चोरिया, सूपा, धान, कंघी, पानी आदि रखते हैं। तीसरे दिन घर की साफ-सफाई कर तीज नहावन नहाते हैं। दसवें दिन रिश्तेदारों को मृत्यु भोज देते हैं।

मुखिया, देवी-देवता व प्रमुख त्योहार गीत

परंपरागत सामाजिक पंचायत (जाति पंचायत) पाई जाती है। मुखिया का पद वंशानुगत होता है। इस पंचायत में वैवाहिक विवाद का निपटारा किया जाता है। जाति के देवी-देवताओं की पूजा व्यवस्था भी किया जाता है।

इस जनजाति के प्रमुख देवी-देवताओं में महामाई, वागेश्वर देव, दिहारी माई, बरहिया देव, ''गोती'' देव/देवी (कुल देव/देवी), बाबा देव, अन्न कुमारी, राकशपाट, छुरी पार आदि हैं। देवी-देवता की पूजा त्योहार, उत्सव आदि में सिंदूर व चावल चढा़कर, गुड़ का होम देकर शराब तथा मुर्गी, सुअर, बकरा आदि की बलि दे कर करते हैं। इनके प्रमुख त्योहार करमा तिहार, लाटा महुआ तिहार, होली, दशहरा, दिवाली आदि है। भूत-प्रेत, जादू-टोना में विश्वास करते हैं। करमा पूजा के समय लड़के व लड़कियाँ करमा नृत्य करती हैं। होली के समय होली नृत्य, विवाह में बिहाव नाचते हैं। इनमें प्रमुख लोक गीतों में करमा गीत, बिहाव गीत, फागु आदि हैं।

निष्कर्ष

पाण्डो जनजाति की सामान्य जीवन शैली में शिक्षा, आवागमन एवं अन्य बाह्य संस्कृतियो से संपर्क के कारण उनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन स्पष्ट देखा जा सकता है। पाण्डो जनजाति के विकास के लिए शासन द्वारा सूरजपुर जिले में पाण्डो विकास अभिकरण का गठन किया गया था। जिसके माध्यम से भी पाण्डो जनजाति के सर्वागीण विकास हेतु विभिन्न प्रकार की योजनाएं संचालित की जा रही है। जैसे- कृषि उपकरण वितरण, भूमि समतलीकरण, उन्नत बीज वितरण, सिंचाई सुविधा, पेयजल हेतु हैण्डपंप, कौशल विकास हेतु प्रशिक्षण, पशुधन वितरण आदि के माध्यमों से सहायता प्रदान की जाती है।

पाण्डो जनजाति वर्तमान में बेवरा कृषि को छोड़कर स्थायी कृषि करने लगी है। इन्हे शासन द्वारा वन अधिकार मान्यता पत्र एवं कृषि विकास संबंधी अन्य योजनाओं का लाभप्राप्त हो रहा है।

पाण्डो जनजाति के निवास ग्रामों में आंगनबाड़ी केन्द्र, शैक्षणिक संस्थाएं, आश्रमशालाएं, स्वास्थ्य केन्द्र, हैण्डपंप, ग्राम विद्युतीकरण, आवास, शौचालय एवं सड़क आदि अधोसंरचनात्मक सुविधाओं का विस्तार होने के कारण इनके सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक, शैक्षणिक तथा जीवनशैली में धनात्मक विकास देखने को मिल रहा है।

संदर्भ

1. वैष्णव, टी. के. (2008). *छत्तीसगढ़ की आदिम जनजातियाँ: एक परिदृश्य*. रायपुर: आदिम जाति अनुसंधान एवं प्रशिक्ष ण संस्थान, पृ. 2.
2. Russell, R. V., & Hiralal. (1916). *The Tribes and Castes of the Central Provinces of India* (Vol. 2). London, p. 77.
3. गुप्त, प्यारेलाल. (1973). *प्राचीन छत्तीसगढ़*. रायपुर: रविशंकर विश्वविद्यालय, पृ. 12, 15.
4. उपाध्याय, विजय शंकर. (2009). *भारत की जनजातीय संस्कृति*. भोपाल: मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पृ. 83.
5. आदिमजाति अनुसंधान एवं विकास संस्थान, मध्यप्रदेश. (वर्ष अनुपलब्ध). *शासकीय प्रतिवेदन* (क्रमांक 568). भोपाल, पृ. 10.
6. Nag, D. S. (1958). *Tribal Economy*. Delhi: Bharatiya Adimjati Sevak Sangh, p. 41.
7. शर्मा, रामविलास. (1980). *भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, पृ. 13.
8. सिरमौर, ममता. (2008). *लोक संस्कृति में गोदना: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन* (अप्रकाशित शोधप्रबंध). पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, पृ. 15.
9. Elwin, Verrier. (1949). *Myths of Middle India*. London: Oxford University Press, p. 476.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन से स्थानीय अर्थव्यवस्था का विकास : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. ए. शशांक राव*

shashank.rao1993@gmail.com

सार

यह अध्ययन छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था के विकास का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बस्तर क्षेत्र अपनी समृद्ध जनजातीय संस्कृति, ऐतिहासिक धार्मिक स्थलों एवं प्राकृतिक संसाधनों के कारण एक विशिष्ट पर्यटन स्थल के रूप में उभर रहा है। विशेष रूप से दंतेश्वरी मंदिर, चित्रकोट जलप्रपात तथा कांगेर घाटी जैसे स्थल धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन के प्रमुख केंद्र हैं, जो देश-विदेश के पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य धार्मिक पर्यटन के स्थानीय आय, रोजगार सृजन, लघु एवं कुटीर उद्योगों तथा जीवन स्तर पर प्रभाव का मूल्यांकन करना है। शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है, जिसमें 110 उत्तरदाताओं से प्राथमिक डेटा एकत्रित किया गया है तथा द्वितीयक स्रोतों का भी सहारा लिया गया है, जिससे निष्कर्षों की विश्वसनीयता बढ़ती है। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि धार्मिक पर्यटन का स्थानीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इससे न केवल रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है, बल्कि स्थानीय व्यवसाय, हस्तशिल्प एवं सेवा क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है। साथ ही, यह सांस्कृतिक संरक्षण एवं सामाजिक एकता को भी प्रोत्साहित करता है।

मुख्य शब्द : *बस्तर, धार्मिक पर्यटन, स्थानीय अर्थव्यवस्था, विकास*

प्रस्तावना

भारत में पर्यटन क्षेत्र आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार बन चुका है, जिसमें धार्मिक पर्यटन का विशेष स्थान है। धार्मिक पर्यटन न केवल आध्यात्मिक आस्था से जुड़ा हुआ है, बल्कि यह स्थानीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने का एक प्रभावी माध्यम भी है। विशेष रूप से ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में यह रोजगार सृजन, आय वृद्धि एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विकास का प्रमुख साधन बनकर उभरा है। छत्तीसगढ़ राज्य का बस्तर क्षेत्र अपनी विशिष्ट जनजातीय संस्कृति, पारंपरिक जीवन शैली एवं प्राकृतिक सौंदर्य के कारण देश में अलग पहचान रखता है। यहाँ स्थित प्रमुख धार्मिक एवं पर्यटन स्थल जैसे दंतेश्वरी मंदिर, चित्रकोट जलप्रपात तथा कांगेर घाटी राष्ट्रीय उद्यान न केवल धार्मिक आस्था के केंद्र हैं, बल्कि ये पर्यटन के माध्यम से स्थानीय लोगों के लिए आर्थिक अवसर भी उत्पन्न करते हैं। वर्तमान समय में सरकार द्वारा बस्तर क्षेत्र को पर्यटन हब के रूप में विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं, जिससे क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने एवं जनजातीय समुदाय के जीवन स्तर में सुधार लाने का लक्ष्य रखा गया है। धार्मिक पर्यटन के बढ़ते प्रभाव के कारण यहाँ के स्थानीय बाजार, हस्तशिल्प उद्योग (जैसे बेल मेटल एवं टेराकोटा कला), परिवहन सेवाएँ एवं लघु व्यवसाय तेजी से विकसित हो रहे हैं। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह अध्ययन स्थानीय आर्थिक विकास सिद्धांत एवं सतत पर्यटन विकास की अवधारणाओं पर आधारित है। धार्मिक पर्यटन एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तीनों स्तरों

* **सहायक प्राध्यापक (जी. एल) वाणिज्य**

शासकीय विश्वनाथ यादव तामस्कर स्वशासीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़

पर प्रभाव डालती है। यह न केवल प्रत्यक्ष रूप से रोजगार एवं आय बढ़ाता है, बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से क्षेत्रीय विकास, अवसंरचना निर्माण एवं सांस्कृतिक संरक्षण को भी प्रोत्साहित करता है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
2. स्थानीय अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. रोजगार एवं आय सृजन में इसकी भूमिका का अध्ययन करना।
4. पर्यटन से जुड़े समस्याओं एवं चुनौतियों की पहचान करना।

परिकल्पनाएँ

H_0 : धार्मिक पर्यटन का स्थानीय अर्थव्यवस्था पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं है।

H_1 : धार्मिक पर्यटन का स्थानीय अर्थव्यवस्था पर महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव है।

साहित्य समीक्षा

1. Singh (2018) ने यह निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक पर्यटन भारत में क्षेत्रीय विकास का एक महत्वपूर्ण कारक है। उनके अध्ययन में यह पाया गया कि धार्मिक स्थलों के विकास से स्थानीय स्तर पर छोटे एवं मध्यम व्यवसायों में वृद्धि होती है, जिससे आर्थिक गतिविधियों का विस्तार होता है।
2. जनजातीय क्षेत्रों के संदर्भ में, Mishra and Rout (2016) ने यह दर्शाया कि पर्यटन, विशेष रूप से सांस्कृतिक एवं धार्मिक पर्यटन, पारंपरिक हस्तशिल्प एवं लोक कला के संरक्षण में सहायक होता है। इससे स्थानीय समुदाय को आर्थिक लाभ मिलने के साथ-साथ सांस्कृतिक पहचान भी मजबूत होती है।

अनुसंधान पद्धति

(i) शोध का प्रकार : वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक

(ii) डेटा के स्रोत : **प्राथमिक डेटा**: 110 उत्तरदाताओं से,

द्वितीयक डेटा: सरकारी रिपोर्ट, वेबसाइट, शोध पत्र

(iii) नमूना चयन : क्षेत्र : बस्तर (जगदलपुर, दंतेवाड़ा आदि)

विधि : सरल यादृच्छिक नमूना

प्राथमिक डेटा विश्लेषण

तालिका 1% धार्मिक पर्यटन से आय स्तर में परिवर्तन

आय स्तर	पर्यटन से पहले	पर्यटन के बाद	परिवर्तन
निम्न	50	20	-60%
मध्यम	40	55	$37.5%
उच्च	20	35	$75%
कुल	**110**	**110**	

इस तालिका से स्पष्ट होता है कि धार्मिक पर्यटन के विकास के बाद स्थानीय लोगों की आय संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। पर्यटन से पहले अधिकांश उत्तरदाता निम्न आय वर्ग में आते थे, जिनकी संख्या 50 थी, जो घटकर 20 रह

गई। इसके विपरीत, मध्यम एवं उच्च आय वर्ग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। उच्च आय वर्ग में 75% की वृद्धि यह दर्शाती है कि पर्यटन ने आर्थिक उन्नति के नए अवसर प्रदान किए हैं। यह परिवर्तन इस बात का संकेत है कि धार्मिक पर्यटन केवल आय बढ़ाने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह लोगों को गरीबी रेखा से ऊपर उठाने में भी सहायक है। अतः यह कहा जा सकता है कि धार्मिक पर्यटन स्थानीय आर्थिक संरचना को सकारात्मक रूप से परिवर्तित करता है।

ग्राफ 1 : रोजगार के प्रकार एवं लाभान्वित उत्तरदाता

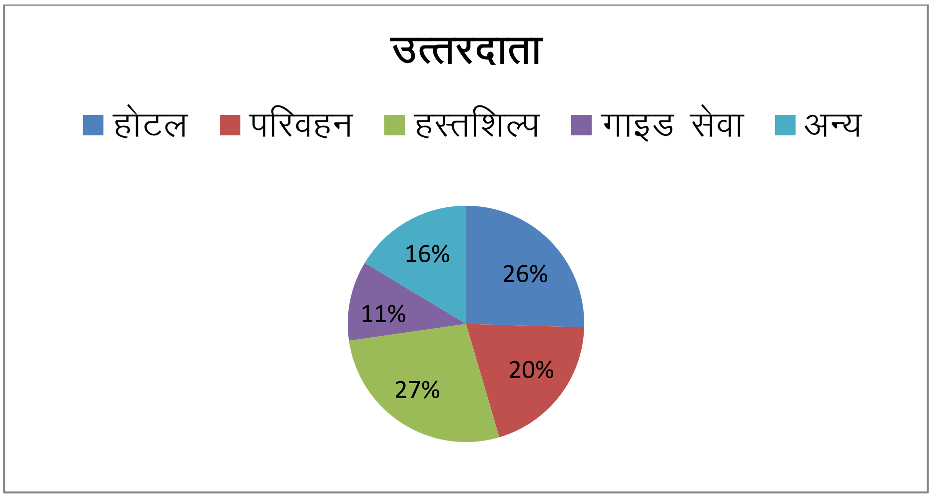

ग्राफ से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक पर्यटन के कारण विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उत्पन्न हुए हैं। सबसे अधिक लाभ हस्तशिल्प क्षेत्र (27.3%) को हुआ है, जो बस्तर की पारंपरिक कला से जुड़ा हुआ है। इसके बाद होटल/ढाबा (25.5%) और परिवहन (20%) क्षेत्र आते हैं, जो पर्यटन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। गाइड सेवा में अपेक्षाकृत कम भागीदारी (10.9%) यह संकेत देती है कि इस क्षेत्र में अभी और संभावनाएँ हैं। कुल मिलाकर, यह ग्राफ दर्शाता है कि धार्मिक पर्यटन ने स्थानीय स्तर पर विविध रोजगार के अवसर प्रदान किए हैं और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दिया है।

ग्राफ 2: पर्यटन से जीवन स्तर में सुधार

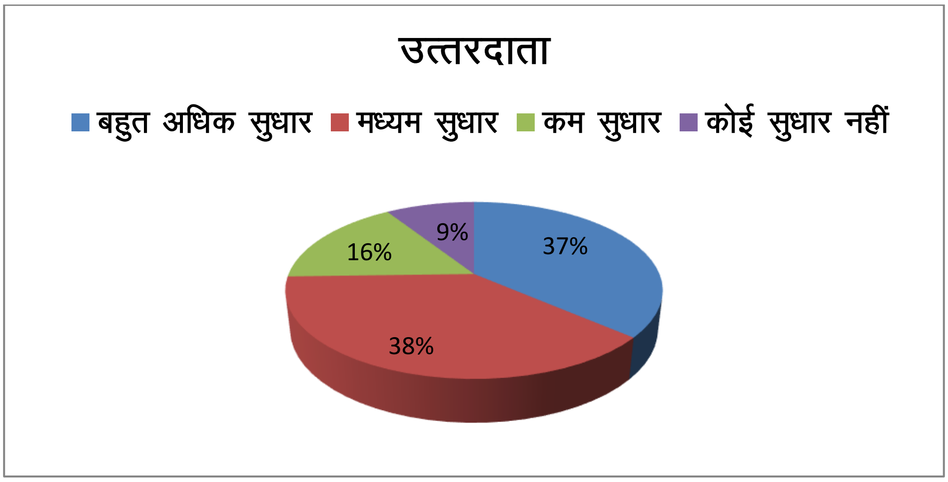

यह ग्राफ दर्शाती है कि अधिकांश उत्तरदाताओं ने अपने जीवन स्तर में सुधार महसूस किया है। 36.4% उत्तरदाताओं ने ‘‘बहुत अधिक सुधार‘‘ तथा 38.2% ने ‘‘मध्यम सुधार‘‘ की पुष्टि की है, जो कुल मिलाकर लगभग 75% से अधिक है।

यह दर्शाता है कि धार्मिक पर्यटन का प्रभाव व्यापक और सकारात्मक है। केवल 9% उत्तरदाताओं ने कोई सुधार नहीं होने की बात कही, जो यह संकेत देता है कि पर्यटन के लाभ सभी तक समान रूप से नहीं पहुँच पा रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि नीतियाँ अधिक समावेशी हों, ताकि हर वर्ग को लाभ मिल सके। समग्र रूप से, यह ग्राफ पर्यटन के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

परिणाम एवं चर्चा

धार्मिक पर्यटन के कारण बस्तर क्षेत्र में निम्न परिवर्तन देखने को मिलेः

(i) आर्थिक प्रभाव : धार्मिक पर्यटन के विकास के परिणामस्वरूप बस्तर क्षेत्र की स्थानीय अर्थव्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार देखने को मिला है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि पर्यटन गतिविधियों में वृद्धि के कारण स्थानीय लोगों की आय में निरंतर वृद्धि हुई है। विशेष रूप से छोटे दुकानदारों, होटल संचालकों एवं परिवहन सेवाओं से जुड़े लोगों को प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ है। इसके साथ ही, लघु एवं कुटीर उद्योगों जैसे हस्तशिल्प, बेल मेटल, टेराकोटा आदिकृका भी विकास हुआ है, जिससे स्थानीय उत्पादों की मांग बढ़ी है। बाजार का विस्तार होने के कारण बाहरी पर्यटकों की खरीदारी से क्षेत्रीय व्यापार को नई दिशा मिली है। इस प्रकार धार्मिक पर्यटन ने बस्तर क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों को गतिशील बनाते हुए समग्र आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया है।

(ii) सामाजिक प्रभाव : धार्मिक पर्यटन का प्रभाव केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। बस्तर क्षेत्र में धार्मिक स्थलों पर आने वाले पर्यटकों के कारण स्थानीय जनजातीय संस्कृति, परंपराओं एवं रीति-रिवाजों को नई पहचान मिली है। इससे सांस्कृतिक संरक्षण को बढ़ावा मिला है और स्थानीय समुदाय में अपनी परंपराओं के प्रति गर्व की भावना विकसित हुई है। इसके अतिरिक्त, जनजातीय कला एवं शिल्प जैसे लोक नृत्य, लोक संगीत एवं हस्तनिर्मित वस्तुएँ को भी प्रोत्साहन मिला है, जिससे इन कलाओं का संरक्षण संभव हो पाया है। सामाजिक स्तर पर यह भी देखा गया कि पर्यटन ने विभिन्न समुदायों के बीच संवाद एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया है, जिससे सामाजिक एकता को मजबूती मिली है।

(iii) रोजगार सृजन : धार्मिक पर्यटन के विकास से बस्तर क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न हुए हैं, जो स्थानीय लोगों के लिए आजीविका का महत्वपूर्ण साधन बन गए हैं। अध्ययन में यह पाया गया कि पर्यटन से जुड़े क्षेत्रों में प्रत्यक्ष रोजगार जैसे होटल, ढाबा, गाइड सेवा एवं परिवहन में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही अप्रत्यक्ष रोजगार के अवसर भी बढ़े हैं, जिनमें हस्तशिल्प उत्पादन, स्थानीय बाजारों में व्यापार एवं अन्य सहायक सेवाएँ शामिल हैं। विशेष रूप से युवा वर्ग एवं महिलाओं को इन गतिविधियों में भागीदारी का अवसर मिला है, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। इस प्रकार धार्मिक पर्यटन ने न केवल रोजगार सृजन को बढ़ावा दिया है, बल्कि स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भरता को भी मजबूत किया है।

समस्याएं

1. बुनियादी ढांचे की कमी
2. परिवहन सुविधाओं का अभाव
3. पर्यटन का सीमित प्रचार
4. सुरक्षा एवं पूर्व नक्सल प्रभाव

सुझाव

1. धार्मिक स्थलों का विकास एवं प्रचार
2. स्थानीय लोगों को प्रशिक्षण प्रदान करना
3. सड़क एवं परिवहन सुविधाओं में सुधार
4. हस्तशिल्प को राष्ट्रीय बाजार से जोड़ना
5. डिजिटल प्रचार

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में बस्तर क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन के स्थानीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव का विश्लेषण 110 उत्तरदाताओं से प्राप्त प्राथमिक आंकड़ों के आधार पर किया गया। तालिकाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि धार्मिक पर्यटन ने क्षेत्र की आर्थिक संरचना में सकारात्मक परिवर्तन लाया है। आय स्तर से संबंधित आंकड़ों में यह देखा गया कि निम्न आय वर्ग के लोगों की संख्या में कमी आई है, जबकि मध्यम एवं उच्च आय वर्ग में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो आर्थिक उन्नति का संकेत है। रोजगार से संबंधित आंकड़ों से यह निष्कर्ष निकलता है कि धार्मिक पर्यटन ने विभिन्न क्षेत्रों जैसे हस्तशिल्प, होटल/ढाबा एवं परिवहन में रोजगार के अवसर उत्पन्न किए हैं, जिसमें हस्तशिल्प क्षेत्र की भागीदारी सबसे अधिक रही है। यह दर्शाता है कि पर्यटन ने स्थानीय पारंपरिक व्यवसायों को पुनर्जीवित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अतिरिक्त, जीवन स्तर से संबंधित तालिका यह संकेत देती है कि अधिकांश उत्तरदाताओं (लगभग 75%) ने अपने जीवन स्तर में सुधार अनुभव किया है, जो यह प्रमाणित करता है कि पर्यटन का प्रभाव व्यापक एवं सकारात्मक है। हालांकि, कुछ उत्तरदाताओं ने यह भी बताया कि पर्यटन के लाभ सभी वर्गों तक समान रूप से नहीं पहुँच पा रहे हैं, जिससे असमानता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसके बावजूद, समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि धार्मिक पर्यटन बस्तर क्षेत्र के लिए एक प्रभावी आर्थिक विकास का माध्यम बनकर उभरा है। यदि इसे योजनाबद्ध एवं सतत रूप से विकसित किया जाए, तो यह क्षेत्र की अर्थव्यवस्था को और अधिक सुदृढ़ कर सकता है तथा स्थानीय समुदाय के जीवन स्तर में दीर्घकालिक सुधार ला सकता है।

संदर्भ (References) :

Bastar District Administration. (n.d.). *Bastar tourism overview*. Retrieved October 10, 2024, from ht tp://bastar.gov.in/en/tourism

Chhattisgarh Tourism Board. (2023). *Bastar tourism development report*. Chhattisgarh Tourism Pro motion Board. https://tourism.cgstate.gov.in/bastar-report.pdf

Eco & tourism study on Bastar. (2024). *Journal of Business Policy and Strategy, 5*(1), 112–130. https://doi.org/10.1234/bpas.2024.5.1.112

Government of Chhattisgarh. (2024). *Annual budget report 2024-25: Allocation for tourism and Bastar development*. Finance Department, Government of C hhattisgarh. https://finance.cg.gov.in/budget-2024.pdf

The Economic Times. (2024, March 5). Chhattisgarh budget 2024: Focus on tourism infrastructure i n Bastar. *The Economic Times*. https://economictimes.indiatimes.com/budget-chhattisgarh-2024

The Economic Times. (2025, January 15). Bastar tourism development: Chhattisgarh's push for eco-friendly initiatives. *The Economic Times*. https://economictimes.indiatimes.com/news/bastar-tourism-2025

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य का उद्भव और विकास (प्रारंभ से गुप्तकाल तक)

डॉ. बृजेश रावत* **शोभित कुमार पाण्डेय†**
rawat.brijesh11@gmail.com **shobhitpandeycoo@gmail.com**

सारांश -

उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य का उद्भव और विकास प्राचीन धार्मिक विश्वासों, दार्शनिक विचारों तथा सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों से गहराई से जुड़ा हुआ है। प्रस्तुत शोधलेख प्रारंभिक अनुष्ठानिक स्थलों और छोटे देवालयों से लेकर गुप्तकाल तक मंदिर निर्माण की क्रमिक प्रक्रिया और उसकी परिपक्वता का अध्ययन करता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार वैदिक यज्ञ परंपरा, प्रकृति-पूजा तथा स्थानीय आचार-विचारों ने मिलकर मंदिर को एक सुविचारित, प्रतीकात्मक एवं स्थापत्यगत स्वरूप प्रदान किया; प्रारंभ में ये स्थल साधारण और अनुष्ठानिक थे, किंतु समय के साथ ये एक जटिल स्थापत्य संरचना में विकसित हुए, जो धार्मिक, सामाजिक और शासकीय उद्देश्यों की पूर्ति करते थे। वास्तु-शास्त्रीय सिद्धांतों, जैसे वास्तु-पुरुष मंडल, गर्भगृह की केंद्रीयता तथा अक्षीय योजना ने मंदिर स्थापत्य को एक सुदृढ़ वैचारिक आधार प्रदान किया, और उत्तर भारत में प्रारंभिक मंदिर निर्माण के साक्ष्य के रूप में सांची का मंदिर संख्या 17 विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो मंदिर स्थापत्य के आरंभिक प्रयोगात्मक चरण को समझने में सहायक है। गुप्तकाल में मंदिर स्थापत्य ने एक शास्त्रीय और स्थायी रूप ग्रहण किया, जिसमें शिखर, मंडप और गर्भगृह जैसे प्रमुख अंग सुव्यवस्थित, प्रतीकात्मक और कलात्मक रूप में विकसित हुए। इस प्रकार, प्रारंभ से गुप्तकाल तक उत्तर भारत में मंदिर स्थापत्य का विकास एक निरंतर प्रक्रिया रही, जिसमें धार्मिक आस्थाओं, सांस्कृतिक परंपराओं और राजनीतिक संरचनाओं का समन्वय दिखाई देता है, और यह स्थापत्य न केवल पूजा का केंद्र रहा, बल्कि उस समय की सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक चेतना का सशक्त प्रतीक भी बनकर उभरा।

बीज-शब्द:-

मंदिर की उत्पत्ति, स्थापत्य विकास, वास्तु-पुरुष मंडल, गर्भगृह, प्रारंभिक देवालय, गुप्त काल, धार्मिक स्थापत्य, पवित्र ज्यामिति

परिचय

भारतीय मंदिर स्थापत्य दुनिया की सबसे पुरानी और समृद्ध स्थापत्य परंपराओं में से एक है। अन्य कई प्रकार के भवन जहाँ व्यावहारिक जरूरतों या सुरक्षा कारणों से बने, मंदिर का जन्म अलग था, यह एक पवित्र स्थान था, जिससे मानवीय और दैवीय दुनियाँ जुड़ती है। छोटे अनुष्ठानिक मंचों और साधारण देवालयों से शुरू होकर, समय के साथ मंदिर एक सुव्यवस्थित और मानकीकृत कला रूप बन गया। इस विकास में धार्मिक विचार, ब्रह्मांडीय सोच, कला की परंपरा और राजनीतिक सिद्धांतों का बड़ा हाथ रहा। भारतीय मंदिर स्थापत्य के प्रारंभिक स्वरूप को समझने में प्राचीन पाठ्य स्रोत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि आरंभिक काल के अनेक भौतिक मंदिर उपलब्ध नहीं हैं, तथापि वैदिक, पुराणिक और वास्तुशास्त्रीय ग्रंथ मंदिर निर्माण की वैचारिक तथा तकनीकी पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं।[1] ऋग्वेद और अथर्ववेद में यज्ञ वेदी, देव आवास और पवित्र मंडल की अवधारणाएँ मिलती हैं, जो आगे चलकर मंदिर योजना का आधार बनीं[‡]। विशेष रूप से शतपथ ब्राह्मण में वेदी निर्माण की ज्यामितीय रचना का वर्णन मिलता है, जिसे कई विद्वान मंदिर स्थापत्य की प्रारंभिक प्रेरणा मानते हैं।[2]

* **असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

† **शोधार्थी, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, डॉ. शकुंतला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय, लखनऊ**

पुराणों में मंदिर स्थापत्य का अधिक व्यवस्थित विवरण प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण और अग्नि पुराण में देवालय की योजना, वास्तुपुरुष मंडल, दिशात्मक विन्यास और मूर्ति प्रतिष्ठा के नियमों का उल्लेख है।[3] ये ग्रंथ संकेत देते हैं कि गुप्त काल तक मंदिर स्थापत्य एक शास्त्रसम्मत परंपरा के रूप में विकसित हो चुका था। स्थापत्य के तकनीकी पक्ष को मानसार, मयमतम् और समरांगण सूत्रधार जैसे ग्रंथ स्पष्ट करते हैं, जिनमें स्तंभ, अधिष्ठान, अनुपात और अलंकरण के नियम दिए गए हैं।[4] इन पाठ्य साक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मंदिर स्थापत्य एक निरंतर विकसित होती, ग्रंथ आधारित परंपरा थी। मंदिर की रूपरेखा बनाते समय इसका दृष्टिकोण कोस्मिक माइक्रोकॉस्म यानी छोटे ब्रह्मांड के रूप में होता है। पुराने ग्रंथ बताते हैं कि वास्तुपुरुष मंडल आमतौर पर 8×8 या 9×9 का जाल मंदिर की योजना का आधार होता है। इसी जाल के केंद्र में गर्भगृह आता है, जिसे देवता का निवास और सृष्टि का केन्द्र माना जाता है। वैदिक, पुराणिक और आगमिक परंपराएँ इस भाव को आगे बढ़ाती हैं और बताती हैं कि मंदिर सिर्फ ईश्वर की घर नहीं बल्कि भक्त और ईश्वर के बीच संवाद का स्थान भी है।

स्टेला क्रामरिश जैसे विद्वान भी कहते हैं कि मंदिर केवल पत्थर की इमारत नहीं, बल्कि आध्यात्मिक विचारों का रूपांतरण है। शुरूआती धार्मिक क्रियाएँ अधिकतर खुली जगहों पर या अस्थायी संरचनाओं में होती थीं, लकड़ी, बाँस, ईंट, मिट्टी जैसी सामग्रियों से बने स्थान जिनके अवशेष आज बहुत कम मिलते हैं। फिर भी, मूर्तिकला, ग्रंथों और कुछ भवन अवशेषों से पता चलता है कि ये खुले मंच धीरे-धीरे बंद और स्थायी देवालयों में बदले गए।[5] इस क्रम में एक अहम पहलू है सांची का मंदिर संख्या 17 (करीब पाँचवीं शताब्दी)।[6] यह छोटे आकार का प्रस्तर मंदिर होने के बावजूद बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह उन्हीं मौलिक सिद्धांतों को दिखाता है जो बाद के बड़े मंदिरों में भी मिलते हैं, जैसे अक्षीय अभिविन्यास (मुख्य द्वार, गर्भगृह का सीधा जुड़ना), गर्भगृह की केंद्रीयता और पत्थर का स्थायी प्रयोग। कई शोधकर्ता इसे लकड़ी आधारित प्रारूप और बाद के विशाल प्रस्तर मंदिरों के बीच का पुल मानते हैं। भरहुत से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य मंदिर स्थापत्य के और भी प्रारंभिक संकेत प्रस्तुत करते हैं। वहाँ उपलब्ध वृत्ताकार योजना से संबंधित अवशेष इस संभावना की ओर संकेत करते हैं कि प्रारंभिक काल में पवित्र संरचनाओं के लिए विभिन्न प्रकार की स्थापत्य योजनाओं पर प्रयोग किया जा रहा था। यद्यपि इन साक्ष्यों की व्याख्या को लेकर विद्वानों में पूर्ण सहमति नहीं है।[7]

गुप्त काल (चौथी, छठी सदी ई.) तक आते-आते मंदिर स्थापत्य की रूपरेखा अधिक स्थिर और मानकीकृत हो गई। इस दौर में प्रस्तर (पत्थर) का व्यापक उपयोग शुरू हुआ और मंदिरों के भीतर स्थानिक अनुक्रम जैसे गर्भगृह, प्रवेश हॉल आदि , स्पष्ट रूप से देखे जाने लगे। उस समय स्थापत्य और मूर्तिकला के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध बना; मंदिरों की दीवारों पर धार्मिक कथाएँ उकेरी जाने लगीं और निर्माण में रूप रचना और शिल्प दोनों का समन्वय दिखा। इस काल में मंदिरों के कई प्रकार विकसित हुए, जैसे समतल छत वाले वर्गाकार मंदिर, परिक्रमा पथ वाले मंदिर, आयताकार ढाँचे, शिखरयुक्त मंदिर और वृत्ताकार या अष्टकोणीय मंदिर। उदाहरण के रूप में देवगढ़ का दशावतार मंदिर शिखर शैली के प्रारंभिक रूप को दर्शाता है, जो ब्रह्मांडीय पर्वत मेरु का प्रतीक माना जाता है, जबकि भितरगाँव मंदिर ईंटों के उत्कृष्ट उपयोग और पवित्र ज्यामिति के अनुकूलन का उदाहरण प्रस्तुत करता है।[8]

गुप्त काल में विष्णु और शिव की उपासना बढ़ी और मंदिर केवल पूजा स्थल नहीं रहे, वे सामाजिक और राजनीतिक केंद्र भी बन गए। शिलालेखों से ज्ञात है कि राजाओं और अभिजात वर्ग ने मंदिरों को भूमि, दान और संसाधन देकर समर्थित किया, जिससे मंदिर सत्ता और सांस्कृतिक पहचान के प्रतीक बन गए। भारतीय मंदिर स्थापत्य की यात्रा एक धीमी पर चलने वाली, परन्तु लगातार बदलने वाली प्रक्रिया रही है। प्रारम्भिक अनुष्ठानिक मंचों और प्रयोगात्मक योजनाओं से शुरू होकर सांची-17 और भरहुत जैसे उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मंदिरों का विकास चरणबद्ध था। गुप्त काल में सिद्धांतों की स्थिरता आई और आगे जाकर यह कला बारहवीं सदी तक न केवल धार्मिक आस्था का रूप बनी बल्कि समाज, राजनीति और कला की अभिव्यक्ति का भी केंद्रीय साधन बन गई।[9]

आर्थिक दृष्टि से भी मंदिरों का महत्व अत्यधिक बढ़ गया। इनके निर्माण से कारीगरों, मूर्तिकारों और राजमिस्त्रियों के संगठित समूह विकसित हुए। मंदिर तीर्थयात्रियों और व्यापारियों को आकर्षित करते थे, जिससे वे नगरों के विकास के केंद्र बन गए। देवदाना (कर-मुक्त भूमि दान) की परंपरा ने मंदिरों को बड़े भू-स्वामी और आर्थिक शक्ति केंद्र बना दिया, जो कृषि प्रबंधन,

सिंचाई और सामाजिक कार्यों में भी सक्रिय थे। यही परंपरा आगे चलकर चोल और प्रतिहार जैसे राजवंशों में और अधिक विकसित हुई।[10]

मंदिर स्थापत्य की उत्पत्ति और प्रारंभिक विकास

प्राचीन भारत में मंदिर स्थापत्य का विकास अचानक नहीं हुआ, बल्कि यह एक लंबी और क्रमिक प्रक्रिया का परिणाम था, जिसकी शुरुआत गुप्तकाल से बहुत पहले हो चुकी थी। इस विकास की जड़ें सिंधु घाटी सभ्यता, मौर्य काल और उसके बाद के शुंग, सातवाहन तथा कुषाण काल में दिखाई देती हैं। इन कालों में भले ही आज की तरह विकसित मंदिर संरचनाएँ नहीं मिलतीं, लेकिन धार्मिक स्थलों, प्रतीकों और निर्माण तकनीकों के रूप में मंदिर स्थापत्य की नींव धीरे-धीरे तैयार हो रही थी। सिंधु घाटी सभ्यता के नगर, जैसे मोहनजोदड़ो और हड़प्पा हमें यह बताते हैं कि उस समय के लोग कितने व्यवस्थित और तकनीकी रूप से सक्षम थे। उनकी सड़कों की योजना, जल-निकासी व्यवस्था और "महान स्नानागार" जैसे निर्माण यह संकेत देते हैं कि धार्मिक या सामूहिक अनुष्ठानों के लिए विशेष स्थान बनाए जाते थे। साथ ही, उनकी मुहरों और मूर्तियों में जो देव-प्रतीक दिखाई देते हैं, वे आगे चलकर हिंदू धर्म की प्रतीकात्मक परंपराओं से जुड़ते नजर आते हैं।

इसके बाद मौर्य काल में स्थापत्य कला ने एक नया रूप लिया। सम्राट अशोक ने पत्थर का उपयोग बड़े पैमाने पर शुरू किया। उनके द्वारा बनवाए गए स्तंभ और गुफाएँ न केवल सुंदर थे, बल्कि उनमें धार्मिक संदेश और शाही शक्ति दोनों का समावेश था। यह पहली बार था जब निर्माण में स्थायित्व और भव्यता पर इतना जोर दिया गया, जिसने आगे मंदिर स्थापत्य को भी प्रभावित किया। मौर्य काल के बाद शुंग, सातवाहन और कुषाण शासकों ने इस परंपरा को और आगे बढ़ाया। सांची स्तूप जैसे स्मारक केवल धार्मिक स्थल नहीं थे, बल्कि वे कला और स्थापत्य के उत्कृष्ट उदाहरण भी थे। उनके तोरण द्वारों पर उकेरी गई कथाएँ यह दिखाती हैं कि किस तरह धर्म और कला एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। इसी समय बौद्ध गुफाएँ, जैसे अजंता और कार्ले भी विकसित हुईं, जहाँ स्तंभों वाले बड़े हॉल और प्रार्थना स्थल बनाए गए। इन संरचनाओं ने बाद के मंदिरों में मंडप और सभा-स्थलों की अवधारणा को जन्म दिया।[11]

इसी दौर में मथुरा और गांधार जैसे कला केंद्र भी उभरे, जहाँ देवताओं की मूर्तियाँ बननी शुरू हुईं। यह एक महत्वपूर्ण बदलाव था, क्योंकि इससे मूर्ति-पूजा की परंपरा मजबूत हुई और मंदिरों में देवप्रतिमाओं की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। धीरे-धीरे विष्णु, शिव और अन्य देवताओं की मूर्तियाँ बनने लगीं, जिससे मंदिर स्थापत्य को एक स्पष्ट धार्मिक केंद्र मिला। हालाँकि इस समय के मंदिर आज बहुत कम बचे हैं, लेकिन विदिशा जैसे क्षेत्रों में ईंट और लकड़ी से बने छोटे-छोटे देवालयों के प्रमाण मिलते हैं। ये मंदिर साधारण थे, लेकिन इन्होंने आगे चलकर विकसित होने वाले मंदिर स्थापत्य की नींव रखी। इस काल में टेराकोटा कला, पत्थर की नक्काशी और धातु मूर्तिकला का भी विकास हुआ, जिससे कलाकारों और शिल्पियों को नई तकनीकों का ज्ञान मिला।[12]

एक और महत्वपूर्ण पहलू इस समय का सांस्कृतिक समन्वय था। विशेषकर उत्तर-पश्चिम भारत के गांधार क्षेत्र में यूनानी और भारतीय कला का सुंदर मिश्रण देखने को मिलता है। इससे न केवल मूर्तिकला प्रभावित हुई, बल्कि स्थापत्य शैली में भी नए प्रयोग हुए। इस प्रकार, गुप्तकाल से पहले का समय मंदिर स्थापत्य के लिए तैयारी का काल था। यह वह दौर था जब धार्मिक विचार, कला और निर्माण तकनीक धीरे-धीरे एक साथ आ रहे थे। भले ही मंदिर छोटे और सरल थे, लेकिन उन्होंने आगे आने वाले गुप्तकालीन भव्य और व्यवस्थित मंदिर स्थापत्य के लिए मजबूत आधार तैयार कर दिया।

पूर्व-गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य: स्वरूप और आधार

गुप्तकाल भारतीय मंदिर स्थापत्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण संक्रमणकाल के रूप में उभरता है, जब छोटे, सरल और प्रयोगात्मक देवालयों से विकसित होकर एक संगठित, शास्त्रीय और स्थायी स्थापत्य परंपरा का निर्माण हुआ। इस काल में मंदिर केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक नहीं थे, बल्कि वे उस समय की सांस्कृतिक, कलात्मक और तकनीकी प्रगति के भी सशक्त द्योतक बन गए। गुप्तकाल से पूर्व भारतीय स्थापत्य मुख्यतः लकड़ी, बाँस और ईंट जैसी नाशवान सामग्रियों पर आधारित था, जिसके कारण बहुत कम संरचनाएँ आज तक सुरक्षित रह सकीं। मौर्य काल में यद्यपि पत्थर का उपयोग प्रारंभ हो चुका था, जैसे अशोक के स्तंभ और गुफाएँ, फिर भी मंदिर निर्माण में इसका व्यापक प्रयोग गुप्तकाल में ही देखने को मिलता है।

पत्थर के इस उपयोग ने मंदिरों को स्थायित्व प्रदान किया और साथ ही जटिल नक्काशी तथा स्थापत्य प्रयोगों की संभावनाओं को भी बढ़ाया।[13]

गुप्तकालीन मंदिरों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि ये आकार में अपेक्षाकृत छोटे होते हुए भी अत्यंत सुविचारित योजना पर आधारित थे। प्रारंभिक मंदिर प्रायः एक-कक्षीय होते थे, जिनमें गर्भगृह (देवता की प्रतिमा स्थापित करने का स्थान) ही मुख्य केंद्र होता था। इन मंदिरों की छत समतल होती थी और बाहरी सजावट सीमित रहती थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि यह काल प्रयोग और विकास का प्रारंभिक चरण था। समय के साथ इन मंदिरों में मंडप (सभा स्थल), अंतराल (गर्भगृह और मंडप को जोड़ने वाला भाग) तथा शिखर (ऊर्ध्वाधर संरचना) जैसे तत्व जुड़ने लगे, जिससे मंदिरों की संरचना अधिक जटिल और परिपक्व होती गई।

गुप्तकाल में मंदिर स्थापत्य का विकास केवल भौतिक संरचना तक सीमित नहीं था, बल्कि यह धार्मिक और दार्शनिक विचारों से भी गहराई से जुड़ा हुआ था। विष्णुधर्मोत्तर पुराण और बृहत्संहिता जैसे ग्रंथों में वर्णित वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों ने मंदिर निर्माण को एक व्यवस्थित वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इन सिद्धांतों के अनुसार मंदिर को ब्रह्मांड का प्रतीक माना गया, जहाँ गर्भगृह को ब्रह्मांडीय केंद्र (axis mundi) के रूप में देखा जाता था। इस प्रकार, मंदिर केवल पूजा का स्थान नहीं, बल्कि एक दार्शनिक अवधारणा का स्थापत्य रूप भी था।[14]

इस काल के छोटे मंदिरों के उदाहरण मंदिर स्थापत्य के विकास को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। सांची मंदिर संख्या 17 गुप्तकालीन प्रारंभिक मंदिरों का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जो अपनी सादगी और संतुलित संरचना के लिए जाना जाता है। इसमें एक आयताकार मंडप और उसके पीछे स्थित गर्भगृह है, जिसकी छत समतल है और स्तंभ सरल किंतु प्रभावशाली हैं। यह मंदिर इस बात का प्रमाण है कि प्रारंभिक गुप्तकालीन मंदिर अभी भी सरलता और कार्यात्मकता पर आधारित थे।

इसी प्रकार तिगवा का विष्णु मंदिर मंदिर योजना के विकास का एक और महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमें गर्भगृह स्पष्ट रूप से परिभाषित है और स्तंभों की सहायता से एक छोटा मंडप निर्मित किया गया है। इसकी संरचना में संतुलन और अनुपात का विशेष ध्यान रखा गया है, जो गुप्तकालीन स्थापत्य की विशेषता है। नचना-कुठार का पार्वती मंदिर मंदिर गुप्तकालीन स्थापत्य के विकास का एक उन्नत चरण दर्शाता है। यह द्वि-मंजिला संरचना वाला मंदिर है, जिसमें योजना अधिक जटिल और विकसित है। इसमें गर्भगृह के साथ-साथ ऊपरी मंजिल और बाहरी अलंकरण का भी विकास दिखाई देता है, जो यह संकेत देता है कि मंदिर स्थापत्य अब अधिक परिपक्व रूप ग्रहण कर रहा था।[15]

गुप्तकालीन स्थापत्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता शिल्पकला का विकास था। मंदिरों की दीवारों और स्तंभों पर देवी-देवताओं, पौराणिक कथाओं और प्रतीकों की सूक्ष्म नक्काशी की जाती थी, जिससे मंदिर धार्मिक शिक्षा और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम बन गए। उदयगिरि गुफाएँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं, जहाँ शिल्प और वास्तु का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। यहाँ विष्णु के वराह अवतार की विशाल प्रतिमा न केवल धार्मिक महत्व रखती है, बल्कि यह गुप्तकालीन शिल्पकला की उत्कृष्टता को भी प्रदर्शित करती है।

तकनीकी दृष्टि से भी गुप्तकाल में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। पत्थरों को जोड़ने के लिए लोहे के क्लैम्प और डॉवेल का उपयोग किया गया, जिससे संरचनाएँ अधिक मजबूत और टिकाऊ बनीं। साथ ही, कॉर्बेल्ड आर्च और कैंटिलीवर तकनीकों का प्रयोग कर बड़े आंतरिक स्थान और ऊँचे शिखर बनाए गए। इससे मंदिरों की ऊँचाई और भव्यता में वृद्धि हुई, जो आगे चलकर उत्तर भारतीय नागर शैली की प्रमुख विशेषता बनी।[16]

गुप्तकालीन मंदिरों का सामाजिक और आर्थिक महत्व भी अत्यधिक था। यद्यपि ये मंदिर आकार में छोटे थे, फिर भी ये धार्मिक गतिविधियों के केंद्र थे और स्थानीय समाज के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। धीरे-धीरे ये मंदिर व्यापार, शिक्षा और सांस्कृतिक गतिविधियों के केंद्र बन गए, जिससे नगरों के विकास को भी प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार, गुप्तकाल में छोटे मंदिरों के माध्यम से भारतीय मंदिर स्थापत्य ने एक सुदृढ़ आधार प्राप्त किया। इन मंदिरों ने न केवल स्थापत्य तकनीकों और शैलियों का विकास किया, बल्कि धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को भी एक नया आयाम प्रदान किया। यही कारण है कि गुप्तकाल को भारतीय मंदिर स्थापत्य का स्वर्ण युग कहा जाता है, जिसने आगे चलकर विशाल और भव्य मंदिरों के निर्माण की नींव रखी।

गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य : विकास और विशेषताएँ

गुप्तकाल में मंदिर स्थापत्य का विकास भारतीय वास्तुकला के इतिहास में एक निर्णायक और परिवर्तनकारी चरण के रूप में सामने आता है। इस काल में मंदिर निर्माण न केवल तकनीकी दृष्टि से उन्नत हुआ, बल्कि उसमें धार्मिक प्रतीकात्मकता, सौंदर्यबोध और स्थापत्य योजना का अद्भुत समन्वय भी दिखाई देता है। गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसमें पत्थर और ईंट दोनों का संतुलित उपयोग किया गया, जिससे एक ओर स्थायित्व प्राप्त हुआ और दूसरी ओर पारंपरिक निर्माण तकनीकों का निरंतर विकास भी संभव हुआ। इस काल में मंदिर छोटे आकार के होते हुए भी अत्यंत सुसंगठित योजना पर आधारित थे और आगे चलकर विकसित होने वाली नागर शैली की नींव रखते हैं।

गुप्तकालीन स्थापत्य की एक प्रमुख विशेषता उन्नत चबूतरे (जगती) और सीढ़ीनुमा आधार का प्रयोग था, जो मंदिर को ऊँचाई प्रदान करते थे और साथ ही उसे आध्यात्मिक महत्त्व भी देते थे। अहिच्छत्रा और पवाया जैसे स्थलों पर निर्मित मंदिरों में बहु-स्तरीय चबूतरों का प्रयोग देखा जा सकता है। विद्वान हेनरिक गेरहार्ड फ्रांज़ के अनुसार "ये सीढ़ीनुमा संरचनाएँ मूलतः बौद्ध स्तूप परंपरा से प्रेरित थीं, जिन्हें बाद में हिंदू मंदिर स्थापत्य में अपनाया गया। इस प्रकार, गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य में परंपरा और नवाचार का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।"[17]

इस काल में मंदिरों की योजना भी अधिक स्पष्ट और संगठित हो गई। गर्भगृह (देवता का मुख्य स्थान), मंडप (सभा स्थल), अंतराल (संक्रमण क्षेत्र) और शिखर (ऊर्ध्वाधर भाग) जैसे अंग विकसित हुए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण और बृहत्संहिता जैसे ग्रंथों में वर्णित वास्तुशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर मंदिरों का निर्माण किया जाने लगा। प्रसिद्ध स्थापत्य इतिहासकार Adam Hardy के अनुसार, "गुप्तकाल में मंदिर स्थापत्य ने पहली बार एक व्यवस्थित रूप ग्रहण किया, जिसने आगे चलकर भारतीय मंदिर वास्तुकला की मूल संरचना को निर्धारित किया।"[18]

गुप्तकालीन मंदिरों के विभिन्न प्रकार इस स्थापत्य विकास को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। प्रारंभिक वर्गाकार समतल-छत वाले मंदिर, जैसे सांची मंदिर संख्या 17, अत्यंत सरल संरचना वाले थे, जिनमें एक छोटा गर्भगृह और स्तंभयुक्त मंडप होता था। यह मंदिर स्थापत्य के प्रारंभिक चरण का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ सादगी और संतुलन प्रमुख थे। इसी प्रकार तिगवा का विष्णु मंदिर में भी स्पष्ट योजना और अनुपात का सुंदर उदाहरण देखने को मिलता है। दूसरे चरण में परिक्रमा-पथ (प्रदक्षिणा मार्ग) वाले मंदिर विकसित हुए, जिनमें गर्भगृह के चारों ओर घुमावदार मार्ग बनाया गया। नचना-कुठार का पार्वती मंदिर इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। इस प्रकार के मंदिरों में भित्तियों पर उकेरी गई मूर्तियाँ धार्मिक कथाओं को दर्शाती थीं, जिससे मंदिर शिक्षा और भक्ति का केंद्र बन जाते थे।

गुप्तकाल की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक शिखर (curvilinear tower) का विकास था, जिसने नागर शैली की पहचान को जन्म दिया। देवगढ़ का दशावतार मंदिर इस विकास का प्रारंभिक उदाहरण है, जहाँ शिखर ब्रह्मांडीय पर्वत मेरु का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार महाबोधि मंदिर में भी गुप्तकालीन शिखर शैली का प्रभाव देखा जा सकता है।

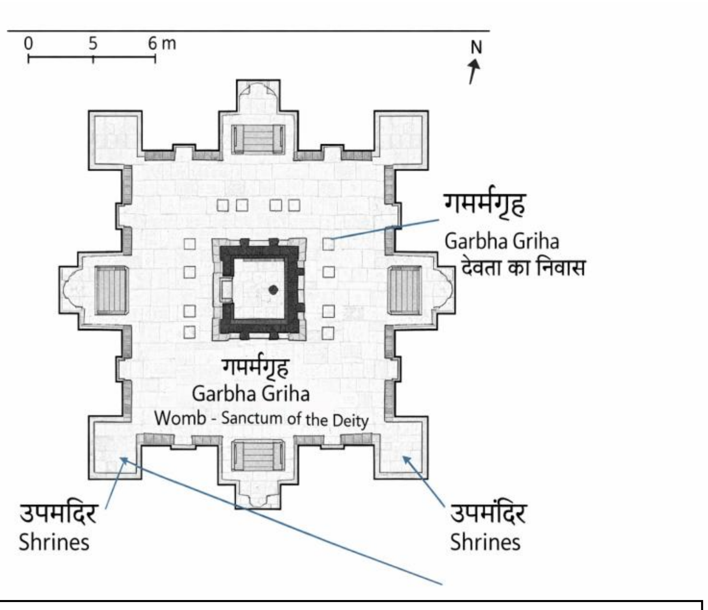

चित्र. देवगढ़ दशावतार मंदिर की योजना (स्रोत- *कनिंघम के बाद लेखक द्वारा पुनः*

विद्वानों के अनुसार, यह ऊर्ध्वाधरता केवल स्थापत्य नहीं, बल्कि आध्यात्मिक आरोहण का प्रतीक थी। तकनीकी दृष्टि से भी गुप्तकाल में उल्लेखनीय प्रगति हुई। कॉर्बेल्ड आर्च, कैंटिलीवर बीम और लोहे के क्लैम्प जैसी तकनीकों का प्रयोग कर मंदिरों को अधिक स्थायित्व और ऊँचाई प्रदान की गई। पत्थर पर सूक्ष्म नक्काशी, उच्च-उत्कीर्ण (relief carving) और पूर्ण मूर्तिकला (in-the-round sculpture) का प्रयोग इस काल की विशिष्टता है। उदयगिरि गुफाएँ में वराह अवतार की विशाल प्रतिमा इस तकनीकी और कलात्मक दक्षता का उत्कृष्ट उदाहरण है।[19]

अलंकरण गुप्तकालीन स्थापत्य का एक महत्वपूर्ण अंग था। मंदिरों की दीवारों, स्तंभों और कोनों पर देवी-देवताओं, पौराणिक कथाओं और शुभ प्रतीकों की नक्काशी की जाती थी। अहिच्छत्रा और पवाया से प्राप्त टेराकोटा पट्टिकाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कलाकारों ने स्थापत्य को एक जीवंत कथात्मक माध्यम में बदल दिया था। कुछ गुप्तकालीन मंदिरों में वृत्ताकार और अष्टकोणीय योजनाओं का भी प्रयोग हुआ, जो स्थापत्य प्रयोगशीलता को दर्शाता है। मुंडेश्वरी मंदिर इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जहाँ अष्टकोणीय योजना और शैव-शक्ति उपासना का समन्वय दिखाई देता है।

अंततः, गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य केवल संरचनात्मक विकास का परिणाम नहीं था, बल्कि यह धार्मिक प्रतिस्पर्धा, सांस्कृतिक समन्वय और राजनीतिक संरक्षण से भी प्रभावित था। विद्वानों के अनुसार, इस काल में मंदिर केवल पूजा स्थल नहीं, बल्कि शक्ति, पहचान और सांस्कृतिक प्रभुत्व के प्रतीक भी थे। इस प्रकार, गुप्तकालीन स्थापत्य ने न केवल भारतीय मंदिर वास्तुकला को एक शास्त्रीय रूप प्रदान किया, बल्कि आगे आने वाली शैलियों—विशेषकर नागर शैली—के विकास की ठोस नींव भी रखी।

उपसंहार

गुप्तकाल भारतीय मंदिर स्थापत्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण और निर्णायक मोड़ के रूप में स्थापित होता है। यह वह काल था जब धार्मिक संरचनाएँ अस्थायी और साधारण रूपों से आगे बढ़कर स्थायी, सुव्यवस्थित और प्रतीकात्मक पत्थर के मंदिरों में परिवर्तित हुईं। गुप्तकालीन वास्तुकारों ने मंदिर निर्माण को एक स्पष्ट दिशा प्रदान की, जिसमें गर्भगृह की पवित्रता, मंडप की उपयोगिता और शिखर की ऊर्ध्वाधरता को एक समन्वित रूप में विकसित किया गया। विशेष रूप से शिखर (Śikhara) का विकास, जो ब्रह्मांडीय पर्वत मेरु का प्रतीक माना जाता है, आगे चलकर उत्तर भारत की नागर शैली की पहचान बना। इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता पत्थर का व्यापक उपयोग था, जिसने मंदिरों को स्थायित्व प्रदान किया और उन्हें समय की कसौटी पर टिकाए रखा। साथ ही, इसने मूर्तिकला और अलंकरण के लिए नई संभावनाएँ खोलीं। मंदिरों की दीवारों पर देवी-देवताओं, पौराणिक कथाओं और धार्मिक प्रतीकों की सूक्ष्म नक्काशी ने उन्हें केवल पूजा स्थल न रहकर एक जीवंत सांस्कृतिक और शैक्षिक केंद्र बना दिया। इस प्रकार, गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य में कला और धर्म का गहरा समन्वय दिखाई देता है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से भी गुप्तकालीन मंदिरों का महत्व अत्यंत व्यापक था। ये मंदिर केवल धार्मिक क्रियाकलापों तक सीमित नहीं थे, बल्कि वे स्थानीय अर्थव्यवस्था के केंद्र बन गए। भूमि दान (देवदाना), तीर्थयात्रा और व्यापारिक गतिविधियों के माध्यम से मंदिरों ने नगरीकरण को बढ़ावा दिया और शिल्पकारों, मूर्तिकारों तथा कारीगरों के लिए रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए। इस प्रकार, मंदिर समाज के आर्थिक ढाँचे का एक महत्वपूर्ण अंग बन गए।

गुप्तकालीन स्थापत्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने पूर्ववर्ती परंपराओं को आत्मसात कर उन्हें एक नए और परिपक्व रूप में प्रस्तुत किया। मौर्यकालीन पत्थर निर्माण, बौद्ध स्तूप परंपरा और गांधार कला की बाहरी प्रभावों को समाहित करते हुए गुप्तकाल ने एक विशिष्ट भारतीय स्थापत्य शैली विकसित की। यह शैली आगे चलकर और अधिक विकसित हुई और विशाल मंदिर परिसरों के रूप में सामने आई। गुप्तकाल के बाद, इन स्थापत्य सिद्धांतों ने नागर और द्रविड़ शैलियों में विस्तार पाया, जिससे भारतीय मंदिर स्थापत्य ने अपनी चरम सीमा को प्राप्त किया। मंदिर अब केवल धार्मिक स्थल नहीं रहे, बल्कि वे राजकीय शक्ति और वैधता के प्रतीक भी बन गए, जहाँ शासक अपने अधिकार और धार्मिक संरक्षण को स्थापित करते थे। अंततः, गुप्तकालीन मंदिर स्थापत्य का महत्व इस बात में निहित है कि इसने धर्म, कला और समाज को एक समन्वित रूप में प्रस्तुत किया। इस काल ने प्राचीन परंपराओं और मध्यकालीन नवाचारों के बीच एक सेतु का कार्य किया, जिससे भारतीय स्थापत्य को एक स्थायी और विशिष्ट पहचान मिली। यही कारण है कि गुप्तकाल को भारतीय स्थापत्य का स्वर्ण युग कहा जाता है, जिसका प्रभाव न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण एशिया की सांस्कृतिक और स्थापत्य परंपराओं में लंबे समय तक देखा जा सकता है।

संदर्भ :-

[1] क्रामरिश, एस, द हिंदू टेम्पल (खंड 1), कलकत्ता: यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1996 पृ.3–6.

[2] मिशेल, जी, द हिंदू टेम्पल: एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988पृ.17

[3] अग्नि पुराण, अग्नि पुराण (अनु. एन. गंगाधरन), दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2004 पृ.98–105.

[4] हार्डी, एन, टेम्पल आर्किटेक्चर: फॉर्म एंड ट्रांसफॉर्मेशन, नई दिल्ली: इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, 1995 पृ.21– 24.

[5] मिशेल, जी, आर्किटेक्चर एंड आर्ट ऑफ साउथ इंडिया, कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995 पृ.21–24.

[6] धवलीकर, एम. के, सांची: स्मारकीय विरासत, 2003 पृ.36-42

[7] मिशेल, जी, द हिंदू टेम्पल: एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988 पृ.17

[8] देहजिया, विद्या, इंडियन आर्ट , लंदन: फैडन प्रेस, 1997, पृ.137–140

[9] स्टेला क्रामरिश, द हिंदू टेम्पल, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1946 पृ.152–160

[10] ग्रवाल, एम, गुप्त साम्राज्य का इतिहास. History Discussion. https://www.historydiscussion.net/empires/history-of-the-gupta-empire-indian-history/600

[11] बेकर, एच, शाही संरक्षण और धार्मिक सहिष्णुता: गुप्त काल का प्रारंभिक काल-वाकाटक संस्कृति. रॉयल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल, 20(4), 2010, पृ.461–475. https://doi.org/10.1017/S1356186310000211

[12] गुप्ता, एस. पी, भारतीय कला के तत्व: जिसमें मंदिर वास्तुकला, प्रतिमा विज्ञान और प्रतिमा माप शामिल हैं. D.K. प्रिंट वर्ल्ड लिमिटेड, 2004

[13] मिशेल, जी, द हिंदू टेम्पल: एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988, पृ.90–96

[14] मिशेल, जी, द हिंदू टेम्पल: एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988, पृ.17, 68–72, 90–96

[15] मिशेल, जी, द हिंदू टेम्पल: एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्स, शिकागो: यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1988, पृ. 17, 68–72, 90–96

[16] क्रामरिश, स्टेला, द हिंदू टेम्पल, खंड 1, कलकत्ता: यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1946, पृ.3–6

[17] फ्रांज, हेनरिक गेरहार्ड, फ्रॉम स्तूप टू टेंपल, 1965, पृ.145-160

[18] हार्डी, एडम, इंडियन टेम्पल आर्किटेक्चर: फॉर्म एंडट्रांसफॉर्मेशन, नई दिल्ली: अभिनव पब्लिकेशन्स 1995, पृ. 45-52

[19] हार्डी, एडम, इंडियन टेम्पल आर्किटेक्चर: फॉर्म एंडट्रांसफॉर्मेशन, नई दिल्ली: अभिनव पब्लिकेशन्स, 1995, पृ. 112–118, 201–210

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

एक पत्नी के नोट्स : भारतीय दाम्पत्य जीवन का यथार्थ

डॉ. अनिता कुमारी ठाकुर*
dranitathakur24@gmail.com

सार :

***भारतीय समाज में विवाह के प्रति सकारात्मक सोच बिगड़ रही है। हमारे समाज में पाश्चात्य संस्कृति दिनोंदिन हावी होती जा** रही है और साथ ही हमारी भारतीय संस्कृति की जड़ें हिलने लगी है। ऐसे समय में ममता कालिया जी के 'एक पत्नी के नोट्स' लघु उपन्यास आज की युवा पीढ़ी की मानसिकता को उजागर कर दाम्पत्य जीवन के प्रति एक गहरी निष्ठावान आस्था जगाती है जो वर्तमान समय में भारतीय युवा पीढ़ी के जीवन के लिए एक बेहद जरुरी अध्याय है। यह दांपत्य संबंध को स्थायित्व व प्रगाढ़ता प्रदान करती है। प्रेम के प्रति सच्चे विश्वास, आदर्श और समर्पण का भाव जगाती है जिससे देश की युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति के रंग में रंगे न कि पाश्चात्य संस्कृति के रंग में बहे।*

बीज शब्द :

दाम्पत्य जीवन, दाम्पत्य संबंध, भारतीय संस्कृति, प्रेम का अर्थ, विवाह संबंध, समर्पण, सन्देह, अतृप्ति, आत्मतृप्ति की तलाश, सामाजिक विवाह संस्था।

प्रस्तावना

समकालीन भारतीय समाज में दाम्पत्य जीवन अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा है। वैश्वीकरण और पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने जहां व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आधुनिक दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया है, वहीं पारंपरिक वैवाहिक मूल्यों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ममता कालिया का लघु उपन्यास *'एक पत्नी के नोट्स'* इसी बदलते दाम्पत्य जीवन के यथार्थ को अत्यंत सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करता है। इस कृति में पति-पत्नी संबंधों के भीतर उत्पन्न होने वाले संदेह, अहं, असंतोष और भावनात्मक दूरी जैसे पहलुओं का गहन विश्लेषण किया गया है। संदीप और कविता के माध्यम से लेखिका ने यह स्पष्ट किया है कि दाम्पत्य संबंध केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि विश्वास, समर्पण और पारस्परिक सम्मान पर आधारित एक जीवंत संबंध है। अतः इस शोध का उद्देश्य दाम्पत्य जीवन के यथार्थ, उसकी जटिलताओं तथा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के संदर्भ में उसके पुनर्मूल्यांकन का अध्ययन करना है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध पत्र गुणात्मक (Qualitative) शोध प्रविधि पर आधारित है। इसमें मुख्यतः पाठ-विश्लेषण (Textual Analysis) एवं व्याख्यात्मक (Interpretative) पद्धति का प्रयोग किया गया है। ममता कालिया के लघु उपन्यास *'एक पत्नी के नोट्स'* को प्राथमिक स्रोत के रूप में लेकर दाम्पत्य जीवन के विभिन्न आयामों—जैसे प्रेम, संदेह, अहं, समर्पण एवं संबंधों की जटिलता—का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, द्वितीयक स्रोतों के रूप में संबंधित आलोचनात्मक ग्रंथों एवं स्त्री-विमर्श संबंधी साहित्य का उपयोग कर तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इस शोध में सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों को ध्यान में रखते हुए निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं, जिससे दाम्पत्य जीवन के यथार्थ को समग्रता में समझा जा सके।

* **सैक्ट हिन्दी लेक्चरर (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग) , मटियाबुर्ज कॉलेज, कोलकाता, पश्चिम बंगाल**

'एक पत्नी के नोट्स' समकालीन दौर की बहु चर्चित लेखिका ममता कालिया द्वारा रचित एक लघु उपन्यास है जिसमें उन्होंने भारतीय दांपत्य जीवन के यथार्थ का चित्रण किया है। लेखिका एक ओर जहां भारतीय युवा पीढ़ी की सोच को 'संदीप' के माध्यम से प्रकाश डालती हैं तो दूसरी ओर 'कविता' के माध्यम से मध्यवर्गीय युवती की मानसिक स्थिति का वर्णन पाठकों के समक्ष रखती है। ममता कालिया ऐसी लेखिका है जो भारतीय सामाजिक दांपत्य संबंध को सभी संबंधों से सर्वोपरि मानती है एवं संदीप और कविता के बहाने हम पाठकों को यह संदेश भी देती जाती है कि दांपत्य जीवन में 'शक' या 'संदेह' एक ऐसा जहर है जो घर को बनाती नहीं बल्कि तोड़ती है; साथ ही यह जहर पूरे पत्नी - पति के जीवन को तबाह कर देता है जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज से जुड़ा होता है, समाज से राज्य और राज्य से देश। इस तरह देखा जाए तो देश की विकास यात्रा में दांपत्य जीवन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। जहां दांपत्य जीवन सफल होता है वहां के परिवार भी फलते-फूलते हैं, स्नेह और सानिध्य में दरार नहीं होती है। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों को माता-पिता का स्नेह भरपूर मिलता है, समाज का विकास होता है साथ ही देश को भावी उलझा हुआ कार्यकर्ता प्राप्त होता है।

आज से ही नहीं बल्कि विगत कुछ वर्षों से विवाह संस्था व्यापार - सा हो गया है जिसमें लाभ - हानि को विशेष नजर से आंका जाने लगा है। पश्चिमी संस्कृति भारतीय संस्कृति पर हावी हो रही है जिसका नतीजा यह हो रहा है कि दांपत्य जीवन और विवाह जरूरी नहीं रह गया और यौन संबंध की तृप्ति भी विवाह के साधन नहीं रहा। फलस्वरुप दांपत्य जीवन में विघटन दिखने लगा है, तलाक के केस हमारे सामने हमारे समाज में चार घर छोड़कर हर पांचवें घर में सुनने और दिखने लगा है। यह समस्या हमारे समाज में एक कोढ़ की भांति फैल रहा है। लेखिका ममता कालिया ने दांपत्य जीवन में दरार पड़ने की समस्या के अनेक कारणों को अपने कथा साहित्य में इंगित किया है और दांपत्य संबंध को स्थायित्व रखने के लिए स्त्री पुरुष दोनों को ही अपने अहम (इगो) को तिलांजलि देकर एक - दूसरे को सम्मान देने की बात कही है क्योंकि स्त्री पुरुष दोनों का ही बराबरी जिम्मेदारी है कि अपने परिवार को निर्मित करें और उसे एक आदर्श दांपत्य जीवन की श्रेणी में समाज के समक्ष प्रस्तुत करें ताकि भावी पीढ़ी भी उसे अपना आदर्श के रूप में शिरोधार्य करें नहीं तो भारतीय संस्कृति पूरे विश्व में एक आदर्श एवं सर्वश्रेष्ठ के रूप में माना जाता है, नींव हिल जाएगी साथ ही मनुष्य भावना शून्य, मतलबी, स्वार्थी बन जाएगा। मानवता का विकास एक - दूसरे को सुख देने में है ना कि उसका अहित करने में।

हमारे भारतीय समाज में प्रेम केवल पुरुषों द्वारा होता है। प्रेम की स्वीकृति केवल पुरुषों पर आधारित होती है। पुरुष यदि किसी स्त्री से प्रेम करता है तो उसका उजागर उस स्त्री के समक्ष भी कर देता है। वह स्त्री अपने हृदय को नहीं समझती बल्कि उसे पुरुष के प्रेम को अपनी स्वीकृति देकर मोहर लगा देती है और उसी में अपना सुख खोज लेती है। कविता भी इस उपन्यास के नायक संदीप के प्रेम प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती है और संदीप के प्रेम में अपना अस्तित्व खोजती रहती है। संदीप भी कविता को पाकर अपना आधिपत्य उस पर जमाने लगता है - "स्त्री को अपना मित्र या साथी मानने के बदले पुरुष ने अपने को उसका स्वामी माना है।"[1] यह उसकी भूल कहे या पुरुष मानसिकता की छवि कहे। जैसा कि हमारे पुरुष प्रधान समाज में सदियों से ही ऐसा होता आ रहा है। संदीप की सोच समाज के पुरुष से कुछ अलग नहीं है। वह भी कविता जो कि उसकी पत्नी है, उसके ऐश्वर्या के प्रति एक ईर्ष्या भाव से देखा है, उसे ऊपर नहीं उठने देता है बल्कि वह चाहता है कि उसकी पत्नी का ओहदा उससे कम रहे, नीचे रहे, उससे ऊपर नहीं। वहीं दूसरी ओर कविता जो आज की आधुनिक स्त्री है, शिक्षित है, वह अपने जीवन साथी के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहती है। वह कोई प्रति स्पर्धा नहीं चाहती। वह यह अच्छी तरह से समझती है कि "प्रकृति ने स्त्री और पुरूष को एक - दूसरे के पूरक के रुप में सिरजा है।"[2] इसलिए वह अपने हृदय में केवल संदीप और उसके प्रेम को ही जगह देती है और किसी चीज को नहीं। वह संदीप के प्रेम में भाव - विभोर होकर डूबी रहती है। उसकी फिक्र हमेशा उसे लगी रहती है। उसे संदीप की पसंद ना पसंद का ख्याल हमेशा ही लगा रहता है। जब कविता संदीप से शादी करके उसके घर में आती है तो सारी व्यवस्थाओं को वह अपने हाथों में लेती है। उसकी मां की देखभाल भी करती है और समाज के नियमानुसार अपने घर और परिवार को त्याग देती है।

इस उपन्यास के कथानक में एक मोड़ वहां पर आता है जहां पर संदीप के संकीर्ण हृदय और मानसिकता का परिचय हमें दिखाई देता है। जब कविता को किसी कॉलेज में पुनः नौकरी मिलती है वह भी संदीप की वजह से; वहां उसके हृदय में शक के बीज उगने लगते हैं। जब कविता अपना सारा ध्यान किताबों में लगा देती है क्योंकि घर के काम करने के लिए नौकर चाकर होते हैं और संदीप ऑफिस और फाइलों में उलझ जाता है कविता के लिए उसके पास समय नहीं होता। ऐसे में कविता

क्या करें ? - "हर व्यक्ति का मानसिक ढांचा एक खास तरह की दिनचर्या के लिए बना होता है और कविता का ढांचा अकादमी एकेडमिक जिंदगी के लिए बना था। किताबें पढ़ना लेक्चर तैयार करना सेमिनार अटेंड करना भाषण देना और घंटे खाली लेटना - उसकी जिंदगी के अंतर्गत आने वाली क्रियाएं थी।"[3] संदीप के सहयोग से उसे लेक्चररशिप की नौकरी मिलती है। यह कविता स्वीकार करती है - "समाज बिना स्त्रियों या बिना पुरुषों के चल सकता है। सच तो यह है कि महिलाओं को पुरुषों का साथ और सहयोग चाहिए। उनके रास्ते में औरत होने के नाते जो बाधाएं और रोड़े अटकते हैं, उन्हें हटाने में पुरुषों का सहयोग कैसे मिले, मुख्य चिंता यह है।"[4]

यहां तक कविता को संदीप का साथ बहुत ही अच्छा और सुखमय - सा जीवन प्रतीत होता रहा। लेकिन ज्यों ही शक का बीज संदीप के मन में उत्पन्न होने लगा, उसकी गृहस्थी के छत में छेद होने लगे। संदीप सोचने लगा कि यदि बच्चे उसके जीवन में आ जाता है तो उसका प्यार बंट जाएगा, कविता उसे कम प्यार करने लगेगी। शायद यही वजह है कि कविता और उसकी शादी को कितने वर्ष हो गए लेकिन उसकी गोद अभी तक नहीं भरी। वह अपनी यह इच्छा संदीप से जाहिर भी नहीं कर सकती - "कितना विचित्र था कि वह अपनी कामनाएं अपने ही साथी पर प्रकट नहीं कर सकती थी। उसके पहलू में उसका स्वस्थ सुंदर समर्थ पौरुषमय पति सोया था, पर वह उसे नहीं कह सकती थी, सुनो, मैं मां बनना चाहती हूं। क्या कभी हमारा एक किलकारी भर घर नहीं होगा?"[5] यह कविता स्वयं सोचती है। वह एक भारतीय स्त्री है। मातृत्व के सुख को पाना चाहती है। वह समर्थ समर्थवान स्त्री है। अतः ऐसी मनोकामना अपने पति से चाहती है तो क्या उसकी सोच गलत है? वह अपने स्त्र्योचित गुण मां बनने में खोजती है- "स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है, परंतु यह कर्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों को तोलकर स्वेच्छा से स्वीकार करना चाहिए।"[6] लेकिन संदीप अलग ही मिट्टी का बना हुआ इंसान है। वह एक आदर्श पुत्र है, वह अपने पिता साहित्यकार की इच्छा को पूरी करता है, वह किताबों को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देता है - "उसने किताबों के रास्ते जीवन के सब फैसले किए थे। एम.ए. में विश्वविद्यालय में प्रथम स्थान पाने पर वह लेक्चरर बन सकता था, पर पिता की हार्दिक इच्छा थी कि वह सिविल सर्विसेज प्रतियोगिता में अपनी प्रतिभा परखे।बिना किसी विशेष श्रम के पहली बार में ही संदीप आई.ए.एस. में भी उत्तीर्ण हो गया। पिता को बड़ा संतोष और गर्व हुआ।"[7]

संदीप कविता की सादगी वह गंभीरता पर आसक्त हुआ। वह अच्छी तरह से समझता है - "संदीप जानता था कि इतनी गंभीर सीधी और निश्छल लड़की को गंभीरता, सादगी, आदर्शवाद और आस्था के स्तर पर ही जीता जा सकता है।"[8] वह अपने मकसद में कामयाब भी होता है। वह कविता को अपनी पत्नी बना ही लेता है। उसका प्रेम कविता के प्रति एक निश्चित, नियमित और नियत है और कविता के प्रेम को वह घरेलू संस्करण का ही दर्जा देता है। वह विभिन्न स्त्रियों को अपने रसिक कविता के आधार पर आकर्षित कर लेता है लेकिन अपना मन केवल कविता को ही समर्पित करता है। फिर भी संदीप के ऐसे कई कार्य है जो उसकी दिनचर्या में शामिल है जो कविता को आहत करती है। कविता को लगने लगा कि वह संदीप के हाथों की कठपुतली बनती जा रही है और यही से पति-पत्नी के बीच मन - मुटाव शुरू हो जाते हैं - "कविता उसके हाथ में पड़कर लड़की की बजाय खिलौना होती जा रही थी जिसे खेलने वाला बेहद मूडी था। उसे अपने पति के पद, कद और मद तीनों पर नाज था। उसे वह बेशकीमती हीरे - सा दिखाई देता था, जिसे वह ठीक से न पहन सकती थी, न उठा कर रख सकती थी। उसे लगता दुनिया की सभी सुंदर लड़कियां संदीप पर फिदा है।"[9] कविता किसी लड़की से मेल जोड़ बढ़ाती तो संदीप उसका स्वागत बड़े जोर से करता, उसे आकर्षित कर लेता जिससे वह दुखी हो जाती। संदीप की धारणा अपनी पत्नी के लिए यह थी कि उसे हमेशा खुश और मुस्कुराते रहना चाहिए। यही उसका पत्नी धर्म है। वह यहां पर 18वीं सदी की सोच रखता है जिससे दोनों के बीच अहम का तनाव उत्पन्न हो जाता है - "दोनों के अपने - अपने अहम थे, अपने - अपने वहम थे। वे अपने-अपने क्षेत्र में संपूर्ण थे, शायद इसलिए किसी के आगे झुकना उन्हें बर्दाश्त नहीं।"[10]

एक बार वह कविता के साथ रस्तोगी के घर जाता है तो उसकी मिसेज चाय नहीं पीती और कहती है कि पति के लिए आयु और जन्म जन्म - जन्मांतर में उसे यही पति मिले ; उसने व्रत किया है। तब पढ़ा लिखा संदीप कविता को झकझोर देता है और उसकी अस्मिता पर अपने अहम का चोट देता है - "दरअसल तुम मुझे ऊब चुकी हो। अगले जन्म में तुम परिवर्तन चाहती हो। तुम एक संवेदनाशून्य औरत हो।"[11] वह संदीप के इस व्यवहार से खिन्न होकर उसकी संकीर्ण मानसिकता पर होकर सोचने लगती है - "सती स्त्रियों की कथाएं पुण्य फलदायिनी मानी जाए, उनमें घटित चमत्कार दो पल के लिए हमें आकर्षित भी करें,

मगर हकीकत यह है कि उन जादुई कहानियां से हमें कोई तेज प्राप्त नहीं होता। सेवा टहल का पाठ ही समझ आता है। हम सावित्री कथा पर कतई खरे नहीं उतर पाएंगे क्योंकि हमने आज तक मृत्यु के देवता यमराज को देखा नहीं है। फिर आज के इस वैज्ञानिक युग में शाप और वरदानों की कोई टैक्नीक कारगर होती दिखाई नहीं देती।"[12] कविता उसके इस तरह के मानसिक विचारों से आक्रांत होती है और स्वयं ही टूटटी जाती है ; उसका प्रेम बिखरता हुआ जान पड़ता है और अंतत वह अंतिम निर्णय पर पहुंचती है कि - "उसे लगा, वह एक मनोरोगी के साथ रह रही है। चेहरे पर मन की पीड़ा उभर आई थी।"[13] और वही दूसरी ओर संदीप सोचता है कि उसकी पत्नी अब उसके वश में है - "संदीप को बेहद तसल्ली महसूस हुई। उसे लगा, उसकी पत्नी पूरी तरह उसके कब्जे में है। इस एहसास के साथ-साथ उसे नींद आ गई।"[14] इस तरह देखा जाए तो दांपत्य जीवन में सुख की बजाय दुख को ढोने पड़ते हैं। एक व्यक्ति दूसरे को दुख और आहत देकर स्वयं को खुश करता है। लेकिन शीघ्र ही संदीप को अपनी गलती का एहसास हो जाता है और कविता से माफी मांग कर अपने दांपत्य जीवन को बिखरने से बचा लेता है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि दांपत्य संबंध सभी संबंध से भिन्न है और सभी संबंधों की वह धूरी है जिसमें समर्पण, विश्वास और प्रेम की प्रगाढ़ता से रिश्ते बनते हैं जिसे संभाल कर रखने की जरूरत है। लेखिका भारतीय संस्कृति को पाठकों के समक्ष रखते हुए दाम्पत्य जीवन की यथार्थ का चित्रण किया है। प्रेम वह अमूल्य शक्ति है जिसमें समर्पण की आवश्यकता है और दांपत्य जीवन में प्रेम की सार्थकता होने से पति-पत्नी के संबंध माधुर्य बनते हैं। इससे व्यक्ति का आत्मविश्वास बढ़ता है और साथ ही समाज के समक्ष एक आदर्श निर्मित होता है; विवाह में आस्था पनपती है जो हमारी भारतीय संस्कृति की जड़ है जिससे भावी युवा - पीढ़ी भटकती नहीं है; उनमें यौन - विकृति की समस्या उत्पन्न नहीं होती है बल्कि इससे संतुष्टि ही मिलती है और संतुष्टि की तलाश कहीं और नहीं बल्कि दांपत्य जीवन में ही खोजने की आवश्यकता है। यही जीवन की सत्य पराकाष्ठा है क्योंकि क्षणभंगुर सुख की तलाश में केवल अतृप्ति ही मिलती है और चिर - स्थाई सुख एक - दूसरे को समझने व समर्पण में है। समर्पण अहम को विगलित करता है, यह गुलामी या दासता का प्रतीक नहीं बल्कि यह निष्ठावान प्रेम को प्रगाढ़ता की ओर ले जाता है और आत्मतृप्ति प्रदान करता है।

संदर्भ :

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. *मेरे सपनों का भारत*. प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019, पृ. 192.
2. वही, पृ. 194.
3. कालिया, ममता. *एक पत्नी के नोट्स*. किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 23.
4. शर्मा, क्षमा. *समकालीन स्त्री विमर्श*. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, पृ. 12.
5. कालिया, ममता. *एक पत्नी के नोट्स*. किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 58.
6. वर्मा, महादेवी. *श्रृंखला की कड़ियां*. लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, 2018, पृ. 68.
7. कालिया, ममता. *एक पत्नी के नोट्स*. किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 7.
8. वही, पृ. 10.
9. वही, पृ. 16.
10. वही, पृ. 26.
11. वही, पृ. 31.
12. पुष्पा, मैत्रेयी. *आवाज*. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 120.
13. कालिया, ममता. *एक पत्नी के नोट्स*. किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ. 35.
14. वही, पृ. 10.

Received: 11.02.2026 | Accepted: 13.02.2026 | Published: 30.03.2026

पोस्ट बॉक्स नं.203- नाला सोपारा : किन्नर समाज के प्रति मानवीय संवेदना

रजिता दूबे* **प्रो.यशवंत कुमार वीरोदय†**

rajitadubey1992@gmail.com **dr.virodai@gmail.com**

सारांश (Abstract)

"पोस्ट बॉक्स नं. 203 – नाला सोपारा" किन्नर समाज की सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक स्थितियों का अत्यंत मार्मिक चित्रण करने वाला उपन्यास है। यह उपन्यास पत्रात्मक शैली में रचित है, जिसमें विनोद उर्फ बिन्नी के पत्रों के माध्यम से किन्नर जीवन की पीड़ा, संघर्ष, अस्मिता और मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास यह दर्शाता है कि किस प्रकार समाज की संकीर्ण मानसिकता और सामाजिक कुरीतियाँ किन्नर व्यक्तियों को उनके परिवार और मुख्यधारा से अलग कर देती हैं।

बिन्नी के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि किन्नर भी सामान्य मनुष्यों की भाँति प्रेम, सम्मान और आत्मसम्मान की आकांक्षा रखते हैं। शिक्षा, श्रम और स्वाभिमान के माध्यम से वह समाज में अपनी पहचान स्थापित करने का प्रयास करता है तथा किन्नर समुदाय के भीतर व्याप्त रूढ़ियों और भिक्षावृत्ति जैसी प्रवृत्तियों का विरोध करता है। उपन्यास में पूनम जैसे पात्रों के माध्यम से सामाजिक शोषण, यौन हिंसा और राजनीतिक स्वार्थों का भी यथार्थ चित्रण किया गया है।

यह कृति न केवल किन्नर समाज के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है, बल्कि समाज और शासन दोनों से संवेदनशीलता, समानता और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने की अपेक्षा भी करती है। अंततः यह उपन्यास सामाजिक परिवर्तन और समावेशी दृष्टिकोण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

किन्नर समाज, मानवीय संवेदना, सामाजिक बहिष्कार, लैंगिक अस्मिता, हिंदी उपन्यास

प्रस्तावना :

पोस्ट बॉक्स नं. 203- नालासोपारा किन्नरों के पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों को दर्शाते हुए,एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है। पत्राचार शैली में लिखे गए इस उपन्यास में अपनी मां के प्रति बेटे के प्रगाढ़ प्रेम का अद्भुत चित्रण है। बिन्नी द्वारा लिखे गए पहले ही पत्र ने उसके जीवन की पीड़ा का संकेत देते हुए, मानवीय संवेदना पर एक जोरदार प्रहार किया। उत्सुकता बढ़ती गई और जिज्ञासा भी यह जानने की, कि एक किन्नर का जीवन कैसा होता है पहले तो वह एक अबोधबालक ही होता है ना? उसे स्वयं ही पता नहीं की किस अपराध के कारण उसे उसकी जिंदगी,उसकी जननी से अलग ही नहीं, हमेशा के लिए अलग किया जा रहा है। वह कौन सा अपराध जिसकी इतनी कठोर सजा मिली और हक किसने दिया इतनी असहाय पीड़ा देने के लिए। यह हक तो केवल अमानवता ही दे सकती है। 8 वर्ष का बालक इतना भी परिपक्व नहीं होता कि अपनी माँ से अलग

---

* **शोधार्थी, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय. लखनऊ**

† **हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, डॉ शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय लखनऊ**

होने की पीड़ा सहे। विनोद द्वारा लिखा गया एक एक पत्र पाठक की संवेदनाओं के ऊपर प्रहार किए बिना नहीं रहता। पत्रों के एक-एक शब्द पाठक को विनोद उर्फ बिन्नी से जोड़े रखते हैं।

सामाजिक कुरीतियों से बेबस परिवार जाने अनजाने अपने बिन्नी को असहनीय पीड़ा दे बैठता है। जिसे बिन्नी जानता है। अपनी मां से नाराजगी भी दिखाता है। बिन्नी के एक-एक पत्र असहनीय पीड़ा से पीड़ित शब्द लिए हुए हैं, जिनके स्मरण मात्र से हृदय द्रवित हो उठता है। विनोद की बेबसी देख, समाज के क्रूर रूप के स्पष्ट दर्शन होते हैं जो समाज की परिभाषा को बदल देता है। बिन्नी को जीवन की कठोर परिस्थितियों ने समय से पहले ही परिपक्व कर दिया। अपनी बा को पत्र लिखते हुवे बिन्नी अपनी आठ वर्ष तक की अवस्था जो उसकी प्रारंभिक शिक्षा का दौर था। उसमें वह स्वयं को प्रमाणित करता है कि वह किसी भी मायने में अपने सहपाठियों से कम नहीं है। चाहे खेल-कूद हो या पढाई-लिखाई सब में अव्वल ही रहता है। अपने परिवार के प्रति विनोद का प्रेम प्रगढ़ है। इसकी पुष्टि तो उसके पत्रों से हो जाती है। परिवार द्वारा निष्ठुर व्यवहार के बावजूद अपनी मां से पत्र में परिवार के पूरे सदस्यों के प्रति अपनी चिंता को रेखांकित करता है। विनोद को उसकी परिस्थितियां बार-बार उन कारणों को समझने के लिए विवश करती हैं। जिसके कारण वह परिवार और समाज द्वारा त्यागा गया। उसे इस परित्याग का कोई पुख्ता कारण समझ नहीं आता।

विनोद कहता है- "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़का मात्र वही निचला हिस्सा भर हो। तुम्हारे हाथ-पैर नहीं है,.........सब वैसा ही है जैसा औरों के है। यौन सुख लेने-देने से वंचित हो तुम ,वात्सल्य सुख से नहीं। "यह शब्द सामाजिक व्यवस्था के दोहरे मापदंड को उजागर करते हैं। मानव शरीर में केवल लिंग को ही सर्वोपरि मान लेने वाली संकुचित मानसिकता पर भी कई सवाल खड़े हो जाते हैं। विनोद के इस वाक्य द्वारा समाज की मुख्यधारा को यह समझना ही होगा कि प्रकृति द्वारा किए गए कार्यों में उन्हें यह निर्णय लेने का अधिकार किसने दिया कि लिंग को ही सर्वोपरि माना जाए, मुख्यधारा में या कहें सामाजिक रूप से जुड़े रहने के लिए। बिन्नी जैसे बच्चे जो शिक्षा में अव्वल हैं और उज्जवल भविष्य के सपने उसके बालसुलभ मन में पनप रहे हो किंतु इतनी सी शारीरिक अक्षमता आजीवन उसके पूरे वजूद पर हावी हो जाती है।

चित्राजी ने विनोद के रूप में किन्नर समाज के समक्ष एक ऐसा उदाहरण खड़ा किया है जो विषम परिस्थितियों के बावजूद अपने उत्थान ही नहीं समाज के उत्थान के लिए भी समाज की नकारात्मकता के खिलाफ विद्रोह के लिए तैयार हैं। विनोद आठवीं कक्षा तक ही शिक्षा पूरी कर पाता है। जब किन्नर समाज में जबरन ढकेल दिया जाता है तब भी तमाम यातना और पीड़ा के बाद भी विनोद शिक्षा के प्रति उदासीन नहीं होता। किन्नर समाज में रहते हुए भी शिक्षा को आगे बढ़ाने के सार्थक प्रयास में जुटा रहता है। जिसमें पूनम के साथ से प्रयास को बहुत बल मिलता है इतनी विषम परिस्थितियों में भी विनोद की शिक्षा को पूरा करने के पीछे की मंशा उसके शब्दों से स्पष्ट है-" पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है पूर्णविराम कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए।" इन शब्दों में कितनी बेबसी है। 'मुक्ति', यह शब्द मानवता के मुंह पर जोरदार थप्पड़ है। सामाजिकता के नाम पर इतनी अमानवीयता, कि समाज में रहने वाला एक वर्ग मुक्ति के लिए तड़प रहा है। यह शब्द मुक्ति कई प्रश्न खड़े करता है मुख्यधारा के समक्ष, जवाबदेही किसकी है? समाज में व्याप्त कुरीतियों को जो समाज की मुख्यधारा द्वारा ही इन्हें दिया गया है। विनोद स्वीकार नहीं करता अपितु उन्हीं में रहकर उनका विरोध कर अपना पथ अलग चुनता है। जिसके कारण उसी अपने समाज के द्वारा उसे तमाम विरोधों का सामना करना पड़ता है। वह गाड़ियों को धोकर अपने जीवन निर्वाह की शुरुआत करता है तथा अपने अन्य साथियों को भी मेहनत कर स्वाभिमान से कमाकर जीवन जीने का सलाह देता है। वह भिक्षावृत्ति, नाचने-गाने आदि प्रवित्तियों को कभी नहीं अपनाता। विनोद को अपने समुदाय एवं साथियों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले अभद्र भाषा एवं गाली से सख्त नफरत थी। उसका मानना था कि उसके उचित व्यवहार से उसके जैसे लोगों को समाज की मुख्यधारा में स्वीकृति की संभावना बढ़ेगी। विनोद के विचारों से प्रभावित हो उसकी साथी पूनम भी उसके द्वारा बताए मार्ग पर चलना स्वीकार लेती है। खुद को बदलती भी है जिसे देख विनोद को प्रसन्नता होती है।

किन्नर समाज की कुरीतियों के विषय में थोड़ी चर्चा कर लेते हैं। सबसे पहले प्रश्न-आई कहाँ से ये कुरीतियाँ? इसका उत्तर मुख्यधारा से बेहतर कौन दे सकता है। जिन्होंने लैंगिक विकलांग बच्चे को ना ही परिवार और ना ही सामाजिक का हिस्सा समझा,तो अब बात स्पष्ट है कि बच्चा किन्नर समाज जो हाशिए का समाज है,उसे ही अपना परिवार बनाने को विवश

हो जाएगा। जहां किसी भी प्रकार की सामाजिक स्वतंत्रता नहीं है। पेट पालना भी मुश्किल है। कैसी विडंबना है, हम मानव होते हुए भी इनके प्रति अमानवता का व्यवहार कैसे कर सकते हैं। समाज को जागरूक होना ही होगा केवल समाज ही नहीं सरकार के साथ-साथ व्यक्तिगत रूप से हमें इनके प्रति अपनी दृष्टि को बदलना होगा। तभी इस हाशिये के समाज में व्याप्त भिक्षावृत्ति, अपराधिक गतिविधियां एवं अन्य कई और असामाजिक प्रवृत्तियों पर रोक लग पाएगी। यह सब तभी संभव हो पाएगा जब मुख्यधारा इसके प्रति सहानुभूति रखें और समाज के सभी विभागों में इनके प्रवेश को स्वीकृति मिले। इन्हें भी जीवन को सामान्य ढंग से जीने की स्वतंत्रता मिले। इसके साथ ही किन्नरों के पथ भ्रष्ट सरदार या गुरु परम्परा को भी समाज के प्रति अपनी दृष्टि बदलनी होगी। इनको भी मुख्यधारा से जुड़ने के प्रति कदम बढ़ाना आवश्यक है।

हमारे समाज की इस समुदाय के प्रति संकीर्ण मानसिकता भी इस समुदाय के उन लोगों के लिए जो समाज की मुख्यधारा से जुड़ कर श्रम करते हुए स्वाभिमान के साथ अपना जीवन जीना चाहते हैं कई कठिनाइयां पैदा करती हैं। विनोद के विचारों से प्रभावित पूनम भी जब गाड़ियों को धोने का कार्य प्रारंभ करती है तो उसे भी समाज की स्वीकार्यता को लेकर कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आसपास के लोगों के अभद्र व्यवहार के कारण पूनम गाड़ी धोने का कार्य छोड़ना चाहती है किंतु विनोद उसको उत्साहित करता है कि ऐसे व्यवहारों को अनदेखा कर आगे बढ़ो।

उपन्यास की पात्र पूनम के माध्यम से लेखिका ने समाज के रसूखदार लोगों को बेनकाब करने का प्रयास किया है। कैसे पूनम जैसे लोग समाज के कुछ अय्याशों की पाश्विकता का शिकार बनते हैं। विधायक के फार्महाउस पर जन्मदिन की पार्टी के उपरांत विधायक जी के अपने ही भतीजे और उसके अन्य चार दोस्त पूनम के साथ कितनी बेरहमी से सामूहिक बलात्कार करते हैं किंतु इतने घोर अपराध के करने पर भी अपराधियों को कोई सजा नहीं होती। यहां तक कि यह बात पुलिस तक भी नहीं पहुंचाई जाती है। ऐसा केवल तथाकथित सम्मानित और रसूखदार परिवार से होने के कारण सारे मामले को एक नया रूप देकर दबा दिया जाता है। इस पूरे प्रकरण को महज बच्चों की गलती का जामा पहना दिया जाता है। पूनम के साथ हुए अन्याय पर विशेष रूप से उनके समुदाय की चुप्पी यह दर्शाता है कि यह हाशिये का समुदाय समाज में कितना बेसहारा और अकेले है।

ये समुदाय क्यों लिंग दोषियों को अपने समुदाय में शामिल करने की जिद पर अड़े रहते हैं, दरअसल –" यह भीतर से खोखला और डरे हुए लोगों की जमाते हैं। ये चाहते हैं,जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है, उसी रूप में सही उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो। ढूंढते फिरते हैं,जननांग विकलांगों को इसलिए गुरु परंपरा से दीक्षित कर बनाए रखना चाहते हैं, उस एकता को जो उन्हें आपस में जोड़े रहे। "

यह तर्क उनके इस कृत्य को किसी भी रूप में न्याय नहीं देता। इस समुदाय की इस सोच के कारण ही जबरन बिन्नी को उसके परिवार से अलग होना पड़ता है जबकि बिन्नी का परिवार ऐसा नहीं चाहता था। वह अपने बेटे को साथ रखने में सहज था। अतः इस समुदाय को भी अपनी इस सोच को बदलना होगा।

इस समुदाय ने- "अपने मानसिक अनुकूलन को ही अपनी नियति मान लिया और हाशिए के उस नर्क की शर्तों को अपने जीवन का पर्याय। ....क्यों नहीं तोड़ने की कोशिश की उन लोगों ने उन शर्तों को, कि नहीं जिएंगे हम उस तरह से जिस तरह से जलाए रखने की साजिश रची हुए हैं। अपने मनोरंजन और खिलंदडेपन के रस को जीने के लिए। ......मूर्ख नहीं आंखें खोल पा रहे हो कि तुम ना माधुरी दीक्षित हो ना रेखा। " अपने उत्थान के लिए उन्हें इस भ्रम से मुक्ति पाना आवश्यक है। राजनीति पार्टियां अपने लाभ के लिए किस प्रकार इस समुदाय का भी दुरुपयोग करती हैं। यह भी विनोद और पूनम का विधायक जी के द्वारा सहज रूप से इनकी सहायता के माध्यम से देखा गया। पूनम की सिफारिश पर बड़ी ही आसानी से विनोद की भरपूर सहायता विधायक जी द्वारा होती है। जैसे कंप्यूटर परीक्षण में विनोद का दाखिला और फिर विधायक जी के यहां नौकरी और रहने का प्रबंध आदि। विनोद और पूनम इस बात से अनभिज्ञ होते हैं कि उनका भी राजनीति में भरपूर इस्तेमाल होने जा रहा है। इस बात का एहसास विनोद को तब होता है,जब उसे चंडीगढ़ भेजकर किन्नर समुदाय को संबोधित करने, आरक्षण की मांग करने एवं सरकार से लड़ने की सलाह दी जाती है। परंतु विनोद बड़ी ही समझदारी से अपने समुदाय को लेकर सरकार की मंशा को पूर्ण नहीं होने देता। वह किन्नरों को आरक्षण किसी तीसरी श्रेणी में ना देकर बाकी लोगों की तरह सामान्य श्रेणी में ही दिया जाए ताकि किन्नर और मुख्यधारा के बीच अंतर को कम किया जा सके। किन्नरों के हित में खड़े विनोद को राजनीति के भेड़िए केवल इसलिए मरवा देते हैं कि उनके स्वार्थ की पूर्ति न होकर, किन्नरों का भला होगा। विनोद के मात्र

आरक्षण के प्रावधान से ही इनका भला संभव नहीं है। इस दिशा में कई कानून बनाए जाएं तथा समाज को जागरूक करने की आवश्यकता है- "कन्या भ्रूण हत्या के दोषी माता-पिता अपराधी हैं उससे कम दंडनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग।"

सरकार को चाहिए कि वह ऐसे कानून की व्यवस्था करें। जिसकी मदद से जननांग दोषियों को परिवार द्वारा एवं समाज द्वारा परित्याग किए जाने की प्रक्रिया पर ही रोक लगाई जा सके। परिवार के लोगों को प्रोत्साहन एवं अवसर प्रदान किया जाए, उन्हें संरक्षण दिया जाए तथा उससे संबंधित कानून का निर्माण हो। यह आशावादी सोच और इस ओर कदम बढ़ाने का साहस इस उपन्यास की मुख्य देन है। यह उपन्यास इस समुदाय को केवल दीन-हीन नहीं बने रहने को कहता। इस समुदाय में अपनी इच्छा शक्ति एवं समय रहते समाज की मुख्यधारा के लोगों की सोच में आने वाले बदलाव के चलते इनकी परिस्थिति में सुधार आवश्य आएगा।

बिन्नी की मां का यह कथन –"समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते, पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा, वक्त के साथ नजरिया बदलेगा।" इसी बदलाव की उम्मीद को दर्शाते विनोद के एक-एक पत्र में लिखे गए, उसके विचार प्रत्युत्तर में उसकी 'बा' वंदना की मनोदशा। अपने बिन्नी के प्रति उसका प्रेम, विनोद का अपनी मां को समय पर पत्रों का उत्तर ना देने पर उलाहना देना।

समाज के समक्ष एक माँ की विवशता, जिसके कारण वह अपनी संतान को त्याग देती है अंततः अपनी गलती का पश्चाताप कर अपनी संतान की घर वापसी के लिए अखबार में इश्तहार देना। विनोद को उसके अन्य भाइयों के समान अधिकार देना। समाज के समक्ष एक नई मिसाल प्रस्तुत करता है। यह एक नए परिवर्तन की आकांक्षा है। आज भिन्न-भिन्न माध्यमों से किन्नर समाज की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदि परिस्थितियों को सुधारने का प्रयास किया जा रहा है। मेरी दृष्टि में यह सभी प्रयास वास्तविक धरातल पर जब तक नहीं आएंगे तब तक संतोषजनक सुधार संभव नहीं है। हमें व्यक्तिगत स्तर पर इनके नारकीय जीवन के प्रति संवेदनशील होकर सुधार हेतु आगे बढ़ना होगा।

निष्कर्ष :

यह उपन्यास एक प्रश्न है कि जब हम आपसे भिन्न नहीं है, किसी भी मायने में, हममें भी आप ही की तरह संवेदना है, ममता है, एक अपना दृष्टिकोण है, अपना एक नजरिया है हर चीजों के प्रति, शारीरिक और मानसिक हर प्रकार से आप से कम समकक्ष नहीं है तो फिर सिर्फ जननांग दोस्त की इतनी नारकीय सजा भुगतने के लिए हम क्यों इतने विवश हैं ?

संदर्भ

1. Butler, Judith. *Gender Trouble: Feminism and the Subversion of Identity*. Routledge, 1990.
2. भीष्म, महेन्द्र. *मैं पायल*. वाणी प्रकाशन, 2016.
3. माधव, नीरजा. *यमदीप*. राजकमल प्रकाशन, 2009.
4. मुद्गल, चित्रा. *पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा*. सामयिक प्रकाशन, 2016.
5. सौरभ, प्रदीप. *तीसरी ताली*. वाणी प्रकाशन, 2011.

Received: 12.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

डॉ. मधु धवन के नाटक "आज की पुकार" में समकालीन यथार्थ का चित्रण

डॉ. स्वाती सुरेश खळेकर*

khalekar.s2@gmail.com

सार (Abstract)

डॉ. मधु धवन का नाटक "आज की पुकार" 21वीं सदी के भारतीय समाज की जटिलताओं, विरोधाभासों और नैतिक संकटों का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करता है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य नाटक में निहित सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक समस्याओं का विश्लेषण करना है। नाटक में आधुनिकता के प्रभाव से उत्पन्न मूल्य-संकट, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, शिक्षा की विडंबना तथा मानवीय संवेदनाओं के ह्रास को गहराई से प्रस्तुत किया गया है। यह नाटक केवल सामाजिक यथार्थ को उजागर नहीं करता, बल्कि समाज को आत्ममंथन के लिए भी प्रेरित करता है।

मुख्य शब्द (Keywords):

समकालीन यथार्थ, भ्रष्टाचार, शिक्षा, बेरोजगारी, नैतिक पतन, आधुनिक समाज

प्रस्तावना :

डॉ. मधु धवन का नाटक आज की पुकार के माध्यम से 21वीं शताब्दी अपनी अनेक असाधारण विशेषताओं की गुणवता लिए हुए है। विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति, औद्योगिकी और प्राविधिक यंत्रों को चकाचौंध कर देने वाले विकास मानव-संसार के उपयोगी साधन..। हम सब बखूबी इससे परिचित हैं और खूब फायदा उठा रहे हैं। अक्सर जो चीज समक्ष नहीं होती, यह कहूँ जो विगत अवधि में इतनी मुखर हो सामने नहीं आयी थी- वह है परिवर्तन की स्वचालित गति की स्वायत्तता, जो अपने अन्तर्निहित नियमों द्वारा परिचालित नहीं होती। मानव उसका संचालक अवश्यक है किन्तु एक हद तक। तदुपरान्त परिवर्तन का संवेग उसकी इच्छा और संकल्प शक्ति पर नहीं अपितु स्वंय अपनी ऐच्छिकता से चलता जाता है। घटनाएँ घटती हैं इसलिए नहीं कि मानव उसे चाहता है, इसलिए भी नहीं कि उपयोगी और वांछनीय है, अपितु वे अपनी होने की परवशता में आबद्ध है। आकलन-प्राक्लन करती मेरी दृष्टि यह देखती कि एक उपमहाद्विप जो कभी वेदों के अथाह मन्त्रों से समस्त विश्व को ओोकित करता था, सृष्टि के रहस्य जिसके उपनिषदों के चिन्तन में प्रत्यक्ष हो उठते थे, जिसने सर्वदा विश्व को ज्ञान के आलोक से संपृक्त किया। आज एकाएक पतन की ओर रुख किये है। क्यों परिवर्तित हो गया है?

आज अपने देश की सीमाएँ इतनी अधिक संवेदनशील, असन्तोषजनक, ध्वंसकारी हैं कि हिंसा, आतंक, शोषण-उत्पीड़न, ड्रग-सेवन, सामूहिक बलात्कार, अपहरण, खून-खराबा आदि वैश्विक समस्याएँ बनी हुई हैं। ऐसे विषाक्त वातावरण मे आचरण की निर्मलता पर बल देना किसी मन्दिर, मठ, गिरजाघर या चैत्यालय के उन उपदेशों जैसे लगते हैं, जिस पर उसका उपदेष्टा भी उसके अनुरुप पवित्र आचरण सम्भवतः न कर सके। इस नाटक में शासन और सत्ता के मनमाने व्यवहार से देश के पथभ्रष्ट होने का संकेत किया गया है। सामाजिकों की विवशता भीतर से हाहाकार की पुकार कर रही है। यह भी समक्ष उभर कर आ रहा है कि आज की पीछी सजग है।

''लेखिका कहती है की- मेरा प्रश्न आचरण की निर्मलता का है। परिवर्तन की दिशा उसकी वास्तविक चाह और नीयत की अम्लानता का है। हमारी पीढ़ी को भ्रष्टाचारी रावणों से लड़ना है।''[1]

---

* **सहायक प्रोफ़ेसर, भारतीय जैन संघटना कला विज्ञान, वाणिज्य वाघोली, पुणे–412207**

कामुकता

मधु धवन के आज की पुकार में ''कौन... हो अरे छोड़ो मुझे... (बचाओ-बचाओ की आवाजें उठती हैं फिर बढ़ती जाती हैं। पर कोई नहीं आता। जोर से ठहाका मारकर हँसने की आवाजें।)

एक: कोई नहीं आएगा।
पिता: तुम्हें... (बीच में ही)
दूसरा: चुप कर बुड्ढे बड़ी खूबसूरत लौंडिया पैदा की है।

(माँ-पिता-बेटी की दिल दहला देने वाली आवाजें। बन्द कमरे सब चीखते रह जाते हैं वे सामूहिक बलात्कार कर चले जाते हैं।'') [2] यहाँ पर लेखिक भावना शुन्य दृश्य को व्यक्त किया है।

शिक्षा:-

मधु धवन का नाटक आज की पुकार में शिक्षा का महत्व बाताया है-

दयानिधि: आप यदि शहर जाकर किशून के बेटे रामप्रकाश को नहीं छुड़ाते तो...
(रामलाल, गंगाधर भी साथ हैं)

मास्टरजी: इसीलिए तो कहता हूँ तुम सब पढ़ना-लिखना सीख लो। सब अनथों का मूल अशिक्षा और लोभ है। रामप्रकाश फँसा कैसे...?... लोभ और अशिक्षा के कारण।''[3]

धन की लालस:-

डॉ. मधु धवन का नाटक आज की पुकार में किसान की व्यथ को व्यक्त किया है। जिसमें अच्छी फसल के लिए जो स्प्रे से अधिक फसल के लिए उपयोग किया जाता है-

''रामलाल: ऐसा...(रुककर) अनर्थ हो रहा है... आज जगह-जगह पर दवाखाने खुले रहे हैं। कभी इस ओर ध्यान दिया है...। विज्ञापनों में कई तरह के रोगों और दवाइयों की जानकारी दी जाती है। अच्छी फसल के लिए जो स्प्रे गुजरात में बनाई जाती थी, वह बड़ी अच्छी थी। उसके बाहर इनग्रीडिन भी लिखा होता है। वहाँ के वैज्ञानिकों ने बिक्री बढाने के लिए उसमें मिलाये जाने वाली सामग्री दुगुनी कर दी है जिसके चलते लोग कैंसर के शिकार हो रहे हैं। कैंसर पीड़ितों के लिए बीकानेर में कैंसर अस्पताल खुला और पंजाब से स्पेशल कैंसर ट्रेन बीकानेर के लिए हफ्ते में दो बार चलती है। (रुककर) मैं नहीं चाहिए कि मेरे खेत की फसल से लोगों का इतना नुकसान हो... मुझे ऐसी कमाई नहीं चाहिए... नहीं चाहिए...(रोता है।)''[4]

शिक्षित व बेरोजगारी:-

डॉ. मधु धवन ने 'आज की पुकार' नाटक में 21 वीं सदीं में शिक्षा की कठिनाइयाँ को बाताया है-

मास्टर जी: स्वगत मैं इनसे शिक्षा की बातें तो करता हूँ पर आज बढ़ती शिक्षा की समस्याएँ,
छात्रों की कठिनाइयाँ... माता-पिता की मनोवैज्ञानिक दशा देखते हुए कैसे कहा
सकता है कि देश उन्नति कर रहा है... मध्यवर्ग के लिए उच्च शिक्षा संकट है। तभी
तो मैं गाँव में ही पड़ा हूँ... मैंने भी कितनी झेला... शिक्षा में प्रयोग और परिर्वन
सदी होते ही हैं गुणात्मक विकास का लक्ष्य बहुत दूर ही रहा। शिक्षा के प्रचार-
प्रसार हेतु केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार मंडल, शिक्षा आयोग, अन्तर राष्ट्रीय शिक्षा
सम्मेलन गठित हुए, लेकिन शिक्षकों का वेतनमान, पद, प्रतिष्ठा कहाँ सुधरी...???''[5]

बेकारी

डॉ. मधु धवन का नाटक आज की पुकार में नेताओं भ्रष्टचार को उजागर किया नेता के पी.ए. द्वारा पैसे की मागा-

पी. ए. :- चलो , अच्छा चुनाव आ रहे हैं। दस पेटी परसों तक भेज दो...

दया :- जी अच्छा, पर मि. जी दस पेटी किस चीज की बनी हुई.... लकड़ी की, टिन की... और उसका साइज।

पी. ए. :- (हँसता है) बरखुदार, दस पटी का मतलब हांता है (रुककर) दस लाख... तुम परसों तक तैयार रखो।''[6]

राजनीति और अवसरवादिता:-

डॉ. मधु धवन का नाटक आज की पुकार में देश के राजनीति के बारे में लिखा है-

गंगाधर : न सरकार ठीक, न राजनीति ठीक, न सड़के ठीक, अदालतें ठीक, न स्कूल-कालेज, न आवास, न बाजार भाव ठीक, न सुरक्षा, न यातायात... भारत मिसाल बन रहा है तो बईमानी, हरामखोरी, लूट-घूसखोरी.... में अव्वल।

मास्टरजी: अगर देश अघोषित गृहयुध्द में फँस गया तो मुझे आश्चर्य न होगा क्योंकि हर नागरिक अब पेरेशान है। गुस्से में वह हिंसा, उपद्रव पर उतर सकता है... भारत में लोकतन्त्र होते हुए भी इसमें हजार छिद्र हैं।''[7]

निष्कर्ष:

डॉ. मधु धवन जी ने 21 सदीं के जीवन के यथार्था को चित्रित किया है। मनुष्य केवल भौतिक सुख के पीछे भाग रहा है। उसके लिए वह हर नीतियों को छोड़कर जीवन जीने के लिए तैयार है। वह केवल अपने सुख से ही मतलब है। देश में व्याप्ता बेरोजगारी, गौरकानूनी काम, जितने कम मेहनत उतनी ज्यादा पैसे को कमने के गलता तरके को उन्हेंने दिखाया है। साथा में ग्रामीण और शहरी दुनियों के अतंर को भी स्पष्ट किया है। नेताओं, शासन के द्वारा किया जाने वाले भ्रष्टचार को भी उन्हेंने नाटके द्वारा उजागर किया है। डॉ. मधु धवन का *"आज की पुकार"* समकालीन समाज का दर्पण है। यह नाटक हमें यह सोचने पर विवश करता है कि—

- क्या केवल भौतिक विकास ही प्रगति है?
- क्या नैतिक मूल्यों के बिना समाज टिक सकता है?

नाटक का संदेश स्पष्ट है कि यदि समाज को संतुलित और मानवीय बनाना है, तो शिक्षा, नैतिकता और जिम्मेदार नागरिकता को प्राथमिकता देनी होगी।

संदर्भ:-

1. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. अपनी बात से
2. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 34
3. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.15
4. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.12-13
5. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.21
6. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.33
7. धवन, मधु. (2014). *आज की पुकार*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.18

Received: 12.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

रामचरितमानस में लोक संस्कृति और लोक संघर्ष

प्रभाकर प्रकाश[*]
prabhakarprakash0@gmail.com

प्रो. बज्रांग प्रताप केसरी[†]
bajrangpratap@gmail.com

शोध-सार :

प्रस्तुत शोध आलेख मध्ययुगीन काव्य श्रेणियों-राज्याश्रयी, धर्माश्रयी और लोकाश्रयी-के आलोक में गोस्वामी तुलसीदास के काव्य, विशेषकर 'रामचरितमानस' का विश्लेषण करता है। लेखक के अनुसार, तुलसीदास का काव्य शास्त्र-सम्मत होने के साथ-साथ प्राथमिक रूप से लोकाश्रयी है, जो लोक के गर्भ से उपजा और उसकी संचेतना से पल्लवित हुआ है। आलेख स्पष्ट करता है कि तुलसीदास ने काम, क्रोध, मद और लोभ जैसे विकारों का पूर्ण त्याग करने के बजाय उन्हें मर्यादा में बांधकर सामाजिक विकास का साधन बनाया।

लेखक ने प्रतिपादित किया है कि 'रामचरितमानस' केवल भक्ति ग्रंथ नहीं है, बल्कि यह लोक संघर्ष का जीवंत दस्तावेज़ है, जहाँ साधारण जनता सुखी और समृद्ध जीवन के लिए संघर्ष करती है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं (कवितावली, विनय पत्रिका) के माध्यम से तत्कालीन समाज की आर्थिक बदहाली, दरिद्रता (जिसे उन्होंने 'दारिद-दसानन' कहा है) और शासक वर्ग की संवेदनहीनता पर कड़ा प्रहार किया है। अंततः, आलेख यह निष्कर्ष निकालता है कि तुलसीदास ने एक ऐसे 'रामराज्य' की कल्पना की जो समता, विज्ञान और न्याय पर आधारित हो, जहाँ कोई दरिद्र या दुखी न हो।

बीज शब्द :

लोक संस्कृति, लोक संघर्ष, लोकाश्रयी काव्य, मर्यादा, रामराज्य, दरिद्रता, समता और लोक नीति।

मूल आलेख :

आश्रय की दृष्टि से विचार करने पर मध्ययुगीन काव्य श्रेणियां प्रमुख रूप से दिखाई पड़ते हैं-राज्याश्रयी काव्य, धर्माश्रयी काव्य और लोकाश्रयी काव्य।

समस्त मध्ययुगीन काव्य को मोटे तौर पर इन तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। यद्यपि यह विभाजन मोटे तौर पर विवेचन की सुविधा की दृष्टि से ही किया जा सकता है, किंतु ऐसे काव्य भी मध्य युग में प्रभूत लिखे गए जिन्हें हम एकांतिक रूप से पूरी प्रामाणिकता के साथ इन श्रेणियों में बद्ध कर सकते हैं; किंतु ऐसे काव्य भी काम नहीं लिखे गए जिनमें इन श्रेणियों की अंतर क्रिया या संक्रमण आधारित भाव भूमि दिखलाई पड़ती है। अगर हम आदिकाल और रीतिकाल के दरबारी काव्य पर ही दृष्टि डालें तो उनमें मोटे तौर पर राज्याश्रयी होने के बावजूद विद्यापति के काव्य में धर्माश्रित और लोकाश्रित होने के भी पर्याप्त प्रमाण हैं। दूसरी और पृथ्वीराज रासो में भी लोकाश्रयी काव्य के अनेक चिह्न विद्यमान हैं। इसी तरह पूर्व मध्यकाल का प्रायः सारा साहित्य जो एक एकांतिक रूप से लोकाश्रित दिखता है और 'संतन को कहां सिकरी सो काम' की चेतना से अनुप्राणित दिखता है; वह भी धर्म के आश्रय की संजीवनी प्रकार अमर और श्रेष्ठ हो गया है। वह लोककाव्य की अति

[*] **शोधार्थी, हिंदी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार**

[†]**शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार**

साधारण आदिमता एवं परिष्कार से धर्म का आश्रय पाकर ही उठकर मुक्त हो जाता है। कबीर, जायसी, सूर और मीरा को छोड़ भी दे तो स्वयं तुलसी जैसे शास्त्र पारंगत विलक्षण पंडित का काव्य भी प्राथमिक रूप से लोकाश्रयी ही दिखता है। दर्शन और भक्ति के द्वारा धर्माश्रम का करावलंब पाकर वह खड़ा होता है, किंतु मूल रूप से लोक के गर्भ से ही उपजता एवं उसी की संचेतना से पल्लवित और पुष्पित होता है।

लोकभावना हृदय का सरल कोमल और निश्छल भावोच्छवास है जो जड़ चेतन सभी को अपनी तरलता से सिक्त कर देता है। लोक सदैव 'मति का मोरा' रहा है। वह विश्वासों पर जीवित रहा है। विश्वासों के अंधे हो जाने पर भी वह प्रायः उनसे चिपक रहा है इसलिए वेद के समानांतर 'लोक की लीक'बराबर चलती रही है। लोक साहित्य अपनी सहज निश्छलता के कारण सर्वदा सहृदय समवेद्य रहा है। वह अपनी भावुकता में अपराजेय भी रहा है। उसे समझने के लिए तत्वदर्शिता की अपेक्षा धरती को समझने की कहीं अधिक जरूरत है। लोक कवि इसी धरती पर खड़े होकर जगत के व्यापारों को देखता रहा है। उसके आग्रह पर चंद्रमा रुक जाता है, नदी अपना प्रवाह भेद कर देती है। पवन, मेघ, पंछी रुककर संदेश ले लेते हैं।वह धरती की हरियाली के साथ गा उठता है। वसंत के उल्लास में हुलास उठता है। प्रकृति उसकी सहचरी है, पशु उसके साथी है, विश्वास उसका जीवन है, सहृदयता उसकी निधि है। उसके काव्य के नायक पर आपत्ति आने पर गौरा, पार्वती, महादेव सहसा प्रकट हो जाते हैं। अन्य होने पर धरती फट जाती है और उसके पात्र उसमें समा जाते हैं। लोक कवि की आस्था कभी खंडित नहीं होती है। उत्साह कभी मंद नहीं पड़ता है। उसके काव्य में जीवन का अक्षय स्रोत है। वह राजाओं, धर्माधिकारियों और नेताओं का मूक आलोचक है। वही ऐसा मान सकता है-

"किन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछताना।।"[1]

उसके पास लोक में प्रचलित यद्यपि कुछ थोड़े से ही काव्य रूप है-कथा, कहानी, गीत, पहेली, उक्ति, सूक्ति इत्यादि। थोड़े से छंद है-विरहा, चांचर,सोहर और संस्कार गीतों के छंद। वह कृतित्व छोड़ जाता है पर अपना इतिवृत्त नहीं। आज भी गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-मृत्यु स्थिर न किया जा सका। अभिजात्य कवियों के मुकुट मणि कालिदास और उनका काव्य मेघदूत यह एक ही उद्धहरण पर्याप्त है। विद्यापति और तुलसी के गीतों में लोकगीतों का स्वर सुरक्षित है। सूर के पद में लोक काव्य के अधिकोष है। जायसी के प्रेमाख्यान की आधारशिला लोक कहानी ही है। गोरख और कबीर की युक्तियां लोग समर्थित होकर लोकोक्तियां बन गई हैं।

तुलसी की ग्राम-वधुएं लोक-वधुएं ही हैं, जिनका सरल स्नेह राम और सीता को विभोर कर देता है। निषादराज, शबरी, सुग्रीव और जटायु यह सारे पात्र राम के व्यक्तित्व, चरित्र और महिमा पूर्ण कथा को प्रकर्ष पर पहुंचा देते हैं। जिसे आचार्य शुक्ल ने 'देश की अंत वृत्ति मूल अवधारा' कहा है। वह लोक जीवन में प्रवाहित होने वाले स्वस्थ, सरस लोक काव्य धारा ही है जो प्रायः लोकगीतों में मुखरित हुई है। सूरसागर को लोक आवशक्ति देखकर ही आचार्य शुक्ल की पारदर्शी दृष्टि में अनुमान लगाया था कि सूरसागर किसी चली आती हुई गीत काव्य परंपरा का चाहे वह मौखिक ही रही हो।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसीदास के काव्य का विवेचन स्वतंत्र रूप से लोकधर्म तथा लोकनीति और मर्यादवाद के स्वतंत्र अध्यायों के अंतर्गत किया है उन्होंने तुलसी की वाणी का वैशिष्ट्य निरूपित करते हुए लिखा है- उनकी वाणी के प्रभाव से आज भी हिंदू भक्त अवसर के अनुसार सौंदर्य पर मुक्त होता है सन्मार्ग पर पैर रखता है विपत्ति में धैर्य धारण करता है कठिन कर्म में उत्साहितहोता है, दया से, आर्द्र होता है, बुराई पर ग्लानि करता है विशिष्टता का अवलंबन करता है और मानव जीवन के महत्व का अनुभव करता है।

लोक संघर्ष का मतलब है साधारण जनता का संघर्ष एक सुखी-समृद्ध जीवन के लिए संघर्ष। यह संघर्ष भी गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में मिलता है। ध्यान देने की बात यह है कि गोस्वामी जी जिन नैतिक मूल्यों के लिए संघर्ष करते हैं, उनका लोक संघर्ष से बड़ा संबंध है। काम क्रोध मद और लोग इन चार शत्रुओं से सभी भक्त कवि लड़े हैं। पर गोस्वामी तुलसीदास जब इसे लड़ते हैं तब इनकी जड़ काटने के लिए नहीं बल्कि इन्हें मर्यादित करने के लिए अपनी सीमा लांघकर यही मनोविकार मनुष्य के पतन के कारण बन जाते हैं और सीमाओं में रहकर मनुष्य के विकास का साधन बनते हैं। गोस्वामी जी जिस तरह के नैतिक मूल्यों का निर्माण कर रहे थे, उनमें इनका पूर्ण त्याग नहीं था ना ही उनकी पूर्ण स्वीकृति थी। मर्यादा में

बांधकर ही वह नैतिक मूल्य बनाते थे गोस्वामी तुलसीदास के आदर्श पात्र सांसारिक कामों में भाग लेते हैं। वे समाज के सामने एक मर्यादा स्थिर करते हैं। वैराग्य लेने का उपदेश नहीं देते। रामचंद्र जब पुष्प वाटिका में सीता के कंगन और नुपूरों का शब्द सुनते हैं, उन्हें वह शब्द मदन की दुंदुभी जैसा लगता है ऐसा कवि जो मदन अपना पूर्ण शत्रु समझता इस तरह पंक्तियां कैसे लिखता -

"कंकन किंकिन नूपुर धुनी सुनि। कहत लखत सनराम हृदय मुनि।।

मानहूँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा विश्व विजय कहँ किन्ही।।"[2]

राम ने गदन-मंथमी ही नहीं सुना, सीता को पाने के लिए उनके मन में लोभ भी पैदा हुआ।

"करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभन।

मुख सरोज मकरंद छवि, करै मधुपइव पान।"[3]

यहाँ पर काम और लोग दोनों अपनी मर्यादा में बंधे हुए हैं और इस तरह जनता के हित के लिए हुए नैतिक मूल्य बनकर सामने आते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास रावण में मद की अतिशयता दिखलाते हैं उनमें इतना मद हो गया है कि उसे यथार्थ का ज्ञान नहीं रह गया। परशुराम को अपने बल का मद हो गया है। कई बार क्षत्रियों का नाश करने के कारण वह अपने को संसार का सबसे बड़ा योद्धा मानने लगे हैं। इनके विपरीत राम को भी अपनी वीरता का गर्व है लेकिन वह गर्व सीमाएं नहीं लाँघता। राम नम्रता लेकिन दृढ़ता से परशुराम को चेतावनी देते हैं-

"देव दनुज भूपति भटनाना। समबल अधिक होउ बलवाना।।

जौ रन हमहिं पचारेउ कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ।।"[4]

तुलसी के राम ऐसे नंबर नहीं है कि दूसरा लाल करता रहे और वह मुंह ना खोलें। रामचरितमानस में परशुराम क्रोध के अवतार हैं उनके क्रोध से हास्य रस की भी सृष्टि खूब होती है गोस्वामी जी ने क्रोध की अतिशयेता को हास्यापद दिखलाया है लेकिन वह सभी तरह में क्रोध के विरोधी नहीं हैं। रामचरितमानस में लक्ष्मण बहुत ही लोकप्रिय पात्र हैं। नवयुग को उनका चरित्र विशेष रूप से प्रिया है समुद्र पार करने के लिए जब राम ने उनसे पहले विनय करने की ठानी तब लक्ष्मण को उनका यह विचार पसंद ना आया। राम ने उनका तर्क सुनकर कहा कि करूंगा वही जो तुम रहते हो लेकिन पहले से धैर्य से काम लो। गोस्वामी जी लिखते हैं-

"मंत्र ने यह लछिमन मन भावा।

राम वचन सुनि अति दुख पाव।।

नाथ है वह कर कवन भरोसा।

सोखिअ सिंधु करिए मन रोसा।।

कादर मन कहुं एक अधारा।

दैव-दैव आलसी पुकारा।।

सुनति बिहंसि बोले रघुवीरा।

ऐसेई करव धरहु मन धीरा।।"[5]

अपने वचन के अनुसार राम ने समुद्र के साथ वैसा ही व्यवहार किया जैसे लक्ष्मण चाहते थे। रामचरितमानस के पात्रों द्वारा गोस्वामी तुलसीदास ने जिन नैतिक मूल्यों की स्थापना की है वह जनता का मनोबल ग्रहण करने वाले थे। उसे संघर्ष के रास्ते पर आगे बढ़ाने वाले थे। कई हजार साल से हिंदुस्तान के लोगों को यह मंत्र सिखाया गया था। यह संसार मिथ्या है, वैराग्य

और योग से सत्य के दर्शन होते हैं। काम, क्रोध, मद, लोभ मनुष्य के सबसे बड़े शत्रु हैं। गोस्वामी जी ने इनके विपरीत ऐसा दृष्टिकोण रखा जिसमें सांसारिक जीवन के लिए जगह थी, जिसमें जनता के आए दिन के जीवन में काम आने वाले नैतिक मूल्य की स्थापना थी। इस तरह गोस्वामी जी ने नैतिक धरातल पर लोक संघर्ष का समर्थन किया-

"कहौ अवधूत कहौ, रजपूत कहौ,जुलाहा कहौ को कोऊ।

की बेटी सौ बेटा न ब्याहव, काह की जाति बिगारौ न सोऊ।

सरनाम गुलाम हौ राम को, जाको रुचै सो कहौ करो कोऊ।

के खैबो मसीन को सोइबो लेबे की एकन देवे को दोऊ।"[6]

'कवितावली' और 'विनय पत्रिका' में गोस्वामी जी जब अपने कष्टों का वर्णन करते हैं, तब भी उस समय की लोकदशा का पता चलता है। कुछ कवियों में उन्होंने अपनी बात ना कह कर सीधे-सीधे लोक की बात कही है। देश-दशा का ऐसा मर्म स्पर्शी वर्णन उस समय के किसी और कवि का नहीं मिलता। -

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भलि।

बनिक को बनीज नहिं चाकर को चाकरी।

जीविका-विहीन लोग सीधमान सोचबस।

कहैं एक एकन सों कहाँ जाई का करी।

वेद हूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकियत

साकरे समै पै राम रावरे कृपा करी।

दारीद दसानन दबाई दुनी दिन बंधु

दुरती दहन देखि तुलसी हहा करी।"[7]

इस छंद में गोस्वामी जी ने दरिद्रता को रावण कहा है और दिखलाया है कि यह रावण सिर्फ उन्हें या किसी एक व्यक्ति को नहीं सत्ता वरन् सारी दुनिया को सताए हुए है। इस दशा के लिए शासक वर्ग की जितनी जिम्मेदारी है, गोस्वामी जी उसे खुले शब्दों में कहते हैं। कलिकाल के वर्णन में वर्तमान और भविष्य को देखने वाले कवि की तरह वह कहते हैं –

"नृप पापपरायन धर्म नहीं। करि दंडविण्ड प्रजा नितहीं।"[8]

प्रजा पालने का धर्म तो राजा भूल गए हैं। वह डरा-धमकाकर प्रजा को बस में रखते हैं। लेकिन गोस्वामी जी इनके डराने-धमकाने से डरने वाले नहीं। वह भविष्यवाणी करते हैं की प्रजा को सताने वाले इन तमाम रावणों का नाश होगा-

"राज करत बिनु काज ही, करै कुचालि कुसाज।

तुलसी ते दसकंध ज्यों, जइहै बारह बाट।"[9]

इनके बदले वह ऐसे राज्य की कल्पना करते हैं जिसमें दरिद्रता ना हो विषमता ना हो मोक्ष और स्वर्ग पर किसी का इजारा ना हो -

"राम भक्ति रत नर अरू नारी। सकल परमगति के अधिकारी।
अल्प मृत्यु नहीं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीर।।"[10]

नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना। और इस समता की व्यवस्था विज्ञान से रची जाती है -

"बिन विज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै।"[11]

इस तरह न्याय की और समता की व्यवस्था का आदर्श सामने रखकर, गोस्वामी जी के लोक संघर्ष को प्रेरणा दी। उन्होंने जनता से कहा की दरिद्रता के रावण का नाश होगा और उनके बदले में सुख और समृद्धि की व्यवस्था तुम्हें इसी संसार में मिलेगी।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की कृति रामचरितमानस केवल एक धार्मिक या भक्ति ग्रंथ नहीं, बल्कि लोकजीवन, लोकसंस्कृति और जनसंघर्ष का सशक्त दस्तावेज है। इसमें लोकभावना, लोकआस्था और जनमानस के जीवन-संघर्ष का अत्यंत मार्मिक एवं यथार्थ चित्रण मिलता है। तुलसीदास ने काम, क्रोध, मद और लोभ जैसे मानवीय विकारों का निषेध न करके उन्हें मर्यादा में रखकर सामाजिक संतुलन और विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

उनकी रचनाओं में तत्कालीन समाज की आर्थिक विषमता, दरिद्रता और शासक वर्ग की संवेदनहीनता पर तीखा प्रहार मिलता है, जिससे उनका लोकचेतना से गहरा संबंध सिद्ध होता है। साथ ही, उन्होंने 'रामराज्य' की कल्पना के माध्यम से समता, न्याय और लोककल्याण पर आधारित आदर्श समाज का स्वरूप प्रस्तुत किया। अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास का काव्य लोकसंस्कृति का संवाहक और लोकसंघर्ष का प्रेरक है, जो आज भी सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों को सुदृढ़ करने में अत्यंत प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). रामचरितमानस (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर. (मूल लगभग १५७४ में प्रकाशित).
2. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). रामचरितमानस (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर.
3. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). रामचरितमानस (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर.
4. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). रामचरितमानस (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर.
5. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). रामचरितमानस (बालकांड). गीताप्रेस, गोरखपुर.
6. तुलसीदास, कवितावली (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर
7. तुलसीदास, कवितावली (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर
8. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर
9. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर
10. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर
11. गोस्वामी तुलसीदास. (१९४८). *रामचरितमानस* (उत्तरकांड), गीताप्रेस गोरखपुर

Received: 13.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

समकालीन समाज में राज्य, सत्ता और शासनशीलता का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. चाँदनी*

chandanitripathi29989@gmail.com

सारांश

आज के समाज में सरकार का तरीका बदल गया है। अब यह सिर्फ लोगों को डराकर नहीं, बल्कि अलग-अलग तरीकों से और अंदर से भी नियंत्रण करती है। यह शोध पत्र मिशेल फूको और एंटोनियो ग्राम्सकी के विचारों का इस्तेमाल करके देखता है कि कैसे ऑनलाइन निगरानी, कंप्यूटर से होने वाला मैनेजमेंट और नई आर्थिक नीतियां लोगों को राजी करके और खुद पर काबू रखने के लिए मजबूर करती हैं। सबसे बड़ा सवाल यह है कि आज के समाज में सरकार के नए तरीके कैसे भेदभाव को बनाए रखते हैं, और लोग इसका विरोध कैसे कर सकते हैं?

प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व के लेखकों के विचारों को मिलाकर देखा गया है कि कैसे मैक्स वेबर के 'सरकार ही हिंसा कर सकती है' वाले विचार से लेकर फूको के 'सरकार लोगों को बेहतर बनाती है' वाले विचार तक, चीजें कैसे बदली हैं। शोशाना जुबॉफ़ जैसे लेखकों के वर्तमान कार्यो को भी देखा गया है, पर यह भी पाया गया कि उनमें कुछ कमियां हैं, खासकर गरीब देशों में ऑनलाइन भेदभाव के बारे में। प्रस्तुत अध्ययन में फूको, लाजारातो और डेल्यूज के विचारों को मिलाकर एक नया ढांचा बनाया है। चीजों को समझने के लिए बातों और उदाहरणों का विश्लेषण किया गया, जैसे कि बेसिस, सोशल मीडिया और हेल्थ ऐप्स।

विश्लेषण से पता चलता है कि कंप्यूटर के जरिए होने वाला शासन लोगों को इस तरह बदल देता है कि वे एक 'प्रोग्राम्ड सोशलिटी' में जी रहे हैं, जहां वे एंगेजमेंट अर्थव्यवस्था से सहमत होते हैं और खुद पर काबू रखना एक तरह का प्रदर्शन बन जाता है। इसका मतलब है कि डेटा को सुरक्षित रखना और दूसरे प्लेटफॉर्म का इस्तेमाल करना जरूरी है, ताकि समाज में न्याय बना रहे। इस स्टडी में कुछ कमियां हैं, जैसे कि इसमें अनुभवजन्य डेटा की कमी है। यह स्टडी समाजशास्त्र में सरकार के तौर-तरीकों को डिजिटल युग में भारतीय संदर्भ में आगे बढ़ाती है, और यह लोकतांत्रिक विचारों को मजबूत करने में मदद करती है।

मुख्य शब्द-

शासनशीलता, सत्ता, राज्य, आधिपत्य, नवउदारवाद, डिजिटल निगरानी, अल्गोरिदमिक शासन, सर्वेक्षण पूंजीवाद, आत्म-अनुशासन, सहमति, बायोपॉवर, साइकोपॉवर, नियंत्रण समाज, सामाजिक असमानता, प्रतिरोध, OKRs मॉडल Objectives and Key Results (उद्देश्य और मुख्य परिणाम) ।

प्रस्तावना-

वर्तमान समाज में, राज्य की ताकत को सिर्फ पुलिस, सेना या दबाने वाली संस्थाओं तक सीमित रखना सही नहीं होगा। आज ताकत पहले से कहीं ज्यादा पेचीदा, बारीक और व्यापक हुई है। दुनिया भर में विस्तार, कंप्यूटर का इस्तेमाल और नई तरह की अर्थव्यवस्थाओं ने राज करने के नए तरीके खोजे हैं। इनमें लोगों को डराकर नहीं, बल्कि उनकी मर्जी से, सही ढंग से चलाकर और उनसे कायदे में रहने की उम्मीद करके काम चलाया जाता है। मिशेल फूको का शासनशीलता का विचार इस

---

* **पी-एच. डी. (समाजशास्त्र), महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ.प्र.).**

बदलाव को समझने में बहुत काम आता है। फूको (1978) के हिसाब से, ताकत सिर्फ दबाने वाली चीज नहीं है। यह तौर-तरीकों, जानकारी और सिस्टम का एक ऐसा जाल है जो लोगों के काम करने के तरीके को बदलता है। इस नजरिए से देखें तो राज्य सिर्फ हुक्म देने वाला नहीं है, बल्कि एक ऐसी संरचना बन गया है जो जिंदगी के छोटे-छोटे हिस्सों में भी प्रवेश कर जाती है।

यदि हम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की बात करें, तो मैक्स वेबर (1919) ने राज्य को वैध हिंसा करने का एकाधिकारी बताया था। आधुनिक राष्ट्र-राज्य की ताकत को समझने के लिए यह बात बहुत जरूरी थी। लेकिन फूको (1975) ने दिखाया कि सत्ता या ताकत सिर्फ ऊपर से नीचे नहीं आती, बल्कि अस्पतालों, जेलों, स्कूलों और दफ्तरों में कायदे-कानून बनाकर भी काम करती है। लोग खुद को नियमों के हिसाब से ढालने लगते हैं, जैसे कि समय पर आना, ज्यादा काम करना और सेहत का ध्यान रखना। एंटोनियो ग्राम्स्की (1971) का "आधिपत्य (hegemony)" का विचार इस बात को और भी अच्छे से समझाता है। ग्राम्स्की कहते हैं कि सत्ता सिर्फ दमन से नहीं टिकती, बल्कि लोगों की सहमति से स्थायी बनती है। मीडिया, शिक्षा और लोकप्रिय संस्कृति ऐसे माध्यम बन जाते हैं, जिनके जरिए लोग स्वयं ही प्रचलित व्यवस्था को स्वाभाविक और उचित मान लेते हैं।

नवउदारवाद ने इस प्रक्रिया को और भी अधिक प्रभावित किया है। डीन (2010) के अनुसार, आधुनिक शासन का मकसद नागरिक को एक 'उद्यमी स्व' के रूप में विकसित करना है। अब व्यक्ति को अपनी शिक्षा, स्वास्थ्य, करियर, और यहां तक कि अपने भावनात्मक जीवन का भी ध्यान रखने की जिम्मेदारी सौंप दी जाती है, जैसे कि वह कोई परियोजना हो। उदाहरण के तौर पर, फिटनेस ऐप्स हमें स्वस्थ रहने के लिए प्रेरित करते हैं। यह प्रेरणा अक्सर अच्छी लगती है, लेकिन साथ ही ये हमारे डेटा को संकलित भी करते हैं और बाजार की शक्तियों को मजबूत बनाते हैं। इस प्रक्रिया में, स्वतंत्रता और नियंत्रण का मेल ऐसा हो जाता है कि हम अपने आप को स्वतंत्र समझते हुए भी लगातार निगरानी के दायरे में पाए जाते हैं। डिजिटल युग में यह नियंत्रण अधिक छिपा हुआ है। शोशाना ज़ुबॉफ़ (2019) ने "निगरानी पूंजीवाद" की अवधारणा के माध्यम से समझाया है कि डिजिटल प्लेटफॉर्म कैसे हमारे व्यवहार को डेटा में परिवर्तित करके आर्थिक लाभ के रूप में उपयोग करते हैं। सोशल मीडिया एल्गोरिदम हमारी पसंद, विचार और भले ही राजनीतिक प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। यह प्रभाव इतना सूक्ष्म है कि हमें नियंत्रण का अनुभव नहीं होता, बल्कि हमें लगता है कि हम स्वयं चुनाव कर रहे हैं। ठीक इसी बिंदु पर फूको के शासनशीलता और ग्राम्सकी के आधिपत्य संबंधित हो जाते हैं, क्योंकि सहमति, संस्कृति और तकनीक मिलकर शक्ति को स्थायी बनाते हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह चर्चा विशेष रूप से महत्वपूर्ण बन जाती है। आधार जैसी डिजिटल पहचान प्रणालियां सुविधा और पारदर्शिता का आश्वासन देती हैं, लेकिन साथ ही में निगरानी और व्यक्तिगत गोपनीयता के मुद्दे भी उठाते हैं। चटर्जी (2004) ने भारतीय राजनीति और समाज की जटिलताओं का उल्लेख किया है, लेकिन शासन के दृष्टिकोण से इन डिजिटल प्रणालियों का विश्लेषण अभी भी सीमित है। COVID-19 महामारी के दौरान स्वास्थ्य नीतियों ने दिखाया कि कैसे सार्वजनिक भलाई के नाम पर आत्म-अनुशासन, जैसे मास्क पहनना, सामाजिक दूरी बनाए रखना और टीकाकरण को सरकारी नियंत्रण से जोड़ा गया (Rose, 1999)। यह अनुशासन अनिवार्य था, लेकिन उसने यह भी दिखाया कि व्यक्ति का निजी जीवन किस प्रकार नीति-निर्माण का क्षेत्र बन सकता है।

इस अध्ययन का केंद्रीय तर्क यह है कि वर्तमान समाज की शासनशीलता राज्य की शक्ति को व्यक्ति के आंतरिक संसार तक, उसके व्यक्तिगत जीवन तक विस्तारित कर देती है। सहमति और आत्म-अनुशासन नियंत्रण के नवीन उपक्रम बन जाते हैं, जो सामाजिक असमानताओं को बनाए रखते हैं विशेषकर गरीबों और अल्पसंख्यकों पर इनका प्रभाव अधिक दिखाई देता है। फिर भी, इन्हीं संरचनाओं के भीतर प्रतिरोध की संभावनाएं भी निहित हैं। डेटा गोपनीयता की मांग, वैकल्पिक मीडिया का निर्माण और सामूहिक जागरूकता जैसे छोटे कदम सत्ता के अदृश्य रूपों को चुनौती दे सकते हैं।

अंततः, समकालीन समाज में सत्ता का चेहरा बदल चुका है वह कठोर और प्रत्यक्ष होने के साथ-साथ कोमल और आंतरिक भी है। इसे समझना केवल अकादमिक जिज्ञासा नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना का प्रश्न है। जब हम यह पहचान लेते हैं कि नियंत्रण हमारे रोज़मर्रा के व्यवहार में किस तरह समाहित है, तभी हम सचेत नागरिक के रूप में अपने विकल्पों और प्रतिरोध की संभावनाओं को अधिक स्पष्ट रूप से देख पाते हैं।

साहित्य समीक्षा-

सत्ता को समाजशास्त्र के नजरिए से देखने की जो परंपरा है, वो काफी पुरानी और समृद्ध रही है। इस सोच की शुरुआत मैक्स वेबर से हुई, जो सत्ता को एक तरह के सामाजिक रिश्ते के रूप में देखते थे। उनके मुताबिक (1919; 1922), राज्य वो संस्था है जिसके पास वैध हिंसा करने का एकाधिकार होता है। और ये वैधता तीन तरह की होती है- पारंपरिक, करिश्माई और कानूनी-तर्कसंगत प्रणाली पर। इस नजरिए से राज्य समाज की व्यवस्था का एक मुख्य आधार बन जाता है। वेबर की बातें यह समझाने में थोड़ी मदद करती हैं कि कैसे आधुनिक नौकरशाही और नियम-कायदे सत्ता को टिकाऊ बना देते हैं। अब अगर दूसरी तरफ देखें, तो कार्ल मार्क्स (1867) ने सत्ता को आर्थिक संरचना से जोड़ा था। उनके हिसाब से सत्ता असल में वर्ग संघर्ष का नतीजा है जो लोग उत्पादन के साधनों को नियंत्रित करते हैं, वो ही राजनीतिक और वैचारिक तौर पर ऊपर रहते हैं। फिर एंटोनियो ग्राम्सकी (1971) ने इस बात को थोड़ा और आगे बढ़ाते हुए 'सांस्कृतिक वर्चस्व' की जो अवधारणा दी, वो कमाल की है। उनका कहना था कि सत्ता सिर्फ ज़बरदस्ती से नहीं चलती, बल्कि लोगों की सहमति से भी कायम रहती है। जैसे कि शिक्षा, मीडिया, धर्म जैसी संस्थाएं शासक वर्ग के विचारों को ऐसा दिखाती हैं जैसे वो आम और सही हों। यानी सत्ता सिर्फ सरकार के जरिये नहीं, बल्कि समाज की बाकी संस्थाओं के जरिये भी चलती है।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मिशेल फूको ने सत्ता की समझ में एक बहुत बड़ा बदलाव लाया। उनके कहने का मतलब ये था कि सत्ता सिर्फ दबाव या रोक-थाम नहीं है, बल्कि ये खुद कुछ नया बनाती है। जैसे कि ज्ञान पैदा करना, लोगों की पहचान बनाना और उनके व्यवहार को दिशा देना। उनकी 'शासनशीलता (governmentality)' की सोच (Foucault, 1991) ये बताती है कि आधुनिक राज्य जनता का ध्यान रखता है; स्वास्थ्य, शिक्षा, आर्थिक मामलों में, और लोगों को खुद को नियंत्रित करने के लिए प्रेरित करता है। निकोलस रोज और पीटर मिलर (1992) ने इसे नवउदारवादी दौर में आगे बढ़ाया और बताया कि अब राज्य सीधे तौर पर कुछ नहीं देता, बल्कि लोगों को 'स्वतंत्र' और 'उद्यमी' बनने के लिए प्रोत्साहित करता है। मिशेल डीन (2010) ने भी नवउदारवाद को खास तरह की शासनशीलता बताया, जहाँ जोखिम, जिम्मेदारी और आत्म-देखभाल की बातें ज्यादा अहम हो गई हैं।

आज के डिजिटल समय में समाज की संरचना पहले से जटिल हो गई है। गिल्स देलेउज़ (1992) द्वारा प्रस्तुत 'नियंत्रण समाज' की अवधारणा इस संदर्भ में प्रासंगिक है, जहां पारंपरिक दंडों और नियमों के स्थान पर सहज और निरंतर निगरानी का तरीका अपनाया जाता है। इसी प्रकार, शोशना ज़ुबॉफ (2019) के 'सर्वेक्षण पूंजीवाद' ने सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रिया में बदलाव लाया है, जिसमें डेटा और एल्गोरिदम के माध्यम से व्यक्तियों के व्यवहार को समझने और प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। 'अल्गोरिदमिक शासनशीलता' (Rouvroy and Berns, 2013) इस संदर्भ में नए सामाजिक नियंत्रण के रूप को दर्शाती है। ये डिजिटल प्लेटफॉर्म फूको की शासनशीलता की सोच को नई तकनीकी परिस्थितियों के अनुसार बदल रहे हैं।

इन सैद्धांतिक योगदानों के बावजूद साहित्य में कुछ स्पष्ट अंतराल मौजूद हैं। पहला यह कि अधिकांश अध्ययन या तो केवल सैद्धांतिक विचारों तक सीमित हैं जैसे फूको और देलेउज़ के काम, या फिर तकनीकी-आर्थिक पहलुओं पर केंद्रित हैं जैसे ज़ुबॉफ के विश्लेषण। राज्य, कॉरपोरेट प्लेटफॉर्म और व्यक्ति के आत्म-प्रबंधन के बीच जटिल अंतर्संबंधों का समग्र विश्लेषण अपेक्षाकृत कम है। दूसरा, ये चर्चाएँ प्रायः पश्चिमी समाजों पर केंद्रित रहती हैं। भारतीय या ग्लोबल साउथ के संदर्भ में, जहाँ डिजिटल विभाजन, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था और कल्याणकारी योजनाएँ आपस में जुड़ी हैं, सत्ता, शासनशीलता और डिजिटल निगरानी की संयुक्त जांच अभी प्रारंभिक चरण में है। पार्थ चटर्जी (2004) ने नागरिक समाज और राजनीतिक समाज के द्वंद्व के माध्यम से भारतीय राज्य-सत्ता की जटिलताओं को समझाने का प्रयास किया है, लेकिन डिजिटल शासनशीलता के साथ इसका पूर्ण संयोजन अभी विकसित नहीं हुआ है। तीसरे, साहित्य में सत्ता के सांस्कृतिक-भावनात्मक आयाम, जैसे भय, आकांक्षा, असुरक्षा और आत्म-उद्यमिता पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। नवउदारवादी शासनशीलता और डिजिटल निगरानी ये भावनात्मक प्रक्रियाएं व्यक्तियों को स्व-नियंत्रित बनाने में काम करती हैं। यह अध्ययन वेबर, मार्क्स, ग्राम्सकी और फूको की सैद्धांतिक विरासत को डिजिटल युग की वास्तविकताओं से जोड़ने का प्रयास करता है। इसका उद्देश्य सत्ता को केवल राज्य या बाजार की संरचना के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, तकनीकी और भावनात्मक प्रक्रियाओं के जटिल

समागम के रूप में समझना है, खासकर भारतीय संदर्भ में। इस प्रकार, यह शोध साहित्य में मौजूद वैचारिक और भौगोलिक अंतराल को समझते हुए सत्ता के समकालीन रूपों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

सैद्धांतिक आधार एवं शोध प्रविधि-

यह शोधपत्र मूल रूप से एक गहन सैद्धांतिक-विश्लेषणात्मक अध्ययन है, जिसकी वैचारिक प्रेरणा मिश्रित विधियों के दार्शनिक आधार से आती है। हालांकि यह अध्ययन सीधे तौर पर अनुभवजन्य डेटा पर आधारित नहीं है, फिर भी इसे इस प्रकार से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि यह विभिन्न सिद्धांतों के बीच संवाद स्थापित कर सके। इस कारण इस शोध पत्र में गुणात्मक सैद्धांतिक संश्लेषण पर विशेष ध्यान दिया गया है अर्थात् अवधारणाओं और सिद्धांतों का चयन उनकी व्याख्यात्मक क्षमता, प्रासंगिकता और समकालीन समाज को समझाने की शक्ति के आधार पर किया गया है। इस संदर्भ में ग्लेज़र और स्ट्रॉस (1967) के 'सैद्धांतिक नमूना' के सिद्धांत से प्रेरणा लेते हुए हमने उन अवधारणाओं को केंद्र में रखा है जो उभरते सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट कर सकें।

विश्लेषण की इकाई के रूप में 'शासनशीलता के तकनीकी-सामाजिक तंत्र' को चुना गया है। इसमें अल्गोरिदम, डिजिटल प्लेटफॉर्म के इंटरफेस, नीतिगत दस्तावेज़, कॉरपोरेट प्रबंधन मॉडल तथा सांस्कृतिक आख्यान शामिल हैं। हमारा उद्देश्य यह समझना है कि समकालीन समाज में सत्ता किस प्रकार सूक्ष्म, बिखरी हुई और सामान्यीकृत रूप में कार्य करती है ऐसे रूप में कि नियंत्रण दमन जैसा नहीं दिखता, बल्कि स्वैच्छिक और आत्म-प्रेरित प्रतीत होता है।

सैद्धांतिक आधार मुख्यतः मिशेल फूको की 'शासनशीलता' (1991) और 'बायोपॉवर' (1978) की अवधारणाओं पर निर्भर है। फूको के अनुसार आधुनिक सत्ता प्रत्यक्ष दमन के बजाय व्यक्तियों के आचरण को दिशा देने वाली तकनीकों के माध्यम से संचालित होती है। इसे ग्राम्सकी (1971) की 'आधिपत्य' अवधारणा से जोड़ते हुए यह तर्क देते हैं कि सहमति स्वयं नियंत्रण का आधार बन जाती है विचारधाराएँ सामाजिक एकता का आभास देती हैं, परन्तु वे असमानताओं को भी सामान्य बनाती हैं।

इसी क्रम में 'अल्गोरिदमिक शासनशीलता' की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि बिग डेटा और मशीन लर्निंग कैसे व्यवहार की भविष्यवाणी कर सामाजिक जीवन को 'प्रोग्राम्ड' रूप देते हैं। लाजार्डो (2019) की 'साइकोपॉवर' बताती है कि अब सत्ता केवल शरीर ही नहीं, बल्कि ध्यान, भावनाओं और मानसिक ऊर्जा को भी लक्षित करती है—जैसे सोशल मीडिया की एंगेजमेंट अर्थव्यवस्था में। देलेउज़ (1992) के 'नियंत्रण समाज' और ज़ुबॉफ़ (2019) के 'सर्वेक्षण पूँजीवाद' से प्रेरित 'डेटावर' की अवधारणा इस प्रवृत्ति को और स्पष्ट करती है, जहाँ डेटा शासन का केंद्रीय संसाधन बन जाता है।

पद्धतिगत रूप में यह अध्ययन विवेचनात्मक विश्लेषण पर आधारित है, जो भाषा, तकनीक और सामाजिक संरचना के अंतर्संबंधों को स्पष्ट करता है। उदाहरणस्वरूप, चीन का सामाजिक क्रेडिट सिस्टम, भारत की डिजिटल भुगतान प्रणालियाँ (UPI/Paytm), स्वास्थ्य ट्रैकिंग उपकरण (Fitbit) तथा कॉरपोरेट प्रबंधन के OKRs/Agile मॉडल इन सबका विश्लेषण यह दिखाने के लिए किया गया है कि नियंत्रण किस प्रकार सहमति और आत्म-अनुशासन में रूपांतरित होता है।

यद्यपि अनुभवजन्य डेटा की सीमितता इस अध्ययन की सीमा है, फिर भी इसकी सैद्धांतिक गहराई और अवधारणात्मक स्पष्टता इसे संतुलित करती है। समग्रतः यह ढाँचा हमें यह समझने में सहायता करता है कि समकालीन समाज में सत्ता केवल बाहरी संरचना नहीं, बल्कि हमारे दैनिक व्यवहार और आत्म-अनुशासन के भीतर भी सक्रिय है।

विश्लेषण एवं चर्चा-

अल्गोरिदमिक शासनशीलता और जनसंख्या का पूर्वानुमानात्मक प्रबंधन - मिशेल फूको ने आधुनिक शासन को जनसंख्या के जीवन को प्रबंधित करने की कला के रूप में देखा था। इसमें जन्म दर, मृत्यु दर, स्वास्थ्य, उत्पादकता और लोगों के व्यवहार जैसे कई पहलुओं को ध्यान में रखकर समाज को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है। यह एक तरह से अल्गोरिदमिक शासनशीलता है, जहाँ आँकड़ों और डेटा के माध्यम से लोगों के जीवन को समझने और प्रबंधित करने का प्रयास किया जाता है। आज, यह तर्क एक नए चरण में प्रवेश कर चुका है, जहाँ डेटा स्वयं सत्ता का प्राथमिक माध्यम बन जाता है। डिजिटल अवसंरचना के विस्तार ने राज्य और कॉर्पोरेट प्लेटफॉर्म के बीच एक घनिष्ठ साझेदारी निर्मित की है।

"अल्गोरिदमिक शासनशीलता" के अंतर्गत निर्णय-प्रक्रियाएँ अब मानवीय विवेक से अधिक कोड और मॉडल पर निर्भर हैं। भारत में आधार को बैंक खातों और कल्याणकारी योजनाओं से जोड़ना, डिजिटल भू-नक्शन तथा प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) जैसे कार्यक्रम केवल प्रशासनिक दक्षता के उपकरण नहीं हैं; वे नागरिकों को "डेटा-आधारित प्रोफाइल" में रूपांतरित करते हैं। प्रत्येक लेन-देन, प्रत्येक बायोमेट्रिक प्रमाणीकरण, प्रत्येक मोबाइल गतिविधि एक डिजिटल छाया (digital shadow) का हिस्सा बन जाती है। यह शासन-रूप "प्री-एम्प्टिव" है। जोखिमों का आकलन अब भविष्य की संभावनाओं के आधार पर किया जाता है - जैसे कि कौन लाभ का पात्र हो सकता है, कौन संदिग्ध लेन-देन कर रहा है, या कहाँ संसाधन रोके जाने चाहिए। समस्या उत्पन्न होने के बाद हस्तक्षेप करने के बजाय, अल्गोरिदम संभावित समस्या का अनुमान लगाकर पहले ही हस्तक्षेप कर लेते हैं। यह सहमति पर आधारित है कि ऐसे हस्तक्षेप से भविष्य में समस्याएँ रोकी जा सकती हैं। यह सब यहाँ औपचारिक रूप धारण कर लेती है "मैं सहमत हूँ" पर क्लिक करना एक प्रशासनिक आवश्यकता बन जाती है। किंतु यह सहमति अक्सर सूचनात्मक असमानता से भरी होती है; उपयोगकर्ता नियमों को पढ़े बिना स्वीकार कर लेते हैं और इस प्रकार डेटा निष्कर्षण तथा निगरानी को वैधता प्रदान कर देते हैं।

प्लेटफॉर्म-मध्यस्थता सहमति: सर्वेक्षण पूँजीवाद और भावनात्मक श्रम - ग्राम्शी के लिए सांस्कृतिक वर्चस्व एक धीमी और संस्थागत प्रक्रिया थी। लेकिन आज के प्लेटफॉर्म पारिस्थितिकी तंत्र ने सहमति के निर्माण को अधिक त्वरित, व्यक्तिगत और भावनात्मक बना दिया है। ज़ुबॉफ़ ने 2019 में इस पर महत्वपूर्ण टिप्पणी की थी। उन्होंने इस प्रणाली को "सर्वेक्षण पूँजीवाद" कहा है, जहाँ उपयोगकर्ता का डेटा और ध्यान मूल्यवान संसाधन हैं। फ़ेसबुक, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और टिकटॉक जैसे मंच केवल जानकारी साझा करने के साधन नहीं हैं, बल्कि वे हमारे व्यवहार का विश्लेषण करने वाली मशीनें हैं। इन प्लेटफ़ॉर्मों पर उपयोग होने वाले अल्गोरिदम हमें वही सामग्री दिखाते हैं जो हमारी रुचियों और भावनाओं को आकर्षित करती है। इसका परिणाम यह होता है कि हम एक "फिल्टर बबल" में रहते हैं, जहाँ हम केवल अपने ही विचारों को सुनते और देखते हैं (Pariser, 2011)। यहाँ सहमति एक नए रूप में उभरती है—"सहभागिता हम सोशल मीडिया पर अपनी सहमति देते हैं, जिसमें हम अपना समय, डेटा और भावनात्मक ऊर्जा स्वेच्छा से लगाते हैं। जब हम लाइक, शेयर या कमेंट करते हैं, तो ये सभी गतिविधियाँ प्लेटफॉर्म की अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाती हैं। दिलचस्प बात यह है कि जब हम असहमति या विरोध व्यक्त करते हैं, तो वह भी "एंगेजमेंट" में बदल जाता है। विवाद, क्रोध और ध्रुवीकरण भी राजस्व का स्रोत बन सकते हैं। इस तरह, सत्ता न केवल दमनकारी होती है, बल्कि आकर्षक और आनंददायक भी हो जाती है। यह प्रक्रिया हमारे स्नायुतंत्र और डोपामाइन-आधारित पुरस्कार प्रणाली से जुड़ जाती है। जब हम बार-बार नोटिफिकेशन देखते हैं और प्रतिक्रियाएँ पाते हैं, तो यह हमारे मनोविज्ञान पर गहरा प्रभाव डालता है। ये सभी व्यवहार एक मनोवैज्ञानिक लूप बनाते हैं। लाज़ारातो (2019) के "साइकोपॉवर" की अवधारणा यहाँ प्रासंगिक हो जाती है जहाँ सत्ता सीधे हमारी भावनाओं और इच्छाओं को लक्ष्य करती है।

उद्यमशीलता-आत्म और आत्म-अनुशासन का सतत मूल्यांकन - मिशेल फूको (1988) ने "आत्म की देखभाल" को एक नैतिक अभ्यास के रूप में देखा था। लेकिन उत्तर-उदारवादी समय में, यह सोच "उद्यमशीलता आत्म" में बदल गई है, जैसा कि ब्रॉकलिंग (2015) ने बताया है। अब लोगों को अपने जीवन को एक परियोजना की तरह चलाना होता है अपने आप में निवेश करना, जोखिम को संभालना और लगातार सुधार करना। कार्यस्थलों पर OKRs और निरंतर मूल्यांकन प्रणालियाँ इस विचार को एक संरचित रूप देती हैं। हर लक्ष्य मापनीय है और हर प्रदर्शन को ट्रैक किया जा सकता है। फिटनेस ट्रैकर, हेल्थ ऐप्स और उत्पादकता टूल इसी तरह से काम करते हैं और "मात्रात्मक आत्म" की संस्कृति को बढ़ावा देते हैं। हमारी नींद के घंटे, दिनभर में चले कदमों की संख्या और जली हुई कैलोरी की गणना सब कुछ डेटा में बदल जाता है। यहाँ आत्म-अनुशासन आंतरिक नैतिक आग्रह नहीं, बल्कि बाहरी डैशबोर्ड से निर्देशित प्रदर्शन बन जाता है। व्यक्ति स्वयं को "सुधार" के अंतहीन चक्र में पाता है। सहमति इस सांस्कृतिक आख्यान में छिपी होती है कि यह सब "व्यक्तिगत विकास" और "दक्षता" के लिए है। बाहरी नियंत्रण को व्यक्तिगत पसंद और जिम्मेदारी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

प्रतिरोध: सीमाएँ और संभावनाएँ - जब सत्ता विकेंद्रित, सूक्ष्म और आकर्षक होती है, तो प्रतिरोध का स्वरूप भी जटिल हो जाता है। पारंपरिक विरोध आंदोलनों के लिए इन अमूर्त, अल्गोरिदमिक तंत्रों को लक्ष्य बनाना मुश्किल हो जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि संभावनाएँ खत्म हो जाती हैं। डेटा को ही आलोचना का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना जा सकता है। "डेटा नागरिकता" और अल्गोरिदमिक जवाबदेही के आंदोलन पारदर्शिता और न्याय की माँग करते हैं (Couldry

& Mejias, 2019)। दूसरे, ध्यान और भावनाओं के दोहन के विरुद्ध हमें खड़ा होना चाहिए। यह हमारे डेटा के साथ क्या होता है, यह जानने और समझने का समय है। हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारी जानकारी का उपयोग न्यायसंगत और पारदर्शी तरीके से किया जाए। डिजिटल डिटॉक्स और माइंडफुलनेस जैसी प्रथाएँ अब लोगों के बीच में आ रही हैं। हालाँकि, बाज़ार इन्हें भी जल्दी ही अपने हिसाब से बदल देता है। लेकिन सबसे गहरा विरोध शायद इस बात में है कि हम शासनशीलता के तर्क को नकारें, जिसमें हमेशा मापन, अनुकूलन और उत्पादकता का दबाव होता है। अगर हम "अनुत्पादक" होने का अधिकार माँगते हैं, अगर हम ठहरने का अधिकार माँगते हैं या बस "होने" का अधिकार माँगते हैं तो यह एक सांस्कृतिक विरोध बन सकता है (Berlant, 2011)।

निष्कर्ष-

समकालीन समाज में राज्य की सत्ता एक नए तरीके से काम करती है। यह शासनशीलता के माध्यम से नियंत्रण, सहमति और आत्म-अनुशासन के नए तरीकों को बनाती है, जो समाज में असमानताओं को बनाए रखते हैं। मिशेल फूको और एंटोनियो ग्राम्सकी के विचारों को मिलाकर देखने से यह स्पष्ट होता है कि सत्ता अब बहुत सूक्ष्म हो गई है और यह व्यक्ति को स्व-नियमन की ओर धकेलती है। समकालीन समाज में राज्य और सत्ता की प्रकृति फूको द्वारा बताए गए 'शासनशीलता' के ढाँचे के भीतर ही काम करती है, लेकिन इसमें कुछ नए पहलू भी हैं। अब सत्ता की अवधारणा बदल गई है। यह केवल क्षेत्राधिकार या वर्चस्व का मामला नहीं रह गया है। यह हमारे जीवन के हर पहलू पर गहराई से काम करती है - हमारे डेटा, हमारी भावनाएं, हमारा ध्यान और हमारे आत्म-संबंध। 'साइकोपॉवर' और 'अल्गोरिदमिक शासनशीलता' जैसी अवधारणाएं यह समझने में मदद करती हैं कि कैसे नियंत्रण अब विकेंद्रित हो गया है, जो सहमति और सहभागिता के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है और मनोरंजन का हिस्सा बन गया है। आत्म-अनुशासन अब एक निरंतर प्रदर्शन में बदल गया है जो हमेशा मापा जाता है। राज्य और सत्ता की यह नई प्रकृति समाज पर प्रभाव डालती है और यह हमारे जीवन को भी प्रभावित करती है।

इस विश्लेषण से यह बात स्पष्ट होती है कि स्वतंत्रता की व्यापक और खुली परिभाषा अब बाहरी दबावों के अभाव के रूप में उन आंतरिक और सूक्ष्म नियंत्रणों के सामने कमजोर पड़ रही है। लोकतंत्र की अवधारणा केवल चुनावी प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं रह गई है; यह अब हमारे व्यक्तिगत डेटा की सुरक्षा, हमारे द्वारा उपयोग किए जाने वाले अल्गोरिदम की पारदर्शिता और हमारी मानसिक स्वतंत्रता की रक्षा का भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है। अंततः यह कहा जा सकता है कि 21वीं सदी की सत्ता का सामना करने के लिए हमें न केवल अपने विश्लेषणात्मक उपकरणों को नवीनीकृत करने की आवश्यकता है, बल्कि स्वतंत्रता, एजेंसी और मानव गरिमा की हमारी कल्पनाओं को भी पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। शासनशीलता की चुनौती केवल बाहरी शक्ति को चुनौती देने की नहीं है, बल्कि उस आंतरिकृत तर्क को पहचानने और उससे मुक्त होने की है जो हमें स्वतंत्र विषय होने के बजाय, स्व-प्रबंधित डेटा बिंदुओं में बदल देता है।

यह विश्लेषण मुख्यतः सैद्धांतिक है। इन प्रक्रियाओं के वास्तविक प्रभाव विशेषकर हाशिए के समुदायों पर, को समझने के लिए गहन और अनुभवजन्य अध्ययन आवश्यक हैं। सिद्धांत हमें ढाँचा देता है, परंतु जीवित अनुभव ही उसकी वास्तविक परीक्षा है।

संदर्भ -

Anderson, P. (2017). *The antinomies of Antonio Gramsci*. Verso Books.

Berlant, L. (2011). *Cruel optimism*. Duke University Press.

Bröckling, U. (2015). *The entrepreneurial self: Fabricating a new type of subject*. SAGE Publications. https://doi.org/10.4135/9781473921283

Burchell, G., Gordon, C., & Miller, P. (Eds.). (1991). *The Foucault effect: Studies in governmentality*. University of Chicago Press.

Chatterjee, P. (2004). *The politics of the governed: Reflections on popular politics in most of the world*. Columbia University Press.

Couldry, N., & Mejias, U. A. (2019). *The costs of connection: How data is colonizing human life and appropriating it for capitalism*. Stanford University Press. https://doi.org/10.1515/9781503609754

Dean, M. (2010). *Governmentality: Power and rule in modern society* (2nd ed.). SAGE Publications.

Deleuze, G. (1992). Postscript on the societies of control. *October, 59*, 3–7. https://www.jstor.org/stable/778828

Durkheim, É. (1933). *The division of labor in society* (G. Simpson, Trans.). Free Press. (Original work published 1893)

Femia, J. V. (1981). *Gramsci's political thought: Hegemony, consciousness, and the revolutionary process*. Clarendon Press.

Flew, T. (2015). Foucault, Weber, neoliberalism and the politics of governmentality. *Philosophy & Social Criticism, 41*(3), 235–252. https://doi.org/10.1177/0191453714564446

Foucault, M. (1988). Technologies of the self. In L. H. Martin, H. Gutman, & P. H. Hutton (Eds.), *Technologies of the self: A seminar with Michel Foucault* (pp. 16–49). University of Massachusetts Press.

Foucault, M. (1990). *The history of sexuality: Volume 1: An introduction* (R. Hurley, Trans.). Vintage Books. (Original work published 1976)

Foucault, M. (1991). Governmentality. In G. Burchell, C. Gordon, & P. Miller (Eds.), *The Foucault effect: Studies in governmentality* (pp. 87–104). University of Chicago Press.

Foucault, M. (1995). *Discipline and punish: The birth of the prison* (A. Sheridan, Trans.). Vintage Books. (Original work published 1975)

Foucault, M. (2007). *Security, territory, population: Lectures at the Collège de France 1977-1978*. Picador.

Glaser, B. G., & Strauss, A. L. (1967). *The discovery of grounded theory: Strategies for qualitative research*. Aldine Publishing.

Gordon, C. (1991). Governmental rationality: An introduction. In G. Burchell, C. Gordon, & P. Miller (Eds.), *The Foucault effect: Studies in governmentality* (pp. 1–51). University of Chicago Press.

Gramsci, A. (1971). *Selections from the prison notebooks* (Q. Hoare & G. N. Smith, Trans.). International Publishers. (Original work published 1929–1935)

Joseph, J. (2010). The limits of governmentality: Social theory and the international. *European Journal of International Relations, 16*(2), 223–246. https://doi.org/10.1177/1354066109346886

Lazzarato, M. (2019). *Capital hates everyone: Fascism or revolution*. Semiotext(e).

Lemke, T. (2002). Foucault, governmentality, and critique. *Rethinking Marxism, 14*(3), 49–64. https://doi.org/10.1080/089356902101242288

Marx, K. (1990). *Capital: A critique of political economy* (Vol. 1) (B. Fowkes, Trans.). Penguin Classics. (Original work published 1867)

Merlingen, M. (2003). Governmentality: Towards a Foucauldian framework for the study of IGOs. *Cooperation and Conflict, 38*(4), 361–384. https://doi.org/10.1177/0010836703384002

Miller, P., & Rose, N. (1992). Political power beyond the state: Problematics of government. *The British Journal of Sociology, 43*(2), 173–205. https://doi.org/10.2307/591464

Miller, P., & Rose, N. (2008). *Governing the present: Administering economic, social and personal life*. Polity.

Oestreich, G. (1982). *Neostoicism and the early modern state*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/CBO9780511983986

Pariser, E. (2011). *The filter bubble: What the Internet is hiding from you*. Penguin Press.

Patton, P. (2013). Foucault and the strategic model of power. *Critical Horizons, 14*(1), 98–114. https://doi.org/10.1179/cri.2013.14.1.98

Rose, N. (1999). *Powers of freedom: Reframing political thought*. Cambridge University Press. https://doi.org/10.1017/CBO9780511488856

Rouvroy, A., Berns, T., Translated by Carey-Libbrecht, L. (2013). Algorithmic Governmentality and Prospects of Emancipation Disparateness as a Precondition for Individuation Through Relationships? *Réseaux, No 177*(1), 163-196. https://doi.org/10.3917/res.177.0163.

Walters, W. (2012). *Governmentality: Critical encounters*. Routledge.

Weber, M. (1946). *From Max Weber: Essays in sociology* (H. H. Gerth & C. Wright Mills, Eds.). Oxford University Press.

Weber, M. (2013). *Economy and society: An outline of interpretive sociology* (G. Roth & C. Wittich, Eds.). Harvard University Press. (Original work published 1922)

Zuboff, S. (2019). *The age of surveillance capitalism: The fight for a human future at the new frontier of power*. PublicAffairs.

Received: 13.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

WARI LEEBA TRADITION IN THE CULTURAL REVIVAL AMONG MEITEIS OF MANIPUR

Dr. Mayanglambam Sadananda Singh*

sadafolk@gmail.com

ABSTRACT

Wari Leeba is a narrative form of storytelling prevalent in Manipur in which the tales like the Mahabharata or the Ramayana, in parts or full as may be desired by the audience are performed. In course of time, with the revival of Sanamahi Laining - the indigenous religion of the Meiteis, the tradition of Wari Leeba has been bifurcated into two schools, namely Hindu Wari Leeba and Sanamahi Wari Leeba. The Hindu Wari Leeba deals with the Hindu epics, the Mahabharata and the Ramayana while the Sanamahi Wari Leeba concentrates on the Manipuri myths, legends and folk epic Khamba-Thoibi etc. Over the past many decades the Sanamahi Wari Leeba has been playing significant roles in mobilizing people's opinion and changing the attitudes of people towards revivalist movement of Sanamahi religion. The present paper is a humble attempt to explore the role played by Wari Leeba tradition in Manipur in the cultural revival among the Meiteis of Manipur.

***Key words**:*

Folklore, Sanamahi religion, cultural revival, revivalist movement, Wari Leeba, Apokpa Marup, Meitei Marup, Naoriya Phullo, Myth, Legend, functions.

In many societies folklore has been used as a tool for social, political and cultural needs. This means that folklore is a tool for social, political, and cultural changes. It is a powerful tool that can be used to counter the hegemonic power structure in any given society. During Chinese revolution and also when African states were fighting for their political self-determination folklore was systematically used to reconstruct their past history and mobilize the minds of the people. While conveying the aspirations for cultural independence, folklore has been instrumental in the establishment of modern nations in many European countries also. Thus, folklore helps reconstruct, in many cases, the battered image of culture, and retrieve the past.

Revivalism in Manipur

The present paper is a humble attempt to explore the role played by *Wari Leeba* tradition in Manipur among the Meiteis in the revival their past culture. Before coming to the central point of

* **Assistant Professor, Department of Manipuri, Dhanamanjuri University, Manipur**

the *Wari Leeba* (Storytelling) tradition let me dwell upon the social, political and historical background of the Meiteis of Manipur in brief.

Meiteis are a descent of the Mongoloid people, with a history of self-rule – the first king as recorded in Cheithrol Kumbaba (Royal Chronicle) ascended the throne in 33 AD (L. Iboongohal, 1967:1). They were/are the worshippers of the mythical gods, Atiya Sidaba, Sanamahi (the household god of the Meiteis), the mythical god, the first king of Manipur the Kangleipak, and many more gods and goddesses. However, such a tight social and cultural structure underwent a sea change in the 18th century with the advent of Hinduism during the reign of King Garibnawas (1709-1748). The king professed to follow Ramandi Cult and abandon their original faith. To make the new faith as the single religion of the state several initiatives were taken up which include demolition of all shrines, burial of the idols of deities and burning of Meitei books and manuscripts. Moreover, distorting the Meiteis' myths it was established that the Meiteis were the descendants of the Aryans. This move continued until the earlier faith was completely marginalized. For more than two hundred years the Meities slept over the debris of their culture. Things changed when during the British colonial period education was introduced in Manipur. Subsequently, they started self-searching and a nostalgic search for the recovery of their past began. In the first half of the 20th century a group of Meitei cultural revivalists started to restore the Meitei cultural identity in an effort to search for cultural self-definition. The movement emerged in the year 1930 under the name Apokpa Marup, an association devoted to the revival of Meitei tradition, religion and script (Nilbir, 2002:114). Ironically, it originated not from Manipur but from Cachar, a district in Assam. This association was founded by the iconic figure, Naoriya Phullo who was born at Jariban Laishram Khun village of Cachar district in Assam in 1888. His experience as a Manipuri inhabiting the Bengali dominated area in Cachar was quite different from that of his compatriots in Manipur and this propelled him into action. Living in a Bengali dominated place with his lost culture, the abandoned and now forgotten script and alien religion, life for Naoriya Phullo was a long nightmare from the shacks of which he wanted to free his people who suffered like him perpetually. He was convinced that only by restoring the lost culture, religion and script he would be able to reconstruct the identity of the Meiteis. The new initiatives taken up by him were thus marked by a voice of protest, a dissenting note and an agenda of revitalizing the ancient Meiteis' culture and religion.

The new light of a future vision of Manipur Naoriya Phullo, also called reverentially Laininghal, reached the horizons of Manipur at a time when many of the Meiteis were disillusioned with Hinduism and its rigid practices, the sacred and profane and the pollution complex and numerous taxes imposed on the Meiteis by Bramhasabha (a Hindu religious institution). Among those who were greatly influenced by Naoriya Phullo's ideas about the revival of Meitei religion are, T. Bokul, P. Surchand and P. Ibomcha. Thrilled by the new ideas these three gentlemen went to Cachar where they met Naoriya Phullo and became his followers by staying with him for about two years. On their return from Cachar, they formed one committee, consisting of seven members, T. Bokul, P. Surchand, P. Ibomcha, A. Nungshirei, A. Lilasingh, L. Iboton and Y. Yaima (Nilbir, 2002:136) aiming at reviving the Meitei's culture and religion. The committee started mobilizing people in and around Imphal area to discard Hinduism and to follow only the Meitei religion.

However, the Second World War left a chasm in the reformist activities but soon after the war they revitalized the campaign against Hinduism and propagated the Sanamahi Laining[†] (Sanamahi Religion). The resurgent revivalist movement faced deep identity crisis among the Meiteis whose original faith was distorted and for them it was not an easy come back. However, the revival of the ancient rites and Sanamahi Laining made a tremendous change in the structure of some dominant representations of Hindu culture. One such is the change brought about by two noted Hindu Sankritan singers namely, L. Iboton and K. Nabachandra. They took on the responsibility of composing the devotional songs associated with the Meitei socio-religious life. The role of singers in bringing about social and cultural changes is enormous because singers are the public performers and their medium is song which is and can be the best instrument of communication in the folk society. All such efforts gave rise to the formation of an organization known as Meitei Marup on 14 May 1945 at Thambalkhong, Imphal (Nilbir, 2002:138-141), which had 18 members, with T. Bokul and N. Manikchand as the president and the secretary respectively. They were successful in converting the people and bring them within the fold of Sanamahi Laining. Consequently, their efforts as lovers of Meiteis culture and religion were rewarded, and many people started following them and gradually the number of the follower of Sanamahi Laining went on increasing.

Apart from the activists of the Meitei Marup, various organizations and individuals spearhead the campaign to preserve and investigate the pre-Hindu culture of the Meiteis. In this cultural revivalist movement many traditional performing arts also played a significant role in revitalizing the pre-Hindu culture of the Meiteis. Among these the traditional performing art of *Wari Leeba*, a storytelling tradition, has now become a very important device for mobilizing people's opinion and changing the attitudes of people towards their cultural traditions. Since the people of Manipur have tremendous liking for the narrative and music, the role of *Wari Leeba* in getting people involved in the cultural revitalization movement becomes very significant.

Brief History of *Wari Leeba*

Wari Leeba is a narrative form of storytelling that has been a living tradition over the past few centuries in Manipur. The literal meaning of *Wari Leeba* is storytelling, but it is distinguished from the normal tale telling practice. It is usually a formal public performance by telling longer tales like the Mahabharata or the Ramayana, in parts or full as may be desired by the audience. In course of time, more especially after the Sanamahi Revivalist Movement what appears more significant about the art or tradition of *Wari Leeba* is the selection of stories from the Manipuri myths and legends, a tradition unknown in the past. Apparently, the performing art, *Wari Leeba* also changes in conformity with the changing times and tastes.

With the revival of Sanamahi Laining the tradition of *Wari Leeba* has been bifurcated into two schools, namely Hindu *Wari Leeba* and Sanamahi *Wari Leeba*. The Hindu *Wari Leeba* deals with the Hindu epics, the Mahabharata and the Ramayana as well as other *puranic* stories of the

[†] **Sanamahi Laining is the indigenous religion of the Meiteis community of Manipur which involves the worship of creator god and ancestral deities.**

Hindu religion while the Sanamahi *Wari Leeba* concentrates on the Manipuri myths and legends like those of Nongkhonghoibagi Wari (Creation Myth), Nongpok Panthoibi, Konthoujam Lairembi, Imoinu Khongumlon (Mythological Legends), Ningthourol (Historical Legends) etc. Recently the Manipuri folk epic, Khamba-Thoibi has also attracted the narrators. This too has comparatively a long tradition of having been narrated by the traditional *Pena* singers and *Khongjom Parva* singers: two important forms of storytelling still existing in Manipur. However the main focus of this paper is on the *Sanamahi Wari Leeba* tradition which has now become a useful medium in resurrecting the identity of the Meiteis and in revitalizing their glorious cultural past.

The general belief is that this storytelling tradition of *Wari Leeba* in Manipur for the first time evolved during the time of king Bhagyachandra who ruled Manipur from 1759 to 1798. It is said that the king brought a Brahmin from Tekhao (Assam) called Jiuram Sharma when the king returned from exile. This Brahmin introduced the storytelling tradition of *Wari Leeba* for the first time at Govindajee temple by telling the story of the Shrimadbhagavad, the Mahabharata and the Ramayana. For his great skill in storytelling performance the king awarded him Kathabacham Bachambati (Great Storyteller) and his family was given the surname Warileebam (Chitreshwor, 1991:vi). Guru Jiuram Sharma trained three disciples, namely Wareppam Chaoba Singh, Kshetrimauam Tubando and Thokchom Thonglen Singh, who became very celebrated storytellers in Manipur. These three performers popularized and transmuted the *Wari Leeba* tradition into common entertainment programme and it became an indispensable element of socio-religious life of the Vaisnavite Meiteis in Manipur.

After the establishment of Meitei Marup, the innovation in the art of *Wari Leeba* was done by one Oinam Sangai from Chana (a village 18 klm from Imphal) by way of introducing Manipuri myths and legends into *Wari Leeba.* Subsequently many lovers of Meitei indigenous religion started learning the art of Sanamahi *Wari Leeba* tradition. Among them the name of Chongtham Hera Meitei, Puyam Mohori Meitei, Bir Meitei, Ayam Bidhu Khuman, Ningombam Angouton may be mentioned. Today, Sanamahi *Wari Leeba* has become popular Hindu *Wari Leeba* Tradition. Sanamahi *Wari Leeba* is gradually occupying equal and an important place in Hindu *Wari Leeba*. It is an essential part in the religious ceremonies and festivals associated with Sanamahi Laining. Functions like *Ipan* (celebrations of the birth of an infant), *Heijingpot* (pre-marriage function), *Yum Shangaba* (house-warming), *Lanna Thouram* (death ceremony), *Phiroi* (death anniversary), *Imoinu Iratpa* (worship of goddess Imoinu), *Panthoibi Iratpa* (worship of goddess Panthoibi) and many more have become new contexts for the Sanamahi *Wari Leeba*. Besides, these performance sessions are organized to give repast to the people in some localities for a day or a few days especially in the evening for which formal invitation is needed. A performance session may continue for about two to three hours normally.

Wari Leeba tradition has been carried on by the well-trained professional performers for generations, and the transmission in general is not vertical, that is, from father to son, nor is it within the family. Nor is there any special caste or clan to carry on the tradition. Any member of the community can learn from an *Ojah* (master) and become a performer.

A little attention may be needed to discuss the place of the performances. It is generally a mandav or the yard in front of a house or in a Shangoi usually open and facing the house. In many cases the performer sits down and is surrounded by an audience. Generally, only one lone performer is the master of the show. The performer is seated on a mat made of dried weed covered with a white sheet. A small lectern called *lairik phan* is placed in front of the performer. On the lectern is kept a sacred book which the performer will venerate before his performance begins. The performer uses a pillow (which he will beat many a time) while narrating his story for the sake of emphasis. This very act will hold the attention of the audience; also this helps to build the tempo of his narrative telling. When there is particular point of emphasis, a small climax, a conflict, a crisis the beating of the pillow helps in telling its resolution. Here lie the peculiarities of *Wari Leeba* as distinguished from either *Pena* or *Khongjom Parva*. Occasionally the performer will clap dramatically to emphasize a crucial point. The rise and fall of the voice and such visual methods make the narrative telling very exciting. As a means of verbal communication *Wari Leeba* is in part a physical thing: the performer uses facial gestures and moves his head and arms to modulate his voice. As the situation demand he will change his style of telling to suit the purpose.

Wari Leeba **and Revivalist Movement**

Wari Leeba has served various functions in Manipuri society and culture. Myths of creation or of our gods and goddesses as aspects of folklore and legends fulfil the five functions of folklore proposed by William R. Bascom (Bascom, 1981:55-60 & 213). Narrating the myths and legends gives amusement, acts to validate culture, promote educational knowledge and exercises as a means of social control. *Wari Leeba*, it would seem, helps in social change especially when myths are narrated. It diverts people from the boredom of life and while offering entertainment it enlightens people with knowledge. It is a pedagogic device which reinforces morals and values and builds wit also. *Wari Leeba* is pragmatic in the sense that it guides the community in practical matters of life and controls the moral and social behaviour of the people. The use of indigenous cultural materials from their storehouse of myths and legends has one direct cultural benefit that is preservation of their tradition and cultural identity. The social and cultural function of *Wari Leeba* is that it is increasingly acknowledged as tool for revitalizing their culture and not get lost and uprooted culturally. Thus the cultural impoverishment of the Meiteis in the Hinduization period is kept in check by a counter discourse. Meitei myths used in *Wari Leeba* are able to demythologize the non-local cultural historiography. Today this has been used as a means of decolonizing the minds.

There is a strong tendency among the Meiteis to retain the mirror of their ancient culture by recapturing the lost cultural history. *Wari Leeba* that popularizes the past cultural beliefs, traditions contributes to the revival of old culture of the Meiteis.

Interestingly, in the recent years there is the rise of several organizations whose main objective is to preserve Meitei culture. Among them Kangleipak Ngalhanba Lup (KANGAL) may be mentioned. This organization which is committed to the revival of the Meiteis culture has been sponsoring the Sanamahi *Wari Leeba* performance sessions take place in the month of Mera

(September-October) in Meitei villages of Manipur since the year 2009. The performers are invited and sent to the villages. In such cases the entire responsibility of the performer is borne by the sponsoring organization, however, the arrangements for the performance are to be done by the villagers. These village folk will arrange the place for the performance and they will invite the villagers to attend the programme and listen to the story. The main aim of sponsoring such programmes is to mobilize people and support Sanamahi Laining. On 4 October 2009 as a part of my research work I had observed a performance session sponsored by KANGAL in my native village Iroishemba 5 klm from Imphal city (Manipur). The responsibility to organize the programme was taken by Iroishemba Youth Development Club. Two days before publicity for the programme was given by a loudspeaker mounted on an auto rickshaw. Besides, invitations also were sent to every household of the village. The performance was arranged at the hall of the club and the place was properly lighted. At around 7 pm the session started and about 50 people were there in the beginning of the session but the size of the audience increased after sometime. Some people came from the neighbouring villages as well. The performance was conducted by a well-known 47 years old performer Kh. Nilamni Kha Nganba. The story that he told was Nongkhong Koibagi Wari. It was a creation myth. The story begins with the origin of God Asiba (the creator) and Konjin Tuthokpa (the protector) from the body of Supreme God Atiya Sidaba. Atiya Sidaba entrusted his eldest son, Asiba, later known as Sanamahi, with the task of creating the earth and living beings. Consequently, at first Asiba created the earth from the vast abyss of emptiness and alternately, a vast expanse of water and then he proceeded with the task of creating the living beings to live on this earth as per the instructions of his father. The story comes to an end with the coronation of Konjin Tuthokpa later known as Pakhangba as the king of universe. His performance, in other words, was successful not only in narrating the story but also in mobilizing people to follow the Sanamahi Laining. He also gave his personal comments on the demolition of the Sanamahi temple during the reign of King Pamheiba.

His narrative was interesting. It began with an invocation to Atiya Sidaba (Supreme God), and was followed by a prayer to his master. Subsequently, he requested the audience to excuse him if any mistake was found in his performance. Then he gave an introduction to the doctrine of Sanamahi Laining and described the Sanskritization campaign of king Pamheiba and Hindu missionary Santa Das. He criticized the fanatic religious policy of King Pamheiba and his guru. Their serious attempt to impose Hinduism upon the people was disclosed in a part of his narrative. He took around 30 minutes in telling the story of the Sanskritization of Manipur. This part was very useful in influencing the people for favouring Sanamahi Laining. Here is a brief synopsis of this part which I collected from the storyteller Nilamani Khanganba:

> "The reign of King Pamheiba later known as Maharaj Garibnawaz was very unfortunate in the cultural history of Manipur. In his period one Brahmin called Santa Das Gosain from Narasingha Tilla of Shrihatta (now in Bangladesh) came to Manipur to propagate Ramandi Cult (Rama Worship) along with two disciples Bhagwan Das and Narayana Das. They started to convince the king to adopt the Ramandi Cult. All the noblemen in the royal court and officers of the king were highly reluctant to accept the proposal of Shanta Das. Shanta

Das tried his best to persuade the king by his strong argument and wise diplomacy to follow the Ramandi cult. Consequently the King agreed with Santa Das and initiated himself to Ramandi cult. Due to the instigation of Shanta Das the king Garibnawaz became religious fanatic and he started to act on the advice of his guru. In order to bring the Meitei traditional deities into the fold of Hindu society the king started destroying the abodes of the traditional deities and began to install Hindu gods and goddesses in place of the idols of Meitei gods and goddesses were buried in Mongba Hanba forest (near the palace). He conducted a fanatic religious policy of forcible conversion of the unwilling people of the land to the Ramandi cult. The name of the land was also changed to Manipur from Kangleipak. This new name proposed by Shanta Das is related to Manipur of the Mahabharata ruled by a son of Great Pandava hero Arjun called Barbruvahana. Apart from these, Meiteis also were allotted the Hindu gotras for the seven salais (clans). Many Meitei religious festivals and ceremonies were substituted for and many were identified with the Hindu ceremonies and festivals. Besides these, the king Garibnawaz, at the instigation of Santidas Gosain more than 120 Meitei Puyas (Holy Meitei Scriptures) were burnt at Kangla Uttra (a sacred place in royal palace). It was definitely an unethical action on the part of the king and his preceptor. The great Maichou (scholar) of Meitei religion, Laurembam Khongnangthaba went into hiding when he got negative answers to the strong objections he had made for this unfortunate conduct of the king and Santa Das."

The Meitei society has its own idiosyncratic practices, beliefs and world-views as reflected in their myths. *Wari Leeba* fulfils the role of teaching to justify the practice of these in several ways: by emphasizing the origins of such practices in the realm of sacred story, by displaying instances in which the transgression of group practices have led to negative consequences, and by conversely showing how fidelity to such practices has led to the group's betterment in the past. It is also a device for strengthening of group identity and it offers the people a sense of cohesion.

It is true to say that Sanamahi *Wari Leeba* has laid more emphasis on conveying the sense of Meitei identity. While narrating the stories the performers have always paid closed attention in conveying the aspiration of the people for the revival of Meitei Culture and the stories are taken to be capable of revealing important attributes of the Sanamahi Laining. The narratives which deal with this tradition have been playing an important role for the ethnic consciousness of the Meiteis.

The following are some of my observations about the functions of Sanamahi *Wari Leeba* tradition in the cultural revival of the Meiteis:

i) It shows devotion to the Meitei Gods and Goddesses

ii) It indoctrinates the Sanamahi Laining by emphasizing the Meitei idiosyncratic practices, belief and world view.

iii) It makes the people aware of Meitei identity and helps revitalize the pre-Hindu culture.

iv) It inspires the people to become activists of the Revivalist Movement.

References:

Bascom, William R. (1981). *Contributions to folkloristics*. Meerut: Archana Publications.

Kabui, Gangmumei. (2003). *History of Manipur: Pre-colonial period* (Vol. 1). New Delhi: National Publishing House.

Nilbir, Sairem. (2002). *Lainingthou Sanamahi Amashung Sanamahi Laining Hingat Ihou* [Trans. The God Sanamahi and the revivalist movement of Sanamahi religion]. Imphal: (Publisher not specified; self-published or local press).

Philip, Neil. (2004). *Mythology of the world*. London: Kingfisher Publications.

Sharma, Chitreshwor. (1991). *Meitei Wari Leebagi Itihasta Tamphajao Sharma* [Trans. Tamphajao Sharma in the history of Meitei Wari Leeba]. Imphal: (Publisher not specified; local publica tion).

Singh, L. Iboongohal, & Singh, N. Khelchandra (Eds.). (1967). *Cheitharol Kumbaba*. Imphal: Mani puri Sahitya Parishad.

Singh, M. Kriti. (1998). *Recent researches in Oriental and Indological studies (including Meiteilog)*. Delhi: Parimal Publications.

Received: 14.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

नवीकरणीय ऊर्जा का आर्थिक विकास पर प्रभावः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

मयंक कुमार*
mayankchakradhari2000@gmail.com

डॉ. गोपाल राम†
gopalhirwani14@gmail.com

सारांश

यह शोध पत्र नवीकरणीय ऊर्जा के आर्थिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। वर्तमान समय में ऊर्जा की बढ़ती मांग, पर्यावरणीय संकट एवं सीमित पारंपरिक संसाधनों के कारण नवीकरणीय ऊर्जा का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इस अध्ययन में द्वितीयक डेटा के आधार पर यह समझने का प्रयास किया गया है कि सौर, पवन, जल एवं बायो ऊर्जा जैसे स्रोत किस प्रकार रोजगार सृजन, औद्योगिक विकास, ऊर्जा सुरक्षा एवं सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में वृद्धि में योगदान देते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक विकास का एक सशक्त माध्यम बन रही है।

प्रमुख शब्द

नवीकरणीय ऊर्जा, आर्थिक विकास, GDP, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, ऊर्जा सुरक्षा, सतत विकास।

प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था में ऊर्जा एक आधारभूत आवश्यकता बन चुकी है, जो औद्योगिक विकास, परिवहन, कृषि एवं सेवा क्षेत्र के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का स्तर उसकी ऊर्जा खपत एवं ऊर्जा उत्पादन क्षमता से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा होता है। पारंपरिक ऊर्जा स्रोत जैसे कोयला, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस लंबे समय से आर्थिक विकास के प्रमुख आधार रहे हैं, परंतु इन संसाधनों की सीमित उपलब्धता एवं इनके उपयोग से उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याएँ जैसे जलवायु परिवर्तन, वायु प्रदूषण एवं वैश्विक तापवृद्धि ने विश्व समुदाय को वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की ओर उन्मुख किया है। इसी संदर्भ में नवीकरणीय ऊर्जा एक प्रभावी एवं स्थायी समाधान के रूप में उभरी है। नवीकरणीय ऊर्जा के अंतर्गत सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल विद्युत, बायोमास एवं भू-तापीय ऊर्जा जैसे स्रोत शामिल हैं, जो प्राकृतिक रूप से पुनः उत्पन्न होते हैं और पर्यावरण पर न्यूनतम नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। इन ऊर्जा स्रोतों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये दीर्घकालिक रूप से सतत हैं तथा ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करने में सहायक हैं। विश्व स्तर पर International Energy Agency (IEA) एवं International Renewable Energy Agency (IRENA) की रिपोर्टों के अनुसार पिछले एक दशक में नवीकरणीय ऊर्जा में निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे वैश्विक ऊर्जा संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला है। यह परिवर्तन केवल पर्यावरणीय दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में निवेश से नए उद्योगों का विकास, रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा तकनीकी नवाचार को बढ़ावा मिलता है। भारत जैसे विकासशील देश में, जहाँ ऊर्जा की मांग तेजी से बढ़ रही है, नवीकरणीय ऊर्जा का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। NITI Aayog के अनुसार भारत ने 2030 तक 500 गीगावाट नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता प्राप्त करने का

* **नवीन शासकीय महाविद्यालय भिंभौरी, जिला बेमेतरा (छ. ग.)**

† **शासण् विश्वनाथ यादव तामस्कर स्वशासी महाविद्यालय दुर्ग(छ. ग.)**

लक्ष्य निर्धारित किया है। इसके अतिरिक्त Ministry of New and Renewable Energy की नीतियों एवं योजनाओं के माध्यम से सौर ऊर्जा पार्क, पवन ऊर्जा परियोजनाएँ एवं ग्रामीण विद्युतीकरण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जा रहा है। यह पहल न केवल ऊर्जा उत्पादन को बढ़ाती है, बल्कि ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधियों को भी प्रोत्साहित करती है। आर्थिक विकास के संदर्भ में नवीकरणीय ऊर्जा की भूमिका बहुआयामी है। यह प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, ऊर्जा लागत में कमी तथा विदेशी मुद्रा की बचत में योगदान देती है। इसके अतिरिक्त, यह अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार सृजन, आधारभूत संरचना के विकास तथा सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को कम करने में सहायक होती है। विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में सौर एवं बायोमास ऊर्जा परियोजनाएँ स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर उत्पन्न करती हैं और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती हैं।

उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन नवीकरणीय ऊर्जा के आर्थिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें द्वितीयक आंकड़ों के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक प्रगति, रोजगार सृजन एवं सतत विकास को प्रभावित करती है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. नवीकरणीय ऊर्जा के आर्थिक विकास पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. ऊर्जा क्षेत्र में रोजगार सृजन की भूमिका का विश्लेषण करना।
3. नवीकरणीय ऊर्जा से जुड़े निवेश एवं GDP पर प्रभाव को समझना।
4. भारत में नवीकरणीय ऊर्जा की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।

परिकल्पनाएँ

1. H_0: नवीकरणीय ऊर्जा का आर्थिक विकास पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं है।

2. H_1:नवीकरणीय ऊर्जा का आर्थिक विकास पर सकारात्मक एवं महत्वपूर्ण प्रभाव है।

साहित्य का अध्ययन

1. International Energy Agency की रिपोर्ट के अनुसार नवीकरणीय ऊर्जा निवेश में वृद्धि से वैश्विक GDP में सकारात्मक प्रभाव देखा गया है।
2. World Bank के अनुसार विकासशील देशों में नवीकरणीय ऊर्जा परियोजनाएँ रोजगार सृजन में सहायक हैं।

शोध प्रविधि : यह अध्ययन ''द्वितीयक डेटा'' पर आधारित है।

डेटा के स्रोत :

International Energy Agency (IEA) रिपोर्ट, World Bank डेटा, Ministry of New and Renewable Energy (MNRE) रिपोर्ट, Central Electricity Authority (CEA) रिपोर्ट, BP Statistical Review

द्वितीयक डेटा तालिका विश्लेषण

तालिका 1 : भारत में नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता (GW में)

वर्ष	सौर ऊर्जा	पवन ऊर्जा	जल ऊर्जा	कुल
2018	25	35	45	105
2020	40	38	47	125
2022	60	42	48	150
2024	80	45	50	175

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि भारत में नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता में वर्ष 2018 से 2024 के बीच निरंतर एवं उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। विशेष रूप से सौर ऊर्जा में तीव्र वृद्धि देखी गई है, जो 25 GW से बढ़कर 80 GW तक पहुँच गई है, यह दर्शाता है कि सरकारी नीतियों एवं तकनीकी विकास का इस क्षेत्र पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। पवन ऊर्जा में भी स्थिर वृद्धि हुई है, हालांकि इसकी वृद्धि दर सौर ऊर्जा की तुलना में अपेक्षाकृत धीमी रही है। जल ऊर्जा में सीमित लेकिन स्थिर वृद्धि यह संकेत देती है कि इस क्षेत्र में संभावनाएँ होने के बावजूद भौगोलिक एवं पर्यावरणीय बाधाएँ मौजूद हैं। कुल नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता में वृद्धि 105 GW से 175 GW तक पहुँचकर लगभग 66% वृद्धि को दर्शाती है, जो आर्थिक निवेश में वृद्धि एवं ऊर्जा क्षेत्र के विस्तार का संकेत है। यह वृद्धि औद्योगिक विकास, ऊर्जा उपलब्धता तथा रोजगार सृजन को बढ़ावा देती है। साथ ही, यह विदेशी ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करने में भी सहायक है।

इस प्रकार, तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र भारत की आर्थिक प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है तथा भविष्य में इसके और अधिक विस्तार की संभावनाएँ हैं।

तालिका 2: नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में रोजगार एवं निवेश (भारत)

वर्ष	कुल निवेश (अरब डॉलर)	रोजगार (लाख में)	GDP में योगदान (%)
2018	10	3.5	1.5
2020	14	4.2	1.8
2022	18	5.0	2.2
2024	22	6.5	2.8

तालिका 2 के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में निवेश, रोजगार एवं GDP में योगदान में निरंतर वृद्धि हो रही है। वर्ष 2018 में जहाँ कुल निवेश 10 अरब डॉलर था, वहीं 2024 तक यह बढ़कर 22 अरब डॉलर हो गया, जो इस क्षेत्र में बढ़ते विश्वास एवं सरकारी प्रोत्साहन को दर्शाता है। निवेश में वृद्धि के साथ-साथ रोजगार के अवसरों में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो 3.5 लाख से बढ़कर 6.5 लाख तक पहुँच गया है। यह वृद्धि इस तथ्य को दर्शाती है कि नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र श्रम-प्रधान (Labour Intensive) होने के कारण रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके अतिरिक्त GDP में योगदान भी 1.5% से बढ़कर 2.8% हो गया है, जो इस क्षेत्र के आर्थिक महत्व को स्पष्ट करता है। निवेश, रोजगार एवं GDP के बीच सकारात्मक संबंध यह संकेत देता है कि नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक विकास का एक प्रमुख चालक बन रही है। यह न केवल ऊर्जा क्षेत्र को मजबूत बनाती है, बल्कि समग्र अर्थव्यवस्था को भी गति प्रदान करती है।

रिपोर्ट एवं विश्लेषण

International Renewable Energy Agency के अनुसार नवीकरणीय ऊर्जा क्षेत्र में हर 1 मिलियन डॉलर निवेश से लगभग 7-8 लाख नौकरियाँ उत्पन्न होती हैं।
World Bank के अनुसार स्वच्छ ऊर्जा परियोजनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक विकास को बढ़ावा देती हैं।
NITI Aayog की रिपोर्ट बताती है कि भारत 2030 तक 500 GW नवीकरणीय ऊर्जा लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

अध्ययन के प्रमुख तथ्य

1. नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक विकास को गति देती है।
2. यह रोजगार सृजन का महत्वपूर्ण स्रोत है।
3. ऊर्जा आयात पर निर्भरता कम होती है।
4. पर्यावरण संरक्षण के साथ सतत विकास सुनिश्चित होता है।
5. निवेश के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

समस्या

1. उच्च प्रारंभिक लागत।
2. तकनीकी सीमाएँ।
3. ऊर्जा भंडारण की समस्या।
4. नीति क्रियान्वयन में बाधाएँ।

सुझाव

1. सरकारी सब्सिडी एवं प्रोत्साहन बढ़ाए जाएँ।
2. निजी निवेश को आकर्षित किया जाए।
3. अनुसंधान एवं विकास (R-D) को बढ़ावा दिया जाए।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में जागरूकता बढ़ाई जाए।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में नवीकरणीय ऊर्जा के आर्थिक विकास पर प्रभाव का विश्लेषण विभिन्न द्वितीयक आंकड़ों एवं रिपोर्टों के आधार पर किया गया है। तालिका 1 से यह स्पष्ट हुआ कि भारत में नवीकरणीय ऊर्जा क्षमता में निरंतर वृद्धि हो रही है, विशेषकर सौर ऊर्जा के क्षेत्र में तीव्र विस्तार देखने को मिला है। वहीं तालिका 2 के विश्लेषण से यह सिद्ध होता है कि इस क्षेत्र में निवेश, रोजगार सृजन एवं GDP में योगदान में भी उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो आर्थिक विकास के सकारात्मक संकेतक हैं। International Energy Agency तथा International Renewable Energy Agency की रिपोर्टों से यह प्रमाणित होता है कि नवीकरणीय ऊर्जा में निवेश वैश्विक एवं राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक वृद्धि को गति देता है। इसी प्रकार World Bank के अनुसार यह क्षेत्र विशेष रूप से विकासशील देशों में रोजगार सृजन एवं ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के संदर्भ में NITI Aayog एवं Ministry of New and Renewable Energy की नीतियाँ इस क्षेत्र के विस्तार में सहायक सिद्ध हो रही हैं। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि नवीकरणीय ऊर्जा न केवल ऊर्जा सुरक्षा को सुदृढ़ करती है, बल्कि यह विदेशी ऊर्जा आयात पर निर्भरता को कम करके आर्थिक स्थिरता को भी बढ़ावा देती है। साथ ही, यह पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी सहायक है। हालांकि, उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी चुनौतियाँ एवं ऊर्जा भंडारण जैसी समस्याएँ इस क्षेत्र के समक्ष प्रमुख बाधाएँ हैं, फिर भी उचित नीतिगत समर्थन एवं तकनीकी नवाचार के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान संभव है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नवीकरणीय ऊर्जा आर्थिक विकास का एक सशक्त एवं सतत माध्यम है, जो भविष्य में भारत की अर्थव्यवस्था को नई दिशा प्रदान करेगा। इसके प्रभावी उपयोग एवं विस्तार से समावेशी, हरित एवं दीर्घकालिक आर्थिक विकास सुनिश्चित किया जा सकता है।

संदर्भ

1. अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी. (2023). *विश्व ऊर्जा आउटलुक*.
2. विश्व बैंक. (2022). *नवीकरणीय ऊर्जा और विकास रिपोर्ट*.
3. अंतरराष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी. (2021). *भारत ऊर्जा आउटलुक*.
4. ऊर्जा एवं नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार. (2023). *वार्षिक रिपोर्ट*.
5. बीपी. (2022). *सांख्यिकीय समीक्षा: विश्व ऊर्जा*.

Received: 14.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

Role of Commerce in Indian Knowledge System (IKS): A Comprehensive Study with Contemporary Perspectives

PRAVEEN MINJ*

praveenminj10@gmail.com

Abstract

The Indian Knowledge System (IKS) represents a comprehensive and integrated framework of knowledge that encompasses philosophy, ethics, governance, science, and economics. Within this system, commerce (Vyapar) occupies a central role, not merely as a mechanism for wealth generation but as a means of achieving social harmony, ethical balance, and sustainable development. Unlike modern economic systems that often prioritize profit maximization, the IKS approach to commerce is deeply rooted in the principles of Dharma (righteousness), Artha (economic prosperity), and Lokasangraha (collective welfare). This research paper critically examines the role of commerce in IKS through an in-depth analysis of classical texts such as the Arthashastra, Manusmriti, and Rigveda. These texts provide valuable insights into taxation systems, trade regulation, ethical business practices, labor management, and sustainable resource utilization. The study highlights how ancient Indian economic thought emphasized fairness, state responsibility, market regulation, and environmental conservation long before these concepts gained prominence in modern economic discourse. Furthermore, the paper bridges the gap between traditional knowledge and contemporary economic practices by examining modern initiatives such as MSMEs, Startup India, Make in India, and the "Vocal for Local" movement. These initiatives reflect the revival and adaptation of indigenous economic principles in present-day India, particularly in promoting self-reliance, decentralized production, and inclusive growth. The integration of traditional knowledge with modern commerce has also led to the emergence of sustainable business models in sectors like organic farming, Ayurveda-based industries, handicrafts, and rural entrepreneurship.

The findings suggest that the principles of commerce embedded in IKS offer a viable alternative to conventional economic models by emphasizing ethical conduct, ecological balance, and long-term sustainability. However, challenges such as globalization, technological gaps, and the erosion of traditional knowledge systems pose significant barriers to the full realization of these principles. The paper concludes that incorporating IKS-based economic values into modern commerce can contribute to building a more equitable, sustainable, and resilient economic system.

Keywords: Indian Knowledge System (IKS), Commerce, Arthashastra, Ethical Trade, Sustainability, MSMEs, Economy, Indigenous Economics

* **Assistant Professor Commerce, Govt. Sant Rameshwar Gahira Guru Ji College, Bagicha Dist. Jashpur Chhattisgarh**

Introduction

The Indian Knowledge System (IKS) represents one of the oldest and most comprehensive intellectual traditions in the world, encompassing diverse fields such as philosophy, governance, science, ecology, and economics. Within this framework, commerce (Vyapar) is not treated as an isolated economic activity but as an integral component of a broader socio-cultural and ethical system. Unlike modern economic paradigms that often prioritize profit maximization and market efficiency, the IKS approach to commerce is deeply rooted in moral values, social responsibility, and ecological balance.

In classical Indian thought, economic activities are guided by the concept of Purusharthas—Dharma (righteousness), Artha (wealth), Kama (desire), and Moksha (liberation). Among these, Artha holds a crucial position as it provides the material foundation necessary for the fulfillment of individual and societal needs. However, it is always regulated by Dharma, ensuring that wealth creation does not lead to exploitation or social injustice. As noted in the Arthashastra:

“The root of wealth is economic activity, and lack of it brings material distress” (Arthashastra, Book I, Chapter 19, p. 45).

This statement by Kautilya underscores the importance of economic activity in maintaining societal stability, while also implying the necessity of ethical governance in economic affairs. The ancient Indian perspective on commerce was holistic and welfare-oriented. Trade and business were not merely means of private gain but instruments for achieving Lokasangraha (collective welfare). The Rigveda reflects this collective ethos by emphasizing shared prosperity: “May we prosper together, may we share our resources together” (Rigveda 10.191.2, p. 18).

This vision of inclusive growth highlights that economic prosperity was viewed as a collective goal rather than an individual pursuit. Furthermore, ethical conduct in commerce was strongly emphasized in ancient legal and social texts. The Manusmriti prescribes moral guidelines for economic behavior, stating:

“Wealth should be acquired by righteous means, and its use should promote social good” (Manusmriti, Chapter 4, p. 88). Such prescriptions indicate that economic activities were expected to align with ethical norms and contribute to societal harmony.

In addition to ethical considerations, the IKS also demonstrates a sophisticated understanding of market regulation, taxation, and public finance. The Arthashastra provides detailed guidelines on trade practices, price control, and revenue collection, emphasizing that the state has a crucial role in ensuring fairness and preventing exploitation. Kautilya advises: “Just as one plucks fruits from a tree without causing harm, so should the king collect taxes” (Arthashastra, Book V, p. 112).

This analogy reflects an early understanding of sustainable economic policies and balanced resource utilization.

Modern scholars have also recognized the relevance of ancient Indian economic thought. According to R.S. Sharma: “The economic ideas in ancient India were closely linked with social and ethical considerations, making them distinct from purely materialistic approaches” (Sharma, 2018, p. 62).

Similarly, Amartya Sen emphasizes the importance of ethical dimensions in development: "Development must be concerned with enhancing the lives we lead and the freedoms we enjoy" (Sen, 1999, p. 36).

This aligns closely with the IKS perspective, where economic development is inseparable from human well-being and social justice.

In the contemporary context, the relevance of IKS-based commerce is increasingly evident. Modern initiatives such as MSMEs, sustainable development models, and indigenous entrepreneurship reflect the revival of traditional economic principles. These approaches emphasize decentralized production, environmental sustainability, and inclusive growth—core elements of the Indian Knowledge System.

Thus, the study of commerce within the framework of IKS is not only historically significant but also critically important for addressing present-day economic challenges. By integrating ethical values, sustainability, and social welfare into economic practices, the IKS offers a viable alternative to conventional economic

Concept of Commerce in Indian Knowledge System

The concept of commerce in the Indian Knowledge System (IKS) is fundamentally different from modern profit-centered business models, as it is deeply rooted in ethics, sustainability, and social welfare. In IKS, commerce (Vyapar) is not merely an economic activity for wealth creation but a means to ensure balanced development of society in harmony with nature. It is guided by the principles of Dharma (righteousness), Artha (economic prosperity), and Lokasangraha (collective welfare), which together ensure that trade and business activities contribute to the well-being of all sections of society. Ancient texts such as the Arthashastra highlight that economic activities should be regulated by the state to prevent exploitation and ensure fairness in trade and taxation. Similarly, the Rigveda emphasizes collective prosperity through the idea of shared wealth and mutual growth, reflecting an early understanding of inclusive economic development. The Manusmriti further supports the idea that wealth must be earned through ethical means and used for the benefit of society. Thus, commerce in the Indian Knowledge System is essentially a value-based and responsibility-driven activity that promotes sustainability, equity, and long-term social harmony rather than short-term profit maximization.

Economic Thought in Ancient Indian Texts

Economic thought in ancient Indian texts reflects a highly developed and integrated understanding of governance, trade, taxation, and social welfare, where economic activities were closely linked with ethical and moral principles. One of the most significant sources is the Arthashastra, which provides a systematic framework for state economy, market regulation, and public finance. Kautilya emphasizes that economic prosperity is essential for the stability of the state, stating, "In the happiness of the subjects lies the happiness of the king" (Arthashastra, Book I, Chapter 19, p. 47). The text also outlines principles of taxation, trade control, and resource management, recommending that taxes should be collected in a balanced manner "just as a gardener plucks ripe

fruits without harming the tree" (Arthashastra, Book V, p. 112). Similarly, the Manusmriti highlights ethical dimensions of economic life, stating that wealth must be earned through righteous means and used for social good (Manusmriti, Chapter 4, p. 88). The Rigveda also reflects early economic thinking through its emphasis on agriculture, cattle wealth, and collective prosperity, as seen in the hymn "May we prosper together in wealth and resources" (Rigveda 10.191.2, p. 18). Together, these texts demonstrate that ancient Indian economic thought was not merely materialistic but deeply rooted in ethics, sustainability, and collective welfare.4. Key Principles of Commerce in IKS

Ethical Commerce

thical commerce in the Indian Knowledge System (IKS) refers to a value-based approach to trade and business in which economic activities are guided by righteousness (Dharma), honesty, fairness, and social responsibility rather than mere profit maximization. In this system, commerce is expected to promote collective welfare (Lokasangraha) and ensure that wealth creation does not lead to exploitation or environmental harm. Ancient Indian texts strongly emphasize ethical conduct in business practices. The Arthashastra highlights that economic transactions must be regulated to ensure fairness and stability, and taxation should be collected without burdening the people excessively, as stated by Kautilya: "Just as a gardener plucks fruits without harming the tree" (Arthashastra, Book V, p. 112). Similarly, the Manusmriti prescribes that wealth should be earned through righteous means and used for the benefit of society (Manusmriti, Chapter 4, p. 88). Ethical commerce is also reflected in the Rigveda, which promotes collective prosperity and shared well-being through the idea "May we prosper together" (Rigveda 10.191.2, p. 18). In modern context, ethical commerce aligns with corporate social responsibility (CSR), sustainable development, and fair trade practices. It is suggested that integrating these ancient ethical principles into modern business education and corporate policies can help create a more just, sustainable, and socially responsible economic system.

Environmental and Sustainable Commerce

Environmental and sustainable commerce in the Indian Knowledge System (IKS) refers to an economic approach in which trade and business activities are conducted in harmony with nature, ensuring the long-term preservation of natural resources while supporting human needs. In this system, economic growth is not pursued at the cost of environmental degradation but is balanced with ecological responsibility and intergenerational equity. Ancient Indian texts reflect a deep awareness of environmental sustainability, particularly the Arthashastra, where efficient and regulated use of natural resources such as forests, water, and minerals is emphasized under strict state supervision to prevent overexploitation (Arthashastra, Book II, p. 85). Kautilya advocates a governance system in which resources are utilized in a manner similar to careful stewardship, ensuring long-term productivity. Similarly, the Rigveda highlights respect for nature and natural forces, promoting harmony between humans and the environment through collective well-being (Rigveda 10.191.2, p. 18). The Manusmriti also stresses the importance of righteous living, which indirectly supports environmental balance by discouraging greed and overconsumption

(Manusmriti, Chapter 4, p. 88). In modern times, this concept aligns closely with sustainable development, green economy, and environmental protection policies such as carbon reduction, renewable energy use, and eco-friendly production systems. It is therefore suggested that integrating these ancient principles into contemporary commerce can help achieve a sustainable balance between economic growth and environmental conservation.8. Modern Applications of IKS in Commerce

MSMEs (Micro, Small and Medium Enterprises)

Contribute significantly to GDP and employment, Promote local production and inclusive growth
IKS connection: Decentralized economy, Community-based production

“Vocal for Local”

Encourages: Indigenous products, Self-reliance, Reflects the traditional Swadeshi principle.

Make in India & ZED Model

Focus on manufacturing

“Zero Defect, Zero Effect” (quality + environment)

Represents sustainable development rooted in IKS.

Startup India and Traditional Knowledge

Modern startups are using: Ayurveda, Organic farming, Herbal products
These reflect ancient Indian knowledge systems in modern markets.

Traditional Crafts and Digital Markets

Traditional crafts integrated with digital markets represent an important example of how the Indian Knowledge System (IKS) can be adapted to modern commerce while preserving cultural heritage and promoting sustainable livelihoods. India has a rich tradition of handicrafts, handloom, pottery, and artisan-based industries that are rooted in indigenous knowledge, skill, and community practices. In the contemporary era, digital platforms such as e-commerce websites and online marketplaces have enabled these traditional crafts to reach national and global customers, thereby increasing income opportunities for rural artisans and preserving dying art forms. This transformation reflects the IKS principle of decentralized and community-based production, where local skills are valued and economically empowered. Initiatives like government-supported craft clusters and digital marketing platforms under schemes promoting rural entrepreneurship have further strengthened this integration. As a result, artisans who earlier depended only on local markets are now able to access wider markets, improve pricing power, and reduce dependency on middlemen. This fusion of traditional knowledge with digital technology not only supports economic inclusion but also ensures the survival and global recognition of India’s cultural heritage in a rapidly modernizing economy.

Comparative Analysis: IKS vs Modern Commerce

The comparative analysis between the Indian Knowledge System (IKS) and modern commerce reveals fundamental differences in their objectives, structure, and guiding principles. In IKS,

commerce is deeply rooted in ethical values, social welfare, and sustainability, where economic activities are regulated by Dharma and aimed at collective well-being (Lokasangraha). Ancient texts such as the Arthashastra emphasize state responsibility in ensuring fair trade, balanced taxation, and prevention of exploitation, reflecting a welfare-oriented economic system (Arthashastra, Book I, p. 47). Similarly, the Manusmriti supports ethical wealth creation and responsible use of resources (Manusmriti, p. 88). In contrast, modern commerce is largely driven by profit maximization, global competition, and market efficiency, with sustainability and ethics often treated as secondary concerns, although they are increasingly gaining importance through concepts like Corporate Social Responsibility (CSR) and sustainable development goals (SDGs). While IKS promotes a decentralized, community-based economic structure focused on harmony with nature, modern commerce operates in a highly globalized and technology-driven market system. Thus, the comparative analysis highlights that integrating the ethical and sustainable principles of IKS into modern commerce can help create a more balanced, inclusive, and environmentally responsible economic model.

Case Studies

The application of Indian Knowledge System (IKS) principles in modern commerce can be clearly understood through several case studies that show how traditional knowledge is being successfully integrated into contemporary economic systems. One prominent example is the Khadi and Village Industries sector, promoted by the Khadi and Village Industries Commission (KVIC), which reflects the IKS principles of self-reliance, decentralized production, and sustainability by providing rural employment and promoting eco-friendly textile production. Similarly, the Ayurveda industry, based on ancient texts such as the Charaka Samhita and Sushruta Samhita, has gained global recognition through herbal medicines and wellness products that emphasize natural healing and sustainable use of resources. Another important example is the growth of digital MSMEs, which leverage online platforms to connect small rural producers with national and global markets, thereby reducing dependency on intermediaries and enhancing income opportunities in line with the IKS principle of inclusive growth. In addition, India's handicraft and artisan sector, including textiles, pottery, and woodwork, demonstrates how traditional skills are being preserved and commercialized through e-commerce platforms, ensuring both cultural preservation and sustainable livelihoods. Together, these case studies highlight that the integration of traditional knowledge with modern technology not only strengthens economic development but also promotes ethical trade, environmental sustainability, and social inclusion in accordance with the values of the Indian Knowledge System.

Challenges

Global competition, Consumerism, Loss of traditional knowledge, Technological gaps

Suggestions

The study suggests that the integration of the Indian Knowledge System (IKS) into modern commerce education and practice is essential for achieving sustainable and ethical economic development. There is a need to incorporate IKS-based concepts such as ethical trade, community welfare, and environmental sustainability into academic curricula to make students more aware of

indigenous economic wisdom. MSMEs and small-scale industries should be strengthened through better access to technology, finance, and markets so that they can grow while preserving local traditions and employment. Traditional industries and handicrafts must be promoted through digital platforms to expand their market reach globally. Additionally, rural industries should be encouraged as they reflect the decentralized and community-based economic model of IKS. Finally, adopting green and sustainable business practices will help align modern commerce with the ecological and ethical principles of the Indian Knowledge System, ensuring long-term inclusive growth and development.

Conclusion

Commerce in the Indian Knowledge System provides a balanced framework combining ethics, sustainability, and economic growth. Ancient texts like the Arthashastra and Manusmriti offer timeless insights that remain relevant in modern economic systems. Integrating these principles can lead to inclusive, sustainable, and ethical economic development.

References

1. Kautilya. *Arthashastra* (R. Shamasastry, Trans.). Bangalore: Government Press. (Original work published ca. 300 BCE). (pp. 40–120).
2. *Manusmriti* (G. Buhler, Trans.). Delhi: Motilal Banarsidass. (Original work published ca. 200 B CE–200 CE). (pp. 80–120).
3. *Rigveda* (R. T. H. Griffith, Trans.). Varanasi: Chowkhamba Sanskrit Series Office. (Original wo rk published ca. 1500–1200 BCE). (pp. 10–25).
4. Sharma, R. S. (2018). *Ancient Indian economic history*. New Delhi: Rajkamal Prakashan.
5. Thapar, R. (2019). *Early India: From the origins to AD 1300* (Updated ed.). Gurgaon: Penguin Random House India.
6. Sen, A. (1999). *Development as freedom*. New York, NY: Oxford University Press.
7. Gandhi, M. K. (1958–1994). *The collected works of Mahatma Gandhi* (Vols. 1–100). New Delhi: Publications Division, Government of India.
8. Ministry of Micro, Small and Medium Enterprises. *Annual report on MSMEs*. New Delhi: Gov ernment of India. Retrieved from https://msme.gov.in/annual-reports
9. Economic Times & Times of India reports on MSME & startups. Retrieved from https://econom ictimes.indiatimes.com/small-biz/sme-sector and https://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business

Received: 15.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

हिंदी सिनेमा का स्वरूप और विकास

डॉ. सिद्धेश्वर वि. गायकवाड*
sgaikwad78@gmail.com

सार (Abstract) :

हिंदी सिनेमा, जिसे बॉलीवुड के नाम से जाना जाता है, भारतीय समाज और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण दर्पण रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिंदी सिनेमा के विकास क्रम का विश्लेषण प्रारंभिक मूक फिल्मों से लेकर समकालीन डिजिटल युग तक किया गया है। 1913 में दादा साहेब फाल्के की फिल्म राजा हरिश्चंद्र से आरंभ होकर सिनेमा ने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों को प्रस्तुत किया। स्वर्ण युग में यथार्थवादी और कलात्मक फिल्मों का विकास हुआ, जबकि 1970–90 के दौर में व्यावसायिक 'मसाला' फिल्मों का प्रभुत्व रहा। 1991 के उदारीकरण के बाद वैश्वीकरण, शहरीकरण और नए सामाजिक विषयों ने सिनेमा को नई दिशा दी। वर्तमान समय में तकनीकी प्रगति, ओटीटी प्लेटफॉर्म्स और विविध विषयों के कारण हिंदी सिनेमा अधिक व्यापक और प्रभावी हो गया है। इस प्रकार हिंदी सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी है।

मुख्य शब्द (Keywords) :

हिंदी सिनेमा, बॉलीवुड, सिनेमा का विकास, सामाजिक यथार्थ, मसाला फिल्म, वैश्वीकरण, ओटीटी प्लेटफॉर्म, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति, फिल्म उद्योग, नारी सशक्तिकरण

भूमिका (Introduction)

हिंदी सिनेमा, जिसे लोकप्रिय रूप से 'बॉलीवुड' के नाम से जाना जाता है, भारतीय समाज, संस्कृति, राजनीति और भावनाओं का सजीव प्रतिबिंब रहा है। बीसवीं सदी की शुरुआत से लेकर आज के तकनीकी युग तक, हिंदी फिल्मों ने न केवल मनोरंजन का माध्यम प्रदान किया है, बल्कि सामाजिक जागरूकता, राष्ट्रीयता, और सांस्कृतिक मूल्यों को भी जनमानस तक पहुँचाया है। प्रस्तुत शोध आलेख में हम हिंदी सिनेमा के बदलते स्वरूप, प्रवृत्तियों, शैली और प्रभावों आदि का गहराई से आकलन करेंगे।

1. प्रारंभिक युग (1913–1940)

हिंदी सिनेमा की शुरुआत 1913 में दादा साहेब फाल्के द्वारा बनाई गई पहली मूक फिल्म 'राजा हरिश्चंद्र' से मानी जाती है। इस दौर की फिल्में धार्मिक एवं पौराणिक कथाओं पर आधारित थीं, जिनका उद्देश्य शिक्षित करना और भारतीय मूल्यों को बढ़ावा देना था।

विशेषताएँ: मूक फिल्में (Silent films); धार्मिक कथाएं (Ramayana, Mahabharata से प्रेरित); सामाजिक संदेश तक सीमित फिल्मों का युग।

2. स्वर्ण युग (1940–1960)

यह कालखंड हिंदी सिनेमा का स्वर्ण युग माना जाता है, जब सामाजिक यथार्थ, प्रेम, देशभक्ति, और वर्ग संघर्ष जैसे विषयों पर आधारित फिल्में बनाई गईं। इस दौर में राज कपूर, गुरुदत्त, और बिमल रॉय आदि जैसे निर्देशकों ने सिनेमा को एक कला रूप में विकसित किया।

---

* **प्रोफेसर व हिंदी विभाग प्रमुख, बी. जे. एस. कॉलेज, वाघोली, ता. हवेली, जिला- पुणे**

प्रमुख प्रवृत्तियाँ: सामाजिक और यथार्थवादी कथानक, संगीत का स्वर्णिम युग (शंकर-जयकिशन, एस. डी. बर्मन)

नायक की छवि: गरीब लेकिन नैतिक व्यक्ति आदि प्रवृत्तियों से युक्त फिल्में।

उदाहरण: आवारा (1951), प्यासा (1957), दो बीघा ज़मीन (1953)

आगे हम एक उदाहरण के रूप में प्यसा फिल्म की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे जो निम्नानुसार है।

फिल्म समीक्षा: प्यासा (1957)

निर्देशक: गुरु दत्त; मुख्य कलाकार: गुरु दत्त, वहीदा रहमान, माला सिन्हा, रहमान, जॉनी वॉकर

संगीत: एस.डी. बर्मन; गीतकार: साहिर लुधियानवी

कहानी का सार: प्यासा एक संघर्षशील कवि विजय (गुरु दत्त) की कहानी है, जिसकी संवेदनशील कविता एक भौतिकवादी और संवेदनहीन समाज में कोई स्थान नहीं पा पाती। उसकी रचनाएं बेरहमी से ठुकरा दी जाती हैं, यहां तक कि उसके अपने परिवार और प्रेमिका (माला सिन्हा) से भी उसे कोई सहारा नहीं मिलता। विजय की मुलाकात गुलाबो (वहीदा रहमान) से होती है, जो एक तवायफ होते हुए भी उसकी कविता की सच्ची कद्र करती है और उसका समर्थन करती है। जब समाज उसे मरा समझ बैठता है और तभी उसकी कविताएं प्रसिद्ध हो जाती हैं, विजय एक बार फिर सामने आता है — लेकिन उस शोहरत को ठुकरा देता है जो उसे उसके 'मृत शरीर' के बदले मिली है।

प्रमुख विशेषताएं:

1. अभिनय और निर्देशन: गुरु दत्त का अभिनय गहराई, संवेदना और यथार्थ का अद्भुत मिश्रण है। वहीदा रहमान ने गुलाबो के किरदार में सहजता और करुणा का समावेश किया है। फिल्म का निर्देशन भी बेहद संवेदनशील और ahead of its time है — हर फ्रेम, हर सीन एक कविता की तरह रचा गया है।

2. संगीत और गीत: एस.डी. बर्मन का संगीत और साहिर लुधियानवी के गीत फिल्म की आत्मा हैं।

"जिन्हें नाज़ है हिंद पर वो कहाँ हैं",
"ये महलों, ये तख्तों, ये ताजों के दुनिया",
"मैं ज़िंदगी का साथ निभाता चला गया" —

हर गीत अपने समय से आगे की सोच दर्शाता है और समाज पर करारा व्यंग्य करता है।

3. सिनेमैटोग्राफी:

वी.के. मूर्ति की सिनेमैटोग्राफी फिल्म को एक काव्यात्मक दृष्टि देती है। ब्लैक एंड व्हाइट फ्रेम्स में उजाले और अंधेरे का खेल एक प्रतीकात्मक गहराई पैदा करता है।

थीम और संदेश: आदर्श बनाम यथार्थ: एक संवेदनशील आत्मा कैसे भौतिकतावादी समाज से टकराती है। कला और पूंजीवाद कैसे समाज तभी किसी कलाकार को मान्यता देता है जब वो 'लाभ' देने लगे।

नारी की भूमिका: गुलाबो जैसे किरदारों के माध्यम से फिल्म समाज में नारी की संवेदनशीलता और सहृदयता को उजागर करती है।

यानी "प्यासा" सिर्फ एक फिल्म नहीं, एक कविता है — एक सशक्त सामाजिक टिप्पणी जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी 1957 में थी। यह गुरु दत्त की सबसे महान कृतियों में से एक मानी जाती है, और भारतीय सिनेमा की अमर धरोहर है।

3. वसायिकता और मसाला युग (1970–1990)

इस युग में हिंदी सिनेमा पूर्ण रूप से व्यावसायिक हो गया। 'मसाला फिल्म' नामक शैली का जन्म हुआ जिसमें एक ही फिल्म में एक्शन, रोमांस, कॉमेडी और संगीत को एक साथ परोसा गया।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ: 'एंग्री यंग मैन' की छवि (अमिताभ बच्चन); राजनीतिक और सामाजिक असंतोष का चित्रण; स्टंट, ड्रामा और मेलोड्रामा

उदाहरण: शोले (1975), दीवार (1975), मुकद्दर का सिकंदर (1978)

आगे हम एक उदाहरण के रूप में शोले फिल्म की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे जो निम्नानुसार है।

शोले (1975) : संक्षिप्त फिल्म समीक्षा **निर्देशक**: रमेश सिप्पी **लेखक:** सलीम-जावेद

मुख्य कलाकार: अमिताभ बच्चन (जय), धर्मेन्द्र (वीरू), संजीव कुमार (ठाकुर), अमजद ख़ान (गब्बर सिंह), हेमा मालिनी (बसंती), जया भादुरी (राधा)

कहानी का सार: शोले की कहानी एक पूर्व पुलिस अधिकारी ठाकुर बलदेव सिंह द्वारा दो पूर्व अपराधियों जय और वीरू को गाँव रामगढ़ में खतरनाक डाकू गब्बर सिंह से बदला लेने के लिए बुलाने की है। यह कहानी दोस्ती, साहस, बलिदान, और न्याय की भावना को केंद्र में रखकर आगे बढ़ती है।

मुख्य विशेषताएँ:

चरित्र चित्रण: गब्बर सिंह को भारतीय सिनेमा के सबसे डरावने और यादगार खलनायकों में गिना जाता है। जय-वीरू की दोस्ती एक आदर्श बन गई। ठाकुर का प्रतिशोध, फिल्म का भावनात्मक केंद्र है।

संवाद: फिल्म के कई संवाद जैसे "जो डर गया, समझो मर गया" और "अरे ओ सांभा!" "सरदार मैंने आपका नमक खाया है। अब गोली खा। हम अंग्रेज के जमाने के जेलर है। हमारा नाम सूरमा भोपाली ऐसा ही नहीं है। पिस्तोल जेल में आ चुका है।" आज भी जनमानस में जीवित हैं।

संगीत: आर. डी. बर्मन का संगीत और किशोर कुमार व लता मंगेशकर की आवाज़ों ने फिल्म को यादगार बना दिया। छायांकन और निर्देशन रमेश सिप्पी का निर्देशन और रमणीय लोकेशन (जैसे रामनगर, कर्नाटक) ने फिल्म को एक महाकाव्य रूप दिया है।

महत्व और प्रभाव: शोले को "भारत की अब तक की सबसे बड़ी मसाला फिल्म" माना जाता है। इसने "मल्टी-जॉनर" शैली को परिभाषित किया — जिसमें एक्शन, रोमांस, कॉमेडी और ड्रामा सब शामिल थे। फिल्म ने भारतीय पॉप-कल्चर में स्थायी प्रभाव छोड़ा और कई बार पुनः प्रदर्शित की गई।

यानी शोले केवल एक फिल्म नहीं, बल्कि एक संवेदनात्मक अनुभव है जिसने हिंदी सिनेमा की दिशा को बदल दिया। यह दोस्ती, न्याय, और प्रतिशोध की शाश्वत गाथा है, जिसे हर पीढ़ी में सराहा जाता रहा है। इसमें मनोरंजन करने वाले प्रसंग भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं।

4. उदारीकरण और नया यथार्थवाद युग (1991–2010)

1991 में भारत में आर्थिक उदारीकरण के बाद फिल्मों में शहरीकरण, वैश्वीकरण और आधुनिक जीवनशैली का प्रभाव दिखने लगा। विदेशों में बसे भारतियों की कहानियाँ, कॉर्पोरेट संस्कृति, और नए विचारों को प्रमुखता मिली।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ: NRI सिनेमा (दिलवाले दुल्हनिया ले जाएंगे); मल्टीप्लेक्स संस्कृति की शुरुआत; महिला किरदारों की सशक्त भूमिका

उदाहरण: लगान (2001), स्वदेस (2004), रंग दे बसंती (2006),

आगे हम एक उदाहरण के रूप में **लगान** फिल्म की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे जो निम्नानुसार है।

फिल्म समीक्षा (संक्षेप में): लगान (2001)

निर्देशक: आशुतोष गोवारिकर **मुख्य कलाकार:** आमिर ख़ान, ग्रेसी सिंह, पॉल ब्लैकथॉर्न, रचाना शाह

संगीत: ए.आर. रहमान **भाषा:** हिंदी (कुछ अंग्रेज़ी संवाद)

कहानी का सार: लगान 19वीं सदी के उत्तरार्ध की पृष्ठभूमि में बसे एक काल्पनिक गांव "चंपानेर" की कहानी है, जो ब्रिटिश राज के अधीन है। गांव वाले पहले से ही सूखे और गरीबी से जूझ रहे हैं, और तभी अंग्रेज़ अफसर कैप्टन रसेल उन्हें दोगुना लगान (कर) भरने का आदेश देता है। गांव का नौजवान भुवन (आमिर ख़ान) अंग्रेजों को चुनौती देता है कि अगर गांव वाले क्रिकेट (जिसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं) में अंग्रेज़ों को हरा दें, तो लगान माफ कर दिया जाए। अंग्रेज़ चुनौती स्वीकार करते हैं — और फिर शुरू होती है तैयारी, संघर्ष, विश्वास और एक अद्भुत टीम भावना की कहानी।

प्रमुख विशेषताएं:
अभिनय: आमिर ख़ान ने भुवन के रूप में प्रेरणादायक प्रदर्शन किया है। सहायक कलाकारों (राजा अय्यप्पन, आदित्य लाखिया, राजेश विवेक आदि) ने भी अपने किरदारों में जान डाल दी है।

निर्देशन: आशुतोष गोवारिकर का निर्देशन भव्य, बारीक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध है। उन्होंने एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक खेल आधारित फिल्म को बहुत कुशलता से गढ़ा है।

संगीत: ए.आर. रहमान का संगीत फिल्म की आत्मा है। "घनन घनन", "चले चलो", "ओ पालनहारे" और "मितवा" जैसे गीत आज भी दिल को छूते हैं।

थीम: औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ प्रतिरोध,एकता, विश्वास और संघर्ष ,सांस्कृतिक आत्म-सम्मान और पहचान बनाने की प्रेरणा देने वाली फिल्म।

यानी "लगान" एक प्रेरणादायक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महाकाव्य है, जो मनोरंजन के साथ-साथ एक गहरा सामाजिक संदेश भी देती है। यह भारतीय सिनेमा की सबसे महत्वपूर्ण फिल्मों में से एक है, जिसे ऑस्कर के लिए नामांकन भी मिला था (सर्वश्रेष्ठ विदेशी भाषा फिल्म, 2002)।

5. समकालीन युग (2011–वर्तमान)

वर्तमान हिंदी सिनेमा विविधता, विषयों की गहराई, और तकनीकी प्रगति का संगम है। स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म्स (जैसे Netflix, Amazon Prime) के आगमन से कंटेंट-सेंट्रिक सिनेमा को बढ़ावा मिला है।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ: रियलिस्टिक एवं बायोपिक फिल्मों की बढ़त, क्षेत्रीय विषयों का चित्रण, जाति, और लैंगिक समानता जैसे संवेदनशील विषयों पर फिल्में बनाने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

उदाहरण: अंधाधुन (2018), गली बॉय (2019), शेरनी (2021), फ़िल्म "दंगल" की समीक्षा:, दंगल (2016)
नाम: दंगल **निर्देशक:** नितेश तिवारी
मुख्य कलाकार: आमिर ख़ान, साक्षी तंवर, फातिमा सना शेख, सान्या मल्होत्रा, ज़ायरा वसीम, सुहानी भटनागर
रिलीज़ वर्ष: 2016 **शैली:** जीवनी आधारित खेल-नाटक (Biographical Sports Drama)

कहानी (Plot Summary)

कहानी पर आधारित है। महावीर सिंह का सपना था कि वह भारत के लिए कुश्ती में गोल्ड मेडल जीतें, लेकिन पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण वह ऐसा नहीं कर पाए। वह चाहते थे कि उनका बेटा इस सपने को पूरा करे, लेकिन जब उन्हें केवल बेटियां होती हैं, तो वह तय करते हैं कि वह अपनी बेटियों को ही पहलवान बनाएंगे। शुरुआत में बेटियां कुश्ती से दूरी बनाती हैं, लेकिन समय के साथ वे समझती हैं कि यह सिर्फ उनके पिता का सपना नहीं, बल्कि उनकी काबिलियत का भी प्रमाण है। फिल्म खासकर गीता फोगाट के संघर्ष और राष्ट्रमंडल खेलों (Commonwealth Games) में स्वर्ण पदक जीतने के सफर को दर्शाती है।

प्रमुख विशेषताएं (Key Highlights)
अभिनय (Acting): आमिर ख़ान ने महावीर सिंह फोगाट के किरदार में असाधारण अभिनय किया है। उन्होंने न केवल अपनी बॉडी ट्रांसफॉर्म की, बल्कि एक सख्त, लेकिन संवेदनशील पिता के रूप में दर्शकों को बांधे रखा। फातिमा सना शेख

और सान्या मल्होत्रा ने गीता और बबीता के रूप में बेहतरीन प्रदर्शन किया, जबकि बाल कलाकार ज़ायरा वसीम और सुहानी भटनागर ने भी दिल जीत लिया।

निर्देशन (Direction): नितेश तिवारी का निर्देशन कसा हुआ है। उन्होंने खेल, पारिवारिक संबंधों और नारी सशक्तिकरण को बहुत संतुलित तरीके से प्रस्तुत किया है।

संगीत (Music): प्रीतम द्वारा रचित संगीत और अमिताभ भट्टाचार्य के बोल फिल्म को ऊर्जा और भावना से भर देते हैं।

"धाकड़", "aanikarak Bapu" जैसे गाने खासा लोकप्रिय हुए।

संदेश (Message): यह फिल्म नारी सशक्तिकरण, परिवार, संघर्ष और देशभक्ति की भावनाओं को उजागर करती है। बेटियों को समान अवसर देने की प्रेरणा देती है।

कमज़ोर पक्ष (Weaknesses): फिल्म का अंतिम हिस्सा थोड़ा सा नाटकीय और फिल्मी बन जाता है, खासकर क्लाइमैक्स में पिता का स्टेडियम में न होना कुछ दर्शकों को अस्वाभाविक लग सकता है। कुछ आलोचकों का मानना है कि फिल्म में पिता की कठोरता को पूरी तरह सकारात्मक रूप में दिखाया गया है, जिस पर बहस की जा सकती है।

यानी दंगल सिर्फ एक खेल फिल्म नहीं है, यह एक प्रेरक कहानी है आत्म-विश्वास, दृढ़ता और परिवार के सपनों को साकार करने की। यह फिल्म हर उम्र के दर्शकों को पसंद आती है और खासकर भारत में "बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ" जैसे सामाजिक संदेश को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष

समग्र अध्ययन से स्पष्ट होता है कि हिंदी सिनेमा, जिसे बॉलीवुड के रूप में जाना जाता है, समय के साथ निरंतर परिवर्तनशील और गतिशील रहा है। प्रारंभिक दौर में दादा साहेब फाल्के द्वारा स्थापित नींव ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक कथाओं को अभिव्यक्ति दी, वहीं स्वर्ण युग में सिनेमा ने सामाजिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाओं को सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। इसके पश्चात व्यावसायिक युग में मनोरंजन प्रधान 'मसाला' फिल्मों ने जनसामान्य को आकर्षित किया, जबकि उदारीकरण के बाद सिनेमा में वैश्वीकरण, आधुनिक जीवनशैली और नए सामाजिक विमर्शों का समावेश हुआ। समकालीन दौर में तकनीकी विकास, डिजिटल प्लेटफॉर्म्स और विविध विषयों के कारण हिंदी सिनेमा अधिक व्यापक, यथार्थपरक और प्रयोगशील बन गया है।

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक संरक्षण और वैचारिक जागरूकता का प्रभावी साधन है, जो समय-समय पर समाज का मार्गदर्शन भी करता रहा है।

संदर्भ सूची (Bibliography)

Rajadhyaksha, A., & Willemen, P. (1999). Encyclopaedia of Indian Cinema.

Dwyer, Rachel. (2006). Filming the Gods: Religion and Indian Cinema.

Ganti, Tejaswini. (2004). Bollywood: A Guidebook to Popular Hindi Cinema.

Mehta, Rini Bhattacharya. (2011). Bollywood and Globalization.

Majumdar, Neepa. (2020). The Contemporary Hindi Film Industry.

A.I., INTERNET, Chat GPT.

Received: 15.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

अनीता भारती की कहानियों में दलित नारी अस्मिता और नारी संघर्ष

उषा*

ushamahours@gmail.com

सारांश

अनीता भारती दलित साहित्य की चर्चित कहानीकार, आलोचक और प्रसिद्ध कवियत्री रही हैं। उन्होंने सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में कार्य करते हुए दलित स्त्री जीवन को करीब से देखा और अपने साहित्य लेखन में उसको अभिव्यक्ति प्रदान की। उनकी कहानियों को एक थी कोटे वाली तथा अन्य कहानियां नामक कहानी संग्रह में संकलित किया गया है। इसमें पन्द्रह कहानियां संकलित हैं। उनकी कहानियों में न केवल जाति उत्पीड़न का चित्रण है बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के विरूद्ध नारी संघर्ष को भी दिखाया गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में अनिता भारती की कहानियों में अभिव्यक्त दलित नारी अस्मिता और नारी संघर्ष का विश्लेषण किया गया है।

बीज शब्द-

दलित साहित्य, दलित कहानी, दलित लेखिका, अनिता भारती, दलित स्त्री, दलित चेतना।

अनिता भारती के कहानी संग्रह एक थी कोटे वाली तथा अन्य कहानियां की प्रथम कहानी नई धार में सक्रिय आन्दोलन के कार्यकर्ताओं के असली चेहरे का पर्दाफाश किया गया है। इसके साथ ही इसमें मीडिया की भूमिका पर भी सवाल उठाए गए हैं। समाज में दलितों पर हो रहे अत्याचारों पर बुद्धिजीवी वर्ग के दृष्टिकोण को दर्शाया गया है। इसमें 'दलित भेदभाव विरोधी समिति' से जुड़ी कार्यकर्ता रमा प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता अभिव्यक्ति को महाराष्ट्र में हुए खैरलांजी दलित हत्याकांड़ सम्बन्धित अपनी सभा में बुलाना चाहती है। लेकिन वह साफ साफ मना न करते उनकी बात को टालकर प्रगतिशील डेमोक्रेटिव राइटथिंकिंग फोरम के कार्यक्रम में शामिल होती है। इससे अभिव्यक्ति के नजरिये का साफ पता चलता है कि वह दलितों के कार्यक्रमों में नहीं आना चाहती, लेकिन दलितों के मुद्दे पर अपनी राय रखकर मीडिया में वाहवाही बटोरती है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने एक ओर शिक्षित गैर दलित सामाजिक कार्यकर्ता अभिव्यक्ति के माध्यम से तथाकथित बुद्धिजीवियों के चरित्र का पर्दाफाश किया है, वहीं दूसरी ओर शान्ति देवी के माध्यम से दलित सामाजिक कार्यकर्ताओं की हकीकत भी बयां की है। "दलित बिरादरी में जन्मी शान्ति देवी ने अकेले ही गांव के गुंडा तत्वों के खिलाफ लड़ते हुए अपनी जमीन खोई, इज्जत गंवाई, यहां तक कि उसका आदमी भी उसे कुलटा मर्दमार कहता हुआ छोड़कर चला गया। वह अपने जुझारूपन के लिए खासी विख्यात थी।"[1] लेकिन राजनीति के कारण वह कर्मठ दलित कार्यकर्ता से अवसरवादी, राजनीतिक पिछलग्गु, स्वार्थी बन गई जिसने दलित आन्दोलन को आगे बढ़ाने की बजाए कुंद ही किया। इसके बारे में लेखिका ने लिखा भी है कि, "बाबा साहब का नाम लेकर गरीब भोली, मासूम और भावुक दलित जनता को इन राजनैतिक पिछलग्गुओं ने खूब छला है। ऐसे लोग दलित आन्दोलन में छल-कपट और अवसरवाद की विकृत परिपाटी डाल

* **पी-एच. डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली**

रहे हैं।"[2] रमा दलित और गैर दलित आन्दोलन को एकजुट करना चाहती है लेकिन अभिव्यक्ति जैसे ऊंची पहुंच वाले लोग उनसे नहीं जुड़ना चाहते। अभिव्यक्ति के चरित्र का यह दोहरापन ही है। वह एक ओर तो दलितों पर ही बात करने के लिए दलित आन्दोलन में आने से इंकार कर देती है और दूसरी ओर मीडिया के सामने एकता की बात करते हुए कहती है, "दलित महिलाओं की स्थिति पर महिला आन्दोलन शर्मशार है, हमें लगता है कि अगर सब मिल जाएं तो हमारी शक्ति दुगुनी हो जाएगी और हम महिला अधिकारों के लिए बेहतर तरीके से लड़ पाएंगे। मैं ऐसे समाज की कल्पना करती हूं जिसमें स्त्री बस स्त्री है वह न दलित है, न पिछड़ी। वह मर्दों के समान ही समाज की एक सम्पूर्ण इकाई है। इसलिए जब हम एक हो जाएगी तब हम मिलकर इस मर्दवादी, पितृसत्तात्मक, ब्राह्मणवादी समाज की बेड़ियां तोड़ देगीं।"[3] इसप्रकार प्रस्तुत कहानी में अनिता भारती ने आन्दोलनकारियों की सच्चाई को सामने रखते हुए सवाल उठाया है, "कि ऐसा क्यों होता है, जब कोई दलित ग्रुप दलित मुद्दों पर अपनी बात रखता है तो ये तथाकथित प्रगतिशील लोग उसे जातिवादी फासिस्ट घोषित कर देते हैं, और यही प्रगतिशील लोग दलित और उनके मंचों की उपेक्षा कर अन्य मंचों से दलितों के बारे में बोलते हैं तो प्रगतिशील, डेमोक्रटिक और मानव अधिकारवादी कहलाते हैं।"[4] कहानी के अन्त में लेखिका ने दलित आन्दोलन को रास्ता दिखाते हुए अपने विचार भी प्रकट किए हैं। वे सन्देश देती हैं कि दलित समाज को अपनी लड़ाई स्वयं ही लड़नी होगी। उन्हें किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं है। दलित भेदभाव समिति की रमा अन्त में हारकर भी उठ खड़ी होती है और निर्णय लेती है कि किसी गैर दलित वक्ता के इंतजार में वह अपना कार्यक्रम स्थगित नहीं करेगी बल्कि स्वयं ही वक्ता बनकर दलितों के बारे अपने विचार रखेंगी और अपने कार्यक्रम को सफल बनाएगी।

औकात कहानी में कामकाजी जगहों पर व्याप्त दलित विरोधी मानसिकता को उजागर किया गया है। इसमें ऑफिस में काम करने वाले ओ.पी. दुबे के डायेरेक्टर पद से रिटायर होने की पार्टी के दौरान मिसेज मल्हौत्रा, मिसेज वर्मा, जैन साहब, मि. शर्मा आदि सभी लोग अचनक घुस आए एक कुते के बहाने अपनी दलित विरोधी मानसिकता जाहिर कर देते हैं। मिस्टर जैन कहते हैं कि "मान लो यह कुता अभी मर जाएं और इंसान के रूप में अभी जन्म ले ले और तुझे तो पता है कि आजकल हर पोस्ट के लिए उम्र 18-19 ही है, कल यही कुता आई. ए. एस. या आई. पी. एस. में आ गया तो तेरा बांस नहीं बन जाएगा?। मिसेज मल्हौत्रा ने हां में हो मिलाते हुए कहा "जैन साहब ठीक कहते हैं, अगर ये एस.सी. एस. टी. कौम में पैदा होकर पढ़ लिख गया तब तो पक्का बनेगा।"[5] उनकी इस बातचीत से यह स्पष्ट होता है कि सवर्ण समाज आरक्षण को लेकर भी रूष्ट है। वे कुते के बहाने आरक्षण की कमियों पर भी कटाक्ष कर रहे हैं। उनका मानना है कि आरक्षण के कारण अयोग्य दलित भी ऑफिसर बन जाते हैं। दलितों को ऊंचा उठता हुआ देखकर उन्हें सहन नहीं होता और वे अपना सारा गुस्सा कुते पर निकालते हैं और उसे गाली देते हुए लात मारकर बाहर निकाल देते हैं।

पैर नहीं पूजेगें कहानी में ग्रामीण समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव, स्त्री जीवन के यथार्थ, पुजारी की मानसिकता को दर्शाया गया है। प्रस्तुत कहानी गांव के शिव मंदिर के पुजारी द्वारिका प्रसाद पांडे की लड़की के विवाह कार्यक्रम से सम्बन्धित है। उनकी बेटी पूनम के विवाह के लिए खोजे गए लड़के की एक ही मांग है कि, "लड़की गौरी चिट्टी हो, ताकि बच्चे गौरे पैदा हो, बड़ों के सामने सिर ढककर चलने वाली हो, धार्मिक विचारों की हो।"[6] इसमें स्त्री को वस्तु समझने की मानसिकता को दर्शाया गया है। उसे सिर्फ बच्चे पैदाकरने की मशीन समझा जाता है। पढ़ी लिखी लड़की को भी घरेलू बनाने की मानसिकता, उसे योग्य हेते हुए भी नौकरी करने की अनुमति ना देना जैसी सोच का चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत कहानी में गांव के पुजारी की स्थिति का भी चित्रण किया गया है। ग्रामीण परिवेश में लोगों पर धार्मिकता के प्रभाव को भी देखा जा सकता है,'गांव के शिव मन्दिर के पुजारी हैं। खूब चढ़ावा आता है, ऊपर से फल, कपड़े, अनाज बोनस में। फिर पांडे जी गांव में रोज कोई न कोई हवन कराते ही रहते हैं कभी किसी के मुंडन का, तो किसी के नया मकान खरीदने का या फिर किसी के काम चमकने का। एक बार तो उन्होंने पंचायत के नल लगवाने पर ही हवन करा दिया ताकि पानी शुद्ध आता

रहे।"[7] इन सभी के पीछे केवल लोगों की धार्मिक भावना ही नहीं थी बल्कि पांडे जी की चतुराई भी कार्य करती थी। उनके व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए बताया है कि, "पांडे जी की खासियत है कि वह गांव के किसी व्यक्ति को बेकार नहीं समझते। सब व्यक्ति उनकी नजर में कीमती है, किससे झाड़ू लगवानी है, किससे मन्दिर की सफाई करानी है, कौन उनको खेत से अनाज दे सकता है। कौन उनके रात को पैर दबा सकता है, वह सबके गुण पहचान कर उनके लिए काम छांटकर रखते हैं। अभिनय में तो ऐसे पक्के कि अच्छे से अच्छे अभिनेता भी मात खा जाएं। उन्हें मालूम है कि किससे क्या बात कहे कि सुनने वाला भी खुश हो जाएं और उनका काम भी निकल जाएं।"[8] अपनी इन्हीं आदतों की वजह से उन्होंने अपनी बेटी के विवाह के दौरान भी गांव के लोगों को काम पर लगा दिया। उन्होंने चमारों के मुखिया सरजू को धर्मशाला की सफाई और रामभज नाई को बारातियों को जलपान कराने एवं खातिरदारी की जिम्मेदारी दे दी। पांडे जी ने उन सब लोगों को भावनात्मक बातें कहकर काम पर लगा दिया, "देख भई रामभज! बरातियों की खातिरदारी में कोई कमी ना रह जाए, तू ये मत समझियों कि पांडे जी की बेटी की शादी है, बल्कि तू ये सोच तेरी अपनी बेटी की शादी है। पांडे जी का भरे गले से हाथ पकड़ना रामभज को द्रवित कर गया।"[9] उन्होंने सरजू को भी यही कह कि वे पांडे जी की बेटी को अपनी बेटी समझे। शादी वाले एक छोटी सी गलती होने पर बारातियों द्वारा रतन को पीटने पर पांडे जी नाराज हो गए। इस घटना पर रामभज बोले कि पूनम बिटिया की शादी के बारे में सोचकर हम लोग चुप रहे लेकिन अब पांडे जी का व्यवहार बदल गया। वे रामभज और उनके साथियों पर भड़कते हुए बोले, "अपनी जुबान से पूनम का नाम मत लेना, अरे! तुम्हें जरा सा क्या काम सौंपा कि मालिक बन गए। दासी को रानी कह देने से क्या दासी रानी हो जाती है?"[10] इतने दिनों तक पांडे जी लोगों को भावनात्मक रूप से द्रवित करके अपना काम निकालते रहे लेकिन अबकी बार उनका असली चेहरा लोगों के सामने आ गया। केवल पांडे जी ही नहीं बल्कि उनके समधी को भी निम्न जाति के लोगों द्वारा पूनम को अपनी बेटी कहना सहन नहीं हुआा। वे भी भड़क गए और कहने लगे, "सालों अपनी जात देखो! बनने चले हैं हमारी बेटियों के बाप! द्वारिका प्रसाद पांडे अपने समधी की हां में हां मिलाते हुए घृणा से बोला, तुम्हारा काम है हमारा गू-मूत साफ करना और हमारे पैर पूजना।"[11] पांडे जी और उनके जैसे लोगों से अपने बारे में अपमानजनक बातें सुनकर सरजू जैसे निम्न जातियों के लोग सदियों से चुप रहे लेकिन अब नहीं। इस बार उन्होंने उनका विरोध किया और उनकी गुलामी करने से इंकार कर दिया। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने इस घटना के माध्यम से दलित समाज को यह सकारात्मक संदेश देने का प्रयास किया है कि अब समय आ गया है कि अब वे जातिगत आधार पर हो रहे भेदभाव का विरोध करना आरंभ करें। कहानी में रामभज ने पांडे जी की आंखों में आंख मिलाकर कहा, "तो ठीक है हम इस जिम्मदारी का आज से त्याग करते है। अरे रमेश! रतन! कहदे इनसे हम आज से तुम्हारे पैर नहीं पूजेंगे। जो मान-सम्मान आज तक हमने तुम्हें दिया अब अपने आप को खो देंगे।"[12] दलित समाज में हो रहे बदलाव को प्रस्तुत कहानी के माध्यम से दर्शाया गया है।

एक लड़ाई की मौत कहानी स्त्री जीवन पर आधारित है। इसके साथ ही इसमें पुलिस के अत्याचारों, मनमानी और शोषण को दर्शाया है। कहानी की पात्रा लक्खी चार भाइयों की अकेली बहन अपनी मर्जी से मुसलमान असलम से शादी कर लेती है जिसके कारण उसके घर वाले नाराज होकर उससे नाता तोड़ लेते हैं। वह असलम के साथ दिल्ली आ गई और झुग्गी में रहने लगी और चाय का खोखा चलाने लगी। एक दिन असलम घर से निकला लेकिन वापिस नहीं आया। "लक्खी जगह-जगह मारी-मारी फिरती रही उसे अस्पतालों में ढूंढा, थानों में गई, शराब के ठेके तक उसने छान मारे, भगवान जाने कहां गया।"[13] असलम की किसी ने हत्या कर दी थी। असलम का पता लगाने लक्खी पुलिस स्टेशन गई तो शुरूआत में पुलिस वालों ने उसकी मदद का नाटक किया लेकिन अन्त में उसको असलम की मौत के बारे में बता दिया। वे लक्खी के पीछे पड़ गए और लक्खी के विरोध करने पर अपनी असलियत पर उतर आए। चार पुलिस वाले लक्खी के पीछे पड़ गए और उसे द्रोपदी बनने पर मजबूर करने का प्रयास किया। लक्खी ने उनसे कहा कि अपनी मां, बहन को द्रोपदी बनाओ। इस बात का उन्होंने बदला लिया, "साली कुतिया हमारी मां, बहन, बीवी को गाली देती है अपनी तुलना तो करके देख उनसे, तेरी जुबान

काट लेगे। साली मुसलमान के साथ भाग आई फिर सती सावित्री बनने का ढोंग करती है' यह कहते हुए पुलिस वाले ने उसकी चोटी खींच बाहर निकाल बीच में डाल दिया। चारों दानव उसके शरीर को रौंदते रहे। वो गला फाड़-फाड़कर रोती रही, पर मजाल कोई माई का लाल उसे बचाने आया हो।"[14] यहां पुलिस रक्षक की अपेक्षा भक्षक बन गई। इसके बावजूद भी लक्खी का कानून पर भरोसा बना रहा। इस घटना के बाद भी लक्खी उनके खिलाफ पुलिस स्टेशन गई। वहीं भी लक्खी के साथ धोखा ही हुआ। चोर चोर मौसेरे भाई। थानेदार ने लक्खी की रपट लिखने की अपेक्षा उन पुलिस वालों का बचाव किया और उनको लक्खी के बारे में सूचना दी। "अभी लक्खी को घर पहुंचे आधा घंटा भी नहीं हुआ था कि वो चारों पुलिस वाले उसके घर पहुंच गए। सिपाही दीपक के हाथ में मिट्टी के तेल का डिब्बा था चारों ने घर के अन्दर दरवाजा बन्द कर लिया। और उसे थानेदार से शिकायत करने के लिए खूब मारा पीटा फिर उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी।"[15] पहले तो पुलिस वालों ने लक्खी की इज्जत ही लूटी थी लेकिन अब उसे मुसीबत खड़ी करते देखकर जान से मारने का प्रयास किया। इतने अन्याय के बाद भी लक्खी को किसी ने मदद नहीं की। उसके घरवालों को सूचना देने पर उन्होंने भी लक्खी की मदद करने से इंकार कर दिया। लक्खी के घर वालों ने उसे उसी दिन मरा हुआ समझ लिया था जिस दिन लक्खी ने अपनी मर्जी से मुसलमान लड़के से विवाह किया था। इतने अत्याचारों के बाद भी लक्खी ने हिम्मत नहीं हारी। वह अपने घरवालों से, समाज से, पुलिस वालों से, अन्याय से, यहां तक की अपने जीवन से भी लड़ाई लड़ती रही। फिर भी लक्खी ने लड़ाई करने जज्बा नहीं छोड़ा। पुलिस वालों के दबाव में अस्पतालों ने भी उसे भर्ती नहीं रखा। आधी से अधिक जली हुई हालत में भी लक्खी ने हिम्मत नहीं हारी। वह मरते दम तक यही कहती रही, "चंपा देख मैं नहीं मरूंगी, मुझे अपना बदला लेना है।"[16] इसमें स्त्री की जीवटता और संघर्षशीलता को भी दर्शाया है। लक्खी के जीवन के माध्यम से समाज, संस्कृति, रिश्ते-नाते, न्याय व्यवस्था, पुलिस, कानून, अस्पताल, संवेदनशीलता, मानवता आदि सभी को कटघरे में खड़ा किया है। ये सभी स्त्री जीवन के लिए मूक हैं बल्कि लक्खी यानी स्त्री की दुर्दशा के लिये सभी जिम्मेदार हैं। वह सामान्य सी स्त्री घायल आस्था में भी इन सभी के लिए खतरा बन गई और सभी ने मिलकर उसकी हत्या कर दी। लक्खी के साथ ही उसकी लड़ाई का भी अन्त हो गया। इसके बावजूद भी लक्खी का साथ निभाने वाली गरीब स्त्री चम्पा अब लक्खी की लड़ाई लड़ने का बेड़ा उठाना चाहती हैं यह सम्पूर्ण स्त्री समाज के लिए आशा की किरण है। प्रस्तुत कहानी में लेखिका ने स्त्री जीवन का यथार्थ चित्रण करने के साथ ही लक्खी की लड़ाई का पूर्णतः अन्त नहीं दिखाया बल्कि उसकी लड़ाई को चम्पा के माध्यम से लड़ने की उम्मीद कायम रखी है। यह अनीता भारती की कहानियों की विशेषता है। वे अपनी कहानियों में दबे कुचले समाज के दुख दर्दों का ही चित्रण नहीं करती बल्कि एक नई उम्मीद और संकल्प के साथ उनकी समस्याओं के सुखान्त को प्रस्तुत करती हैं। वे शिक्षा, चेतना, एकता, जागरूकता के माध्यम से सदियों से चले आ रहे शोषण का खात्मा चाहती हैं और इसे अपनी कहानियों के द्वारा प्रस्तुत करती हैं। यही साहित्य के उद्देश्य को सार्थक भी करती हैं।

तीसरी कसम कहानी में ग्रामीण परिवेश में दलित समाज में व्याप्त अशिक्षा और गरीबी के कारणों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें रमैनी, उसकी बेटी मीनू द्वारा स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने में आने वाली कठिनाइयों का चित्रण किया गया है। वे पढ़ना चाहती हैं लेकिन समाज की पूर्वाग्रह ग्रसित मानसिकता उनके आड़े आती है। उन पर स्कूल में बच्चे ही नहीं अपितु अध्यापक भी व्यंग्य करते हैं। "वो मुझे सबसे पीछे बैठाते हैं, पीछे बैठकर मेरा मन पढ़ने में मन नहीं लगता, बहिनजी भी मुझे गोबर गणेश कहती हैं, बच्चे मुझे देखकर हंसते हैं, कहते हैं, अरी ओ रमैनी नौटंकिया, नौटंकी दिखा।"[17] उनकी जाति के लोग नाचने गाने का काम करते हैं खासकर महिलाएं। रमैनी की मां लक्ष्मी भी यही काम करते करते मर गई। अब रमैणी भी यही काम कर रही है लेकिन वह नहीं चाहती कि उसकी बेटी मीनू भी यही काम करे। वह मीनू को पढ़ाना चाहती है लेकिन पढ़ाई के दौरान समाज की मानसिकता और सदियों से बनी हुई परम्परा का सामना करना पड़ता है। रमैनी के पिता राधे की मां सुनारो नाचने गाने के दौरान लोगों द्वारा छेड़ी जाती, परेशान की जाती, लोग उसे नाचने गाने वाली कहकर बेइज्जत करते लेकिन वह

स्वयं को कलाकार कहती थी। वह अपने पति से कहती, "चम्पा के बापू, हम कलाकार हैं नाचना-गाना हमारी कला है। इसी से हमारी पहचान है। हम कोई व्यापार नहीं करते, चोरी नहीं करते।"[18] भले ही वो अपने नाचने गाने के कार्य को अपनी मेहनत समझती परन्तु लोग उन्हें हीन भाव से ही देखते थे। सुनारो शहर में जाकर अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती थी और अपने इस काम को भी छोड़ना चाहती थी लेकिन उसके पति को शहर से डर लगता। इमनी दूर जहां कोई नाती रिश्तेदार नहीं वो कैसे रहेगें। कुछ दिन बाद सुनारो का पति कहीं गायब हो गया या गायब करवा दिया गया क्योंकि गांव के दबंग पंडित बदरीनारायण की कुदृष्टि सुनारो पर थी। उसने सुनारो की बेबसी का फायदा उठाया और उसके नाचने के पैसे भी लूटता रहा। इसी शोषण को सहते सहते सुनारो भी चल बसी और अपने दो छोटे-छोटे बच्चों राधे और चम्पा को पीछे छोड़ गई। मजबूरन चम्पा को भी अपनी मां की तरह न चाहते हुए भी नाच गाना ही करना पड़ा। वह अपने छोटे भाई राधे और स्वयं का पेट पालने के लिए हल चलाना चाहती थी लेकिन जात बिरादरी वालों ने उन्हें इजाजत नहीं दी। उसकी जाति को औरतों को नाच गाने के अलावा दूसरे काम की अनुमति नहीं होती। उनकी जाति वाले ही नहीं बल्कि उनके पति भी यही चाहते कि औरत नाच गाना ही करे। राधे की बेटी सोना को उसका पति यह कहकर छोड़ गया कि अगर नाच-गाना नहीं करेगी तो मेरे किसी काम की नहीं। राधे की मां, बहन, बेटी सभी को अपना पारम्परिक पेशा नाचना गाना ही करना पड़ा। गांव में रहते हुए उन औरतों के पास इसके अलावा कोई दूसरा चारा नहीं था। इसलिए राधे ने अपनी छोटी बेटी रमैनी को शहर में जाने की सलाह देता है। शहर में उसे संगीत मास्टर चुन्नीलाल के स्प में भेड़िया मिला। विरोध करने पर चुन्नीलाल ने रमैनी को उसकी औकात दिखाते हुए कहा, 'साली, हरामजादी, नखरे दिखाती है। बेटियां, तेरे जैसी थोड़े ही होती हैं। तेरे जैसी तो बस रंडी होती है। आज नहीं तो कल तुझे रंडी बनना ही है तो मुझसे ही शिक्षक क्यों नहीं बना लेती। किसी को पता भी नहीं चलेगा। वासना में अंधे गुरुजी की तीसरी कसम ने रमैनी को झपट्टा मार नीचे गिरा लिया। अपने पैंजों से रमैनी की देह लहुलुहान कर दी। आखिकार बाज अपने मकसद में कामयाब हो ही गया।"[19] इस दुर्घटना के बाद रमैनी का मन कठोर हो गया। वह रमैनी देवी बनकर नाचने गाने का काम करने लगी। इतना ही नहीं वह ठाकूर रामावतार की रखैल बन गई और उसके तीन बच्चों की मां भी। एक दिन ठाकुर अपनी वासना पूर्ति के लिए रमैनी के बच्चे को बाहर फेंकते हुए कहता है कि यह मेरा नहीं हैं वहीं रमैनी की अत्याचार सहने की क्षमता समाप्त हो गई और वह चंडी का रूप धारण करते हुए ठाकुर की छाती पर चढ़ गई और बोली, "खबरदार अगर मेरे बच्चे को हाथ लगाया तो तेरा खून कर दूंगी, मुझे रंडी कहने वाले तू कितना बड़ा भड़वा है अपने आपसे पूछ।"[20] इसके बाद ठाकुर वापिस कभी लौटकर नहीं आया। रमैनी नाच गाकर अकेले ही अपने बच्चे पाल रही है। वह ज्यादा पढ़ी लिखी नहीं है लेकिन आत्मविश्वास और साहस की उसमें कमी नहीं है। वह हर अत्याचार का सामना डटकर करती है। अपनी बेटी मीनू को स्कूल न जाने पर वह गुस्सा होकर कसम खाती है कि वह अपने बच्चों को पढ़ाकर ही रहेगी। रमैनी ने अपनी मां और अपने जीवन की दुर्दशा को देखा था तो उसने अपनी बेटी को इस पेशे से बचाने की कसम खाई और हर चुनौती का सामना करते हुए उसे पढ़ाने की हिम्मत दिखाई। वह अपनी बेटी को स्कूल ले जाते हुए बोली, "चल दिखा मुझे, कौन है वो टीचर जो तुझे पीछे बैठाएगी, गोबर गणेश कहेगी उसे अब मैं देखूंगी।"[21] रमैनी की यह हिम्मत दलित स्त्री के जीवन की रोशनी है। लेखिका ने प्रस्तुत कहानी में भी यह दर्शाने का प्रयास किया है कि दलित स्त्री को स्वयं ही हिम्मत दिखानी होगी। उसे अपने शोषण का खुद ही सामना करके उससे मुक्ति पानी होगी और अपनी आने वाली पीढ़ी को शिक्षित करके सदियों से चली आ रही गुलामी से मुक्ति दिलानी होगी।

जच्चा कहानी संवेदनशील और मार्मिक कहानी है। इसमें लेखिका ने समाज में गरीब स्त्री के प्रति लोगों की मानसिकता को दिखाया है। इसमें दिखाया है कि गरीब, बेबस स्त्री के प्रति लोगों की मानसिकता संवेदना की अपेक्षा सन्देह भरी होती है। बस में नवजात शिशु को लिए स्त्री को अधेड़ उम्र के पुरुष छेड़ते हैं और विरोध करने पर उसे चोर, जेब काटने वाली कहले लगते हैं। "अजी ऐसा ही भोला मुंह बनाकर जेब काटती है, देखा नहीं गोद में बच्चा भी है। इनके गिरोह है गिरोह,

इनसे पंगे मत लेना, चाकू सटा देती है बगल में और जेब कब कटी पता भी नहीं चलेगा।"[22] उस लड़की की बेबसी देखकर किसी पुरुष का दिल नहीं पसीजा। आखिरकार एक वृद्ध महिला ने उसे अपनी सीट पर जगह देते हुए संवेदना दिखाते हुए कहा, "अरी तू तो जच्चा है। जंचकी में तो गाय भैस कुते-बिल्ली तक को लोग सम्मान और दुलार देते हैं, और फिर तू तो मानुष जात है। और तेरी ये गत, वृद्धा की आंखे नम हो गई।"[23] उसके ये शब्द गरीब स्त्री की स्थिति को दर्शाते हैं कि उसकी स्थिति पशुओं से भी बदत्तर हो गई है। लागों की निष्ठुरता को मार्मिक शब्दों से नहीं पिघलाया जा सकता। ये देखकर बस में सफर कर रही शिक्षित रमा महिला अधिकारों के लिए आवाज उठाती हुई कहती है, "उठ देख इसके लिए खड़ा रहना भी कितना मुश्किल है। यह महिला सीट है कम से कम यह जगह तो हमारी है।"[24] इसके माध्यम से लेखिका ने यह सन्देश दिया है कि स्त्री को किसी की दया, रहम की भीख नहीं चाहिए बल्कि अपने अधिकार चाहिए और उसे अपने अधिकारों की लड़ाई स्वयं ही लड़नी होगी। तभी समाज में परिवर्तन होगा।

एक थी कोटे वाली कहानी के माध्यम से कार्यस्थल पर दलित स्त्री के साथ होने वाले भेदभाव को दर्शाया है। टी.जी.टी साइंस अध्यापिका गीता को लेकर स्कूल में पहले से ही बन चुके दो खेमे कोटे वाला और बिना कोटे वाला में मुकाबला होता है। दोनों उसे अपने अपने खेमे का समझते हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.एस.सी. फर्स्ट क्लास, चाल ढाल से खूबसूरत गीता को बिना कोटे वाले अपने खेमे का समझते हैं। उनको लगता है कि इतनी काबिल अध्यापक कोटे से हो ही नहीं सकती। उनकी यह सोच दलित समाज के प्रति शिक्षिक समुदाय की मानसिकता को दिखाती है। जब उनको पता चलता है कि गीता दलित है तो सभी को इस बात का दुख होता है। गैर दलित अध्यापिकाएं उस पर तरह तरह के व्यंग्य करती हैं, "अरे ये तो मायावती निकली। फिर एक कोटे वाली आ गई। क्या कमाल है, देखने से नहीं लगती। जहां देखो वहीं कोटेवाली, पूरे देश का सत्यानाश कर दिया। अब हमारे बच्चों का क्या होगा?"[25] इससे सवर्ण समाज की आरक्षण विरोधी मानसिकता का पता चलता है। आरक्षित सीट पर भी दलित व्यक्ति को सहन करना सवर्ण समाज के लिए कठिन है। उन्हें लगता है कि सभी सीटों पर केवल उनका ही एकाधिकार था और दलित समुदाय से योग्य लोग आकर उनका हक छीन रहे हैं। सवर्ण समाज के लोग दलित समुदाय के लोगों की योग्यता पर ही सवाल उठाने लगते हैं। इसी मानसिकता का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत कहानी में किया गया है। उनकी ये विष बुझी बातें सुनकर गीता सोचने पर विवश हो जाती है कि, "उसने सारी नौकरियां छोड़ टीचिंग में आना केवल इसलिए अच्छा समझा कि कम-से-कम शिक्षा के क्षेत्र में जात-पात की बात नहीं होगी। वह बच्चों को अच्छे संस्कार देगी। वह बचपन से ही सुनती आई थी कि शिक्षक देश का भाग्य निर्माता होता है। पर यहां देखकर लग रहा है कि शिक्षक भी जाति निर्माता है।"[26] लेखिका ने शिक्षा जगत में कायम जातिभेद का यथार्थ चित्रण किया है। अनीता भारती की अन्य कहानियों की तरह इसमें भी सकारात्मक दृष्टिकोण दिखाया है। पढ़ी लिखी गीता दलित होने के नाते कमजोर नहीं पड़ती और ना ही अपने आपमें कोई हीन बोध आने देती है। गीता के माध्यम से लेखिका ने दिखाया है कि शिक्षा के कारण दलित समाज में पावर आई है, "शिक्षा पावर की सीढ़ी है शिक्षा के बिना मनुष्य पशु समान है, शिक्षा से पद और पद से पावर का अद्भुत रिश्ता है।"[27] इसी विचार से प्रेरित गीता शिक्षा जगत में अपने साथ हुए दुर्व्यवहार का मुंह तोड़ जवाब देती है। वह बिना कोटे वाली अध्यापिकाओं से बेबाकी से कहती है कि, "ये क्या तुमने जाति-पाति की बातें लगा रखी है? क्या तुम शिक्षक कहलाने लायक हो? पूरा द्रोणाचार्य तुम्हारे मन में बैठा है।"[28] गीता के ये शब्द सदियों से दलित समाज के साथ हो रहे अन्याय, शोषण और भेदभाव का जबाव हैं। गीता आज की पढ़ी लिखी युवा दलित स्त्री है। वह किसी से डरती नहीं है बल्कि आरक्षण की सीट पाने वालों की योग्यता पर सवाल उठाने वालों को खुला चैलेंज करती है, "हमें अयोग्य कहते हो? हमसे कम्पीटीशन करना चाहते हो? तो आओ मुझसे करो कम्पीटीशन? देखते हैं कौन जीतता है, हम या तुम?"[29] प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने दलित स्त्री के आत्मविश्वास को दिखाया है। उन्होंने गीता के माध्यम से आदर्श दलित स्त्री की छवि का निर्माण किया है। अनीता भारती की कहानियों की यही विशेषता है कि वे अपनी कहानियों में केवल दलित स्त्री के दुख दर्दों का रोना नहीं रोती

बल्कि सजग, आत्मविश्वासी, साहसी दलित स्त्री को प्रस्तुत करती हैं। इसलिए उनकी कहानियां दलित स्त्री के लिए एक नया आयाम और आदर्श प्रस्तुत करती हैं।

सोच में अंतर कहानी समाज में व्याप्त अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित, छोटे-बड़े, उच्च-नीच के भेदभाव को दर्शाती है। सरकार द्वारा झुग्गी और बड़े घरों को तोड़ने पर पॉश कॉलोनी में रहने वाले लोगों के अलग अलग विचार अभिव्यक्त होते हैं। सरकार द्वारा रात में ही झुग्गियों के तोड़ने पर सैंकड़ों परिवार उजड़कर सड़क पर आ गए। बच्चे-बूढ़े, महिलाएं रात भर सड़क पर ही सोने के लिए मजबूर हो गए। इसके बावजूद झुग्गी को तोड़ने पर पॉश इलाके में रहने वाले खुश होकर अपने आपको सुरक्षित महसूस करते हुए कहते हैं कि, "अब यहां गंदगी करने वाला कोई नहीं आएगा। बच्चों की साईकिलें, खूंटी अरगनियों में टंगे कपड़े सब सुरक्षित हैं।"[30] वे केवल अपने स्वार्थ के बारे में ही सोचते हैं। उनके मन में झुग्गी वालों के प्रति कोई संवेदना नहीं जगती। बल्कि वे उनके बारे में सोचते हैं कि, "अरे! ये झुग्गी-झोंपड़ी में रहने वाले आखिर हैं कौन? वही भूखे, नंगे, गरीब दलित मजदूर अनपढ़ गंवार ना? आखिर इनकी हमारे सामने बिसात ही क्या है हमारे सामने? कीड़े-मकौड़ों की न?"[31] लेकिन दूसरी घटना गरीबों के मन में तथाकथित लोगों के प्रति संवेदना दर्शाती है। जब फ्लाई ओवर बनाने के लिए सरकार द्वारा बड़े लोगों के घरों को गिराने पर वही झुग्गी में रहने वाली शान्ति अपनी संवेदना जाहिर करते हुए कहती है, "देखे बेचारों ने कितने बड़े-बड़े जतन से घर बनाएं, लाखों रुपये लगाए, पर सरकार को जरा भी रहम नहीं। सब तोड़ डाला, मेरा मन तो वा दिन ते बड़ों दुखी है। हो रात भर बाल बच्चे लेकर सड़को पर पड़े रहे, सामान की कैसी दुर्गती हो रही थी।"[32] प्रस्तुत कहानी में दोनों वर्गों की सोच के अंतर को दिखाया गया है। लेखिका ने लिखा है कि, "कितना फर्क है झुग्गी और महल की सोच में। शायद बस्ती के इन गरीब लोगों को बार-बार उजड़कर घर उजड़ने का दर्द मालूम है। इन गरीब औरतों को मालूम है घर उजड़ने का मतलब पूरे जीवन पर पानी फिरना है और इसलिए वो उनके दर्द में अपने को सहभागी मानती है।"[33]

सुजाता रूक मत जाना कहानी दलित स्त्री के आत्मविश्वास और चेतना को दर्शाती है। बारहवीं में पढ़ने वाली सुजाता बिरादरी के दबाव में नौंवी फेल जोगी से विवाह करने से इंकार कर देती है। उसकी पूरा बिरादरी उसके माता पिता पर सुजाता की शादी करने का दबाव बनाते हैं और ना मानने पर उन पर जुर्माना लगाने की बात करते हैं। सुजाता के अनपढ़, गरीब मां-बाप बिरादरी के सामने कुछ बोल नहीं पाते लेकिन सुजाता अपने माता-पिता पर हो रहे अत्याचार और अन्याय का सामना करते हुए पूरी बिरादरी के सामने पूरे आत्मविश्वास के साथ उठ खड़ी होती है और बिरादरी का फैसला मानने से मना कर देती है। वह अपनी बिरादरी वालों को शिक्षा का महत्व समझाते हुए कहती है, "आप लोग कब तक उन्नसवीं सदी में रहोगे? दुनिया अंतरिक्ष तक के रास्ते खोज चुकी हैं, कभी आपने सोचा है कि आखिर विधाता का कौन सा ऐसा कानून है जिसमें यह लिखा हो केवल हमारी बिरादरी ही गली-मोहल्ले बुहारे, लोगों की गन्दगी साफ करे, झूठा-सूठा खाए। आपकी पीढ़ी को यह अच्छा लगता होगा पर हमारी पीढ़ी अब यह नहीं करेगी। पंचायत में बैठे सज्जनों, आप बताएं, यदि मैं पढ़-लिखकर डॉक्टर बन गई तो क्या केवल मैं अपना ही इलाज करूंगी? क्या हमारे पिछड़े, कुचले समाज को डॉक्टर, इंजीनियरों, शिक्षकों की आवश्यकता नहीं?"[34] इसमें लेखिका ने पीढ़ीगत अंतर को भी समझाने का प्रयास किया है इसके साथ ही शिक्षा के कारण दलित समाज की सोच में हो रहे बदलाव और चेतना को दर्शाया है।

सीधा प्रसारण कहानी मीडिया के चेहरे को बेनकाब करती है। इसमें उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की पीड़ित महिलाओं की खबर को मीडिया द्वारा अलग अलग महत्व दिए जाने को दर्शाया है। एक घटना गांव में दबंगों द्वारा दलित लड़की सुनीता का बलात्कार करके जिन्दा जलाने की हुई है और दूसरी घटना शहर में रहने वाली उच्च वर्ग की प्रियंका द्वारा आत्महत्या करने की हुई। इन दोनों घटनाओं ही स्त्रियों के जीवन से जुड़ी हैं लेकिन मीडिया ने केवल प्रियंका का ही मुद्दा उठाया। उसे हाई प्रोफाईल केस कहकर स्पेशल स्पेस दिया। लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ कहे जाने वाले मीडिया के क्षेत्र में व्याप्त भेदभाव के यथार्थ को दिखाया गया है। इसके साथ ही सुनीता के केस के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र में दलितों के साथ होने वाले अत्याचारों को भी

दर्शाया गया है। गांव के प्रधान ने सुनीता केस को सामान्य घटना बताकर सुनीता की ही गलती बता दी, "अरे मैडम यहां तो ऐसी घटनाएं आए दिन घटती रहती हैं। आप क्यों परेशान होती हैं। वैसे घटना कोई खास नहीं है जी! वैसी ही है जैसी गांव में होती है। अरे सच तो ये है कि इन ससुरों से अपनी लड़कियां संभाली नहीं जाती। जब ऊंच-नीच घट जाती है तो पुलिस में दौड़े-दौड़े फिरते हैं। हमारे गांव के पास कुछ दिहाड़ी मजदूरों की झुग्गी है। उसी झुग्गी में बंसी की बेटी रात को शायद शौच-वौच को गई थी। वहीं कुछ लड़कों ने उसके साथ बातचीत करनी चाही तो उसने जुबान लड़ानी शुरू कर दी। बस लड़कों को ताव आ गया और ये घटना घट गई। अरे क्या जरूरत थी उसे उन लड़कों से जबान लड़ाने की!"[35] इसके साथ ही इसमें पुलिस का चेहरा भी दिखा है जो अपराधियों को पकड़ने की अपेक्षा पीड़ितों को ही परेशान करती है। सुनीता की मां ने पुलिस के बारे में बताया, "वे तो खुल्ले घूम रहे हैं। उल्टे पुलिस हमें धमका रही है कि रिपोर्ट नहीं करना, नहीं हम तुम्हारे आदमी को उठा ले जाएंगे। वे हमारी बिटिया की आखिरी निशानी साइकिल भी ले गए। कह रहे थे कि सुनीता इससे स्कूल जाती थी। जांच के लिए इस साइकिल का ले जाना जरूरी है।"[36] इतने अन्याय और अत्याचारों के बावजूद मीडिया ने भी सुनीता केस को लो प्रोफाईल केस कहकर खारिज कर दिया। प्रस्तुत कहानी के माध्यम से लेखिका ने दलितों पर होने अत्याचारों में दबंग और ऊंची पुहंच वाले लोगों, पुलिस, मीडिया आदि की भूमिका का यथार्थ चित्रण किया है।

नीला पहाड़ लाल सूरज कहानी में कामकाजी, शिक्षित, जागरूक स्त्री के जीवन का चित्रण किया गया है। समर और प्रज्ञा ने अन्तर्जातीय विवाह किया है लेकिन विवाह के कुछ वर्षों बाद उन दोनों के झगड़े होने लगे। इसका कारण लेखिका ने दर्शाया है कि, "इसका जिम्मेदार दोनों का भिन्न-भिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश होना हो। आमतौश्र पर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक हैसियत से उत्पन्न स्थिति ही व्यक्ति के अन्दर मूल्यों के निर्धारण में मुख्य भूमिका अदा करती है। प्रज्ञा जिस समाज से वहां औरतों को अपने पति से हर बात के लिए बार-बार आज्ञा नहीं लेनी पड़ती। पति को देवता की तरह पूजने की परम्परा नहीं है। टोका-टाकी का मुंह तोड़ जबाव देना बुरा नहीं समझा जाता। जातीय अपमान झेलने से लेकर शोषण के दमन चक्र में पिसने तक और आपस में हास-परिहास मौज मस्ती करने तक में पति-पत्नी दोनों की बराबर की हिस्सेदारी होती है।"[37] इसमें लेखिका ने दलित स्त्री की आजादी और विवाह संस्था में समानता को भी दर्शाया है। उनके अनुसार दलित स्त्री की अपेक्षा सवर्ण स्त्री पुरुष के ज्यादा अधीन और शोषित है। इसमें शहरीकरण और पूंजीवाद के दुष्परिणामों को भी दिखाया गया है। गांव में कृषि आधारित समाज व्यवस्था में सदियों से बंधुआ मजदूरी करने वाले दलित अब भूमिहीन होने के कारण शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। शहरों में भी उनका शोषण कम नहीं हुआ बल्कि ज्यादा बढ़ गया है। "एक नरक से निकल कर दूसरे नरक में आ गिरे जहां न उनका कोई भविष्य है, न उनके बच्चों का। दलित के बच्चे दलित और मजदूर के बच्चे मजदूर। पीढ़ी दर पीढ़ी चला आ रहा अन्याय। शहरों की गंदी झुग्गी बस्तियों में कीड़े-मकोड़ों की तरह जीने को मजबूर। इंसानी गरिमा से कोसों दूर।"[38] प्रस्तुत कहानी में दलित मजदूरों की आर्थिक एवं सामाजिक समानता के अधिकारों की बात की गई है। इसमें दलित एवं सवर्ण समाज की स्त्रियों के जीवन में सकारात्मक एवं नकारात्मक अन्तर को भी बारीकी से दर्शाया गया है। प्रस्तुत कहानी में सुखान्त एवं आदर्शात्मक है। इसमें सामान्य जीवन जीने वाले समर और पूंजीपति विलप्व के माध्यम से मन की खुशी को ही जीवन की असली खुशी दिखाकर समर को खुशहाल दिखाया है।

बीज बैंक कहानी किसान जीवन पर आधारित है। आज के पूंजीवादी दौर में बीज व्यापारी अपने स्वार्थ के लिए किसानों के जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं। वे किसानों को ज्यादा फसल के लालच में फंसाकर एक ही फसल ही खेती करवाते है। बाद में बाजार में उनकी फसल का भाव नहीं मिलता और किसान बर्बाद होकर अपनी जमीन बेचने को मजबूर हो जाते हैं। इसी दौरान कुछ किसान कर्ज के चक्रव्यूह में फंसकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते हैं। कहानी के पात्र मोहन के मित्र चंदू की आत्महत्या के माध्यम से लेखिका ने इस सच्चाई को दिखाने का प्रयास किया है, "लाचारी में उसे कीमती बीज, कीटनाशक और खाद खरीदने के लिए अपने खेत और बैल गिरवी रखने पड़े थे। उसे पूरा विश्वास था कि वह फसल बेचकर

गिरवी रखा अपना सब कुछ छुड़ा लेगा। पर इन क्रूर परिस्थितियों ने उसकी सारी योजनाओं पर पानी फेर दिया। उसके पास अब एक फूटी कौड़ी भी नहीं बची थी। सूदखोरों ने फसल तैयार होने से पहले ही उसके घर के चक्कर लगाने शुरू कर दिए थे। रोज-रोज धमकियां देने लगे थे। घर की औरतों के साथ बदतमीजी के साथ पेश आते थे। जब फसल तैयार नहीं थी तब ये हाल था तो अब क्या होता? उसके बच्चों का क्या होगा? खेत, हल-बैल सब गिरवी रखे हैं। कौन उन्हें छुड़वाएगा? कैसे वह इतना कर्जा निबटाएगा? इन सबका उसके पास अब कोई जबाव नहीं था। अपना भविष्य अंधकारमय देखकर चंदू को आत्महत्या ही एकमात्र रास्ता दिखाई दिया।"[39] सरकार भी किसानों के साथ हो रहे शोषण और धोखे की ओर ध्यान नहीं देती परन्तु जब सरकार जागती है तो भी असली अपराधी को पकड़ने की बजाए एजंटों को ही बलि का बकरा बनाती है। किसान जीवन की समस्याओं को दर्शाने के साथ ही लेखिका ने उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत कहानी के अन्त में लेखिका ने बताया है कि किसान अपनी आपसी एकता, सहयोग और आत्मनिर्भर होकर अपनी समस्याओं का स्वयं ही समाधान निकाल लेते हैं। दलित युवक मोहन अपनी शिक्षा, चेतना, जागरूकता और अनुभव के आधार पर किसानों को उनकी समस्याओं का हल सुझाते हुए कहता है, "अपना सहकारी बैंक बनाकर। वह हम सबका बैंक होगा। गांव के सारे लोग उसे संभलेंगे। गांव के लोग ही उस बैंक के पदाधिकारी और प्रतिनिधि होंगे। उसमें हम सब अपने-अपने बीजों का कुछ हिस्सा एक जगह उठा कर रख देंगे।"[40] कहानी में लेखिका ने दलित स्त्री सशक्तिकरण की मिसाल पेश की है। गांव वाले बीज बैंक की जिम्मेदारी चंदू की पत्नी शीला को सौंपते हुए कहते हैं, "इसकी कार्यकारिणी को हमारे गांव की बहू-बेटियां ही संभालें। मर्दों के हाथों संभाले गए काम का नतीजा हम देख ही रहे हैं।"[41] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी आत्मनिर्भर किसान और स्त्री सशक्तिकरण का एक आदर्श स्थापित करती है।

नी हरामजादिए कहानी कामकाजी स्त्री जीवन पर आधारित है। इसमें स्त्री के मनोविज्ञान के पीछे उसके सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश की भूमिका को दिखाया है। कहानी की पात्रा प्रिंसिपल मैडम अपने जीवन की परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते कठोर हो चुकी है। उसके स्वभाव के बारे में लिखा है कि, "मैडम यानी मिसेज महाजन बड़े अजीब स्वभाव की महिला हैं। किसी का अच्छा पहनना, अच्छा खाना इन्हें नहीं सुहाता। मैडम किसी की तारीफ नहीं सुन सकती।"[42] अपनी सास के मरने की खबर सुनकर भी वह रोने-धोने की बजाए घर जाने से पहले अपना लंच खाकर गई। यही कहकर की घर में तो उन्हें कोई पूछेगा नहीं। 'यह वही सास हैं जो अपने साठ साल के बेटे के लिए विवाह के इंतजार में बैठी चालीस वर्षीय कुआंरी वाइस प्रिंसिपल ढूंढ लाई थी। शायद कहीं कसूर मिसेज महाजन के बाप और भाईयों का भी था जो हर महीने मोटी तनख्वाह के आगे उसकी शादी नहीं करना चाहते थे। भाई दिन रात जुआ खेलता और बाप किसी न किसी बहाने से बेटी से पैसे मांगता रहता। ऐसे में अगर कभी उषा भर पेट खा पाई हो या मन का पहन पाई हो तो अचंभा कैसा? मां अभावों के चलते बाप-बेटे की करतूतें और जवान बेटी को सर पे बैठा देख रेल की पटरी पर जा सोई। पन्द्रह साल की छोटी बहन सुषमा दवाई के अभाव में मर गई।"[43] उसका बूढ़ा पति उसे प्यार देने की बजाए हरामजादिए कहकर डांटता ही रहता। उसे न मायके में प्यार मिला और ना ही ससुराल में। सब लोग उसके पैसों पर ही गिद्ध नजर लगाए रखते। ऐसी स्थिति में इस तरह का कठोर स्वभाव बन जाना स्वाभाविक था। लेकिन उसकी सूख चुकी संवेदना भी दीपू मैडम की बहन को मौत से लड़ते सुनकर पिघल गई और वह अपनी छोटी बहन सुषमा को याद करके रोने लगी। इसमें काकाजी स्त्री के दोहरे शोषण का चित्रण किया गया है। इसके साथ ही बाप, भाई और पति के अधीन स्त्री की दुदर्शा का मार्मिक शब्दों में चित्रण किया गया है।

ठाकुर का कुंआ पार्ट टू कहानी दलितों के शोषण, अत्याचार और भेदभाव को दर्शाती है। प्रस्तुत कहानी प्रेमचन्द की प्रसिद्ध कहानी ठाकुर का कुंआ को ही आगे बढ़ाती है। इसमें लेखिका ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि दलितों की स्थिति आजादी से पहले प्रेमचन्द के समय थी उसमें कोई खास बदलाव नहीं हुआा है। समस्याओं के रूप बदल गए हैं लेकिन लोगों की मानसिकता वही है। प्रेमचन्द के समय दलितों को गांव के कुंए से पानी भरने को मना किया जाता था अब भी सरकार द्वारा

लगाए जा रहे हंडपम्प केवल सवर्णों के घरों तक ही पहुंचते हैं। दलितों को भी गंदा पानी पीने को मजबूर किया जाता है। इस कहानी में लेखिका ने इन सभी समस्याओं को दिख्खने के साथ ही दलितों में शिक्षा और जागरूकता एवं शहरीकरण के कारण जो बदलाव हुए हैं वे भी दिखाए हैं। ठाकुर का कुंआ कहानी की गंगी ने शहर जाकर मजदूरी करके अपने बच्चों को पढ़ाया और तरक्की की फिर वो वापिस अपने गांव आकर जोखू पाठशाला चलाकर उनका उद्धार करने लगी। "गांव की गलियों में पानी की पाईप लाईन बिछ रही थी, गांव के बड़े-बूढ़े बच्चे महिलाएं सबके अन्दर विश्वास का जोश उठान मार रहा था।....साफ पानी और साफ कपड़ों ने गांव के लोगों के अतंर्मन में स्वाभिमान की लौ जगा दी। गंगी के साथ पूरे गांव के लोगों की एकता का ही परिणाम है कि, अब गांव में सबके लिए स्वच्छ पानी है और उसी स्वच्छ पानी की सफेद धार ने गांव में नई रोशनी दी है।"[44] अब दलित अपने हक के लिए लड़ने लगे। वे एकजुट होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं और अपनी समस्याओं का समाधान भी कर पा रहे हैं। इसके साथ ही प्रस्तुत कहानी में बाजारवाद के प्रभावों को भी दिखाया गया है, "जिस गांव में दलितों को पीने का स्वच्छ पानी भी नसीब ना हो वहां कम्पा कोला से लेकर बिसलरी तक आराम से मिल रही है। सूचना के उदार युग में लोगों को चाहे सामान्य जीवन जीने के लिए मौलिक अधिकार ना मिले हो पर घर-घर तक भौतिक सुविधाओं की अच्छी पहुंच हो गई है। चिप्स से लेकर डिब्बा बंद खाद्य सामग्री, तरह-तरह के शम्पू, क्रीम, साबुन, बाईक, लक्जरी कारें तक गांवों में उपलब्ध हैं, पर स्वच्छ पानी नहीं।"[45] इसमें गंगी के माध्यम से लखिका ने सशक्त दलित स्त्री का चित्र खींचा है। यह सकारात्मक और आदर्शवादी कहानी है।

पथभ्रष्ट कहानी प्रतीकात्मक है। इसमें राजनीति, लोकतंत्र व्यवस्था, नौकरशाही, आन्दोलनों आदि का यथार्थ चित्रण किया गया है। इसमें कल्पना का सहारा लेकर व्यंग्यात्मक रूप से आधुनिक जीवन शैली एवं बनावटी समाज का चित्रण किया गया है। यह एक लम्बी कहानी है।

निष्कर्ष :

इस प्रकार अनीता भारती की कहानियों में दलित स्त्री, समाज, राजनीति, शिक्षा, जागरूकता, आधुनिकता आदि का मिश्रण मिलता है। उन्होनें अनेक अलग अलग विषयों पर अपनी कहानियां लिखी हैं। उनकी अधिकतर कहानियां आदर्शवादी एवं सुखान्त हैं। वे अपनी कहानियों में केवल समस्याओं का ही चित्रण नहीं करती बल्कि उनका समाधान प्रस्तुत करके दलित समाज के सामने एक आदर्श स्थापित करती हैं।

संदर्भ :-

1. भारती, अनिता. (2018). *नई धार कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 9.
2. भारती, अनिता. (2018). *नई धार कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 9.
3. भारती, अनिता. (2018). *नई धार कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 14.
4. भारती, अनिता. (2018). *नई धार कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 14.
5. भारती, अनिता. (2018). *औकात कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 18.
6. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 20.
7. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 19.
8. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 20.
9. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 21.
10. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 23.
11. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 23.

12. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 23.
13. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 25.
14. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 27.
15. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 27.
16. भारती, अनिता. (2018). *पैर नहीं पूजेंगे कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 28.
17. भारती, अनिता. (2018). *तीसरी कसम कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 29.
18. भारती, अनिता. (2018). *तीसरी कसम कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 30.
19. भारती, अनिता. (2018). *तीसरी कसम कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 34.
20. भारती, अनिता. (2018). *तीसरी कसम कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 35.
21. भारती, अनिता. (2018). *तीसरी कसम कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 35.
22. भारती, अनिता. (2018). *जच्चा कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 36.
23. भारती, अनिता. (2018). *जच्चा कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.
24. भारती, अनिता. (2018). *जच्चा कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 37.
25. भारती, अनिता.(2018). *एक थी कोटेवाली कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 42.
26. भारती, अनिता. (2018). *एक थी कोटेवाली कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 42.
27. भारती, अनिता. (2018). *एक थी कोटेवाली कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 38.
28. भारती, अनिता. (2018). *एक थी कोटेवाली कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 43.
29. भारती, अनिता. (2018). *एक थी कोटेवाली कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 43.
30. भारती, अनिता. (2018). *सोच में अंतर कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 45.
31. भारती, अनिता. (2018). *सोच में अंतर कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 45.
32. भारती, अनिता. (2018). *सोच में अंतर कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 45.
33. भारती, अनिता. (2018). *सोच में अंतर कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 46.
34. भारती, अनिता. (2018). *सुजाता रूक मत जाना कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 48.
35. भारती, अनिता. (2018). *सीधा प्रसारण* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 51.
36. भारती, अनिता. (2018). *सीधा प्रसारण* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 53.
37. भारती, अनिता.(2018). *नीला पहाड़ लाल सूरज कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 62.
38. भारती, अनिता.(2018). *नीला पहाड़ लाल सूरज कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 62.
39. भारती, अनिता. (2018). *बीज बैंक कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 85.
40. भारती, अनिता. (2018). *बीज बैंक कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 85.
41. भारती, अनिता. (2018). *बीज बैंक कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 87.
42. भारती, अनिता. (2018). *नी हरामजादिए कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 90.
43. भारती, अनिता. (2018). *नी हरामजादिए कहानी* [एक थी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 90.
44. भारती, अनिता.(2018). *ठाकुर का कुँआ पार्ट टू कहानी* [एकथी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 106.
45. भारती, अनिता.(2018). *ठाकुर का कुँआ पार्ट टू कहानी* [एकथी *कोटेवाली और अन्य कहानियां*]. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ. 103.

Received: 16.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

विलियम शेक्सपियर और मुंशी प्रेमचंद के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन

शरद कुमार नेताम[*]

netamsharad1989@gmail.com

सार (Abstract)

सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism) एक साहित्यिक दृष्टिकोण है जो समाज की सच्ची और वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है, जिसमें असमानता, गरीबी, अन्याय और मानवीय पीड़ा जैसे मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह शोधपत्र William Shakespeare और Munshi Premchand के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का अध्ययन करता है, जो दो भिन्न सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों के प्रभावशाली साहित्यकार हैं। शेक्सपियर, जो एलिज़ाबेथ काल में लिखते थे, सामाजिक वास्तविकताओं को नाटकीय कथानकों, प्रतीकवाद और मनोवैज्ञानिक गहराई के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं, जबकि प्रेमचंद भारतीय ग्रामीण जीवन और सामाजिक असमानताओं का सीधा और यथार्थ चित्रण करते हैं। तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से यह अध्ययन उनके विषयों, पात्रों और कथन तकनीकों में समानताओं और भिन्नताओं को उजागर करता है तथा आधुनिक समाज में उनकी निरंतर प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द *- सामाजिक यथार्थवाद, साहित्य, समाज, गरीबी, शेक्सपियर, प्रेमचंद, मानव स्वभाव*

प्रस्तावना (Introduction)

साहित्य को अक्सर समाज का दर्पण माना जाता है क्योंकि यह मानव जीवन की वास्तविकताओं, मूल्यों, संघर्षों और परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करता है। प्रत्येक साहित्यिक कृति किसी न किसी रूप में अपने समय की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस संदर्भ में सामाजिक यथार्थवाद (Social Realism) एक महत्वपूर्ण साहित्यिक दृष्टिकोण के रूप में उभरता है, जो समाज की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करने पर केंद्रित है। इसमें गरीबी, असमानता, अन्याय, शोषण और मानवीय पीड़ा जैसे मुद्दों को प्रमुखता दी जाती है। सामाजिक यथार्थवादी साहित्य केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह जागरूकता उत्पन्न करने, सामाजिक सुधार के लिए प्रेरित करने और मानव अनुभवों तथा सामाजिक संरचनाओं की गहरी समझ विकसित करने का कार्य करता है।

विश्व साहित्य में William Shakespeare और भारतीय साहित्य में Munshi Premchand दो ऐसे महान साहित्यकार हैं जिन्होंने सामाजिक वास्तविकताओं को अत्यंत प्रभावशाली किंतु भिन्न तरीकों से प्रस्तुत किया है। शेक्सपियर, जो एलिज़ाबेथ काल के प्रमुख नाटककार थे, ने अपने नाटकों के माध्यम से सत्ता, महत्वाकांक्षा, नैतिकता और मानव मनोविज्ञान जैसे विषयों का गहन विश्लेषण किया। उनके नाटक जैसे Hamlet, Macbeth और King Lear केवल राजाओं और दरबारों की कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि मानव स्वभाव और सामाजिक संबंधों के गहरे अध्ययन हैं। उदाहरण के लिए, Macbeth में वे लिखते हैं— "Vaulting ambition, which o'erleaps itself" (Act 1, Scene 7),

जो अत्यधिक महत्वाकांक्षा के विनाशकारी परिणामों को दर्शाता है।

[*] **सहायक प्राध्यापक हिंदी, शासकीय संत रामेश्वर गहिरा गुरु जी महाविद्यालय, बगीचा, जिला– जशपुर, छत्तीसगढ़**

इसी प्रकार King Lear में वे उपेक्षित और गरीब लोगों की पीड़ा को उजागर करते हैं—

"Poor naked wretches, whereso'er you are" (Act 3, Scene 4)।

Hamlet में प्रसिद्ध पंक्ति—

"To be, or not to be" (Act 3, Scene 1),

मानव के अस्तित्व संबंधी द्वंद्व और मानसिक संघर्ष को व्यक्त करती है।

दूसरी ओर, Munshi Premchand को हिंदी-उर्दू साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने भारतीय समाज, विशेष रूप से ग्रामीण जीवन का सजीव और यथार्थ चित्रण किया है। उनकी रचनाएँ गरीबों के संघर्ष, किसानों के शोषण, जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानता जैसे मुद्दों पर केंद्रित हैं। Godaan जैसे उपन्यास और Kafan जैसी कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं को सरल और भावनात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। Godaan में वे गरीबों के निरंतर संघर्ष को दर्शाते हुए संकेत करते हैं कि—

"गरीबों का जीवन निरंतर संघर्ष है।"

इसी प्रकार Kafan में वे गरीबी और नैतिक पतन की कठोर सच्चाई को उजागर करते हैं—

"भूख को कोई शर्म नहीं होती।"

अपने व्यापक साहित्यिक दृष्टिकोण में प्रेमचंद का मानना था कि साहित्य को समाज की सेवा करनी चाहिए, जो इस विचार में परिलक्षित होता है कि लेखन को वास्तविक सामाजिक समस्याओं और मानवीय पीड़ा को संबोधित करना चाहिए।यद्यपि शेक्सपियर और प्रेमचंद के बीच समय, भाषा, संस्कृति और साहित्यिक शैली के संदर्भ में महत्वपूर्ण अंतर हैं, फिर भी दोनों लेखकों में मानव जीवन और सामाजिक समस्याओं के प्रति गहरी संवेदनशीलता दिखाई देती है। शेक्सपियर सामाजिक यथार्थ को नाटकीय कथानकों, प्रतीकों और उच्च वर्ग के पात्रों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत करते हैं, जबकि प्रेमचंद सामान्य लोगों के जीवन पर आधारित यथार्थवादी कथाओं के माध्यम से इसे सीधे रूप में चित्रित करते हैं। इन भिन्नताओं के बावजूद, दोनों लेखक अन्याय, पीड़ा, नैतिकता और मानवीय संघर्ष जैसे सार्वभौमिक विषयों को प्रभावशाली ढंग से उजागर करते हैं।

इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य William Shakespeare और Munshi Premchand के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन करना है। इसका उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि दोनों लेखक सामाजिक वास्तविकताओं को कैसे प्रस्तुत करते हैं, असमानता और अन्याय के मुद्दों को कैसे संबोधित करते हैं, और मानव समाज की समझ को कैसे समृद्ध करते हैं। साथ ही, यह अध्ययन आधुनिक संदर्भ में उनकी रचनाओं की निरंतर प्रासंगिकता को भी स्थापित करने का प्रयास करता है, क्योंकि उनके द्वारा उठाए गए कई सामाजिक मुद्दे आज भी समाज में विद्यमान हैं।

साहित्य समीक्षा (Literature Review)

कई विद्वानों ने William Shakespeare और Munshi Premchand के साहित्य का उनके सामाजिक और साहित्यिक योगदान के संदर्भ में विश्लेषण किया है। ए. सी. ब्रैडली के अनुसार, शेक्सपियर की त्रासदियाँ "मानव स्वभाव के आंतरिक संघर्ष" को दर्शाती हैं (ब्रैडली, पृ. 45)। उनकी रचनाएँ मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद और सार्वभौमिक विषयों के लिए जानी जाती हैं।

प्रेमचंद को भारतीय साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का अग्रदूत माना जाता है। रामविलास शर्मा के अनुसार:

"प्रेमचंद ने शोषित वर्ग को आवाज़ दी और सामाजिक अन्याय को उजागर किया" (शर्मा, पृ. 62)।

जहाँ शेक्सपियर नाटकीय प्रतीकवाद का प्रयोग करते हैं, वहीं प्रेमचंद यथार्थवादी कथन शैली अपनाते हैं।

शेक्सपियर के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद

यद्यपि William Shakespeare की रचनाओं को प्रायः नाटकीय माना जाता है, फिर भी उनमें सामाजिक यथार्थवाद के सशक्त तत्व मौजूद हैं।

वर्ग संघर्ष (Class Conflict)

King Lear में शेक्सपियर समाज में गरीबों की पीड़ा और अन्याय का चित्रण करते हैं:

"Poor naked wretches, whereso'er you are" (Act 3, Scene 4).

सत्ता और भ्रष्टाचार (Power and Corruption)

सत्ता के भ्रष्टकारी प्रभाव का विषय William Shakespeare की रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ अधिकार और महत्वाकांक्षा अक्सर नैतिक पतन और सामाजिक अव्यवस्था का कारण बनते हैं। Macbeth में शेक्सपियर यह दिखाते हैं कि सत्ता की इच्छा किस प्रकार नैतिक मूल्यों को नष्ट कर देती है। मैकबेथ स्वीकार करता है:

"I have no spur… but only vaulting ambition" (Act 1, Scene 7),

जो अंततः उसे हत्या और अत्याचार की ओर ले जाती है।

जैसे-जैसे वह सत्ता प्राप्त करता है, वह और अधिक निर्दयी बनता जाता है और कहता है:

"To be thus is nothing; but to be safely thus" (Act 3, Scene 1),

जो उसके भय और असुरक्षा को दर्शाता है।

इसी प्रकार King Lear में सत्ता का दुरुपयोग अन्याय और पीड़ा का कारण बनता है। लियर का अपने राज्य का विभाजन करने का गलत निर्णय अराजकता और विश्वासघात को जन्म देता है। Julius Caesar में भी निरंकुश सत्ता का भय स्पष्ट दिखाई देता है, जब ब्रूटस सीज़र की हत्या को यह कहकर उचित ठहराता है कि अनियंत्रित शक्ति राज्य के लिए खतरनाक हो सकती है।

इसके विपरीत, Munshi Premchand राजसत्ता पर अधिक ध्यान नहीं देते, बल्कि सामाजिक और प्रशासनिक स्तर पर भ्रष्टाचार को दर्शाते हैं, जहाँ जमींदार, साहूकार और अधिकारी गरीबों का शोषण अपने स्वार्थ के लिए करते हैं। उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि भ्रष्टाचार केवल राजनीतिक सत्ता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह दैनिक सामाजिक संरचनाओं में भी मौजूद है, जो न्याय और समानता को प्रभावित करता है।

इस प्रकार, दोनों साहित्यकार यह दर्शाते हैं कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता है—चाहे वह राजाओं के स्तर पर हो या सामान्य संस्थाओं में—तो इसका परिणाम नैतिक पतन, अन्याय और समाज में पीड़ा के रूप में सामने आता है।

सामाजिक यथार्थवाद के विषय (Themes of Social Realism)

साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का अर्थ है समाज का सच्चा और अक्सर आलोचनात्मक चित्रण करना, जिसमें जीवन को आदर्श या रोमांटिक रूप में प्रस्तुत करने के बजाय उसकी वास्तविक परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाता है। William Shakespeare और Munshi Premchand की रचनाओं में सामाजिक यथार्थवाद के कई महत्वपूर्ण विषय उभरकर सामने आते हैं, जो मानव समाज, उसकी संरचना और उसकी विसंगतियों को समझने में सहायता करते हैं।

सबसे प्रमुख विषयों में से एक है गरीबी और सामाजिक असमानता। दोनों लेखकों ने अमीर और गरीब के बीच के अंतर को दर्शाया है, यद्यपि अलग-अलग संदर्भों में। शेक्सपियर King Lear में उपेक्षित गरीबों की पीड़ा को इस पंक्ति के माध्यम से व्यक्त करते हैं:

"Poor naked wretches, whereso'er you are" (Act 3, Scene 4),

जो सामाजिक अन्याय के प्रति उनकी संवेदनशीलता को दर्शाता है। इसी प्रकार प्रेमचंद Godaan जैसी कृतियों में गरीबी का सीधा चित्रण करते हैं, जहाँ ग्रामीण गरीब कर्ज़ और जीवन-निर्वाह के संघर्ष में लगातार जूझते रहते हैं। यह विषय दर्शाता है कि आर्थिक असंतुलन मानव जीवन और गरिमा को कैसे प्रभावित करता है।

दूसरा महत्वपूर्ण विषय है सत्ता और भ्रष्टाचार। शेक्सपियर के Macbeth में महत्वाकांक्षा नैतिक पतन का कारण बनती है:

"Vaulting ambition, which o'erleaps itself" (Act 1, Scene 7),

जो यह दर्शाता है कि सत्ता की इच्छा व्यक्ति और समाज दोनों को नष्ट कर सकती है। इसके विपरीत, प्रेमचंद सामाजिक स्तर पर भ्रष्टाचार को प्रस्तुत करते हैं, जहाँ जमींदार, साहूकार और अधिकारी गरीबों का शोषण करते हैं। यह दिखाता है कि सत्ता, चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, उत्पीड़न का साधन बन सकती है।एक अन्य महत्वपूर्ण विषय है मानवीय पीड़ा और नैतिक संघर्ष। शेक्सपियर के पात्र अक्सर आंतरिक संघर्षों से जूझते हैं, जैसे Hamlet में:

"To be, or not to be" (Act 3, Scene 1),

जो गहरे मनोवैज्ञानिक द्वंद्व को दर्शाता है। दूसरी ओर, प्रेमचंद बाहरी परिस्थितियों से उत्पन्न पीड़ा को दर्शाते हैं, जहाँ गरीबी और अन्याय के कारण व्यक्ति कठिन नैतिक निर्णय लेने के लिए विवश होता है।एक और महत्वपूर्ण विषय है सामाजिक अन्याय और शोषण। शेक्सपियर समाज की श्रेणीबद्ध संरचना में अन्याय को सूक्ष्म रूप से प्रस्तुत करते हैं, जबकि प्रेमचंद सीधे तौर पर जातिगत भेदभाव, लैंगिक असमानता और ग्रामीण शोषण को उजागर करते हैं। उनकी कहानियाँ यह दिखाती हैं कि समाज के वंचित वर्गों को किस प्रकार मूल अधिकारों और सम्मान से वंचित किया जाता है।

अंततः, मानव गरिमा और अस्तित्व का संघर्ष दोनों लेखकों के साहित्य का केंद्रीय विषय है। शेक्सपियर अपने पात्रों के माध्यम से यह दिखाते हैं कि वे त्रासदी के बीच भी अपनी गरिमा बनाए रखने का प्रयास करते हैं, जबकि प्रेमचंद सामान्य लोगों की संघर्षशीलता को उजागर करते हैं, जो कठिन परिस्थितियों के बावजूद जीवन जीते रहते हैं।

इस प्रकार, William Shakespeare और Munshi Premchand के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद के ये विषय—गरीबी, भ्रष्टाचार, पीड़ा, अन्याय और गरिमा का संघर्ष—मानवता की सार्वभौमिक चिंताओं को उजागर करते हैं और उनकी रचनाओं को कालातीत तथा वैश्विक रूप से प्रासंगिक बनाते हैं।

पात्र विश्लेषण (Character Analysis)

William Shakespeare और Munshi Premchand द्वारा रचित पात्र सामाजिक यथार्थवाद को अभिव्यक्त करने में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे मानव समाज, मनोविज्ञान और जीवन के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं। शेक्सपियर के पात्र जटिल, प्रतीकात्मक और गहरे मनोवैज्ञानिक होते हैं, जबकि प्रेमचंद के पात्र यथार्थवादी, सामाजिक रूप से जुड़े हुए और दैनिक जीवन के निकट होते हैं।शेक्सपियर की रचनाओं में Macbeth, Hamlet और King Lear जैसे पात्र सार्वभौमिक मानवीय स्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मैकबेथ एक त्रासद पात्र है जिसकी महत्वाकांक्षा उसे नैतिक पतन की ओर ले जाती है। उसका एक वफादार सैनिक से अत्याचारी शासक बनना यह दर्शाता है कि सत्ता किस प्रकार नैतिकता को नष्ट कर सकती है। उसका कथन:

"I have no spur… but only vaulting ambition" (Act 1, Scene 7),

उसके आंतरिक द्वंद्व और सत्ता की इच्छा को प्रकट करता है।

इसी प्रकार, हैमलेट बौद्धिक और भावनात्मक द्वंद्व का प्रतीक है, जो जीवन और अस्तित्व पर लगातार प्रश्न उठाता है:

"To be, or not to be" (Act 3, Scene 1)।

King Lear सत्ता के पतन और गलत निर्णयों के परिणामस्वरूप उत्पन्न पीड़ा का प्रतीक है। इन पात्रों के माध्यम से शेक्सपियर मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक और नैतिक आयामों का गहन विश्लेषण करते हैं।इसके विपरीत, Munshi

Premchand के पात्र भारतीय समाज में गहराई से जड़े हुए हैं और आम लोगों के जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए, Godaan का होरी एक साधारण किसान है, जो ग्रामीण गरीबों के संघर्ष का प्रतीक है। कठिन परिश्रम के बावजूद वह कर्ज़ और सामाजिक बंधनों में फँसा रहता है, जो गाँव के जीवन की कठोर आर्थिक वास्तविकताओं को दर्शाता है।

इसी प्रकार, Kafan के पात्र अत्यधिक गरीबी और भावनात्मक विघटन को दर्शाते हैं, जहाँ भूख और अभाव मानवीय संवेदनाओं और नैतिक मूल्यों को कमजोर कर देते हैं। प्रेमचंद के महिला पात्र, जैसे Nirmala में, लैंगिक असमानता और सामाजिक उत्पीड़न को उजागर करते हैं।पात्र-चित्रण में एक प्रमुख अंतर यह है कि शेक्सपियर के पात्र अक्सर सार्वभौमिक मनोवैज्ञानिक सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं और उच्च वर्ग या शाही परिवेश में स्थित होते हैं, जबकि प्रेमचंद के पात्र वास्तविक सामाजिक परिस्थितियों को दर्शाते हैं और निम्न तथा मध्यम वर्ग से संबंधित होते हैं। शेक्सपियर के पात्र प्रतीकात्मक और नाटकीय होते हैं, जबकि प्रेमचंद के पात्र यथार्थवादी और सामाजिक रूप से प्रतिबिंबित होते हैं।

इन भिन्नताओं के बावजूद, दोनों लेखक अपने पात्रों के माध्यम से समाज की गहरी सच्चाइयों को उजागर करते हैं। शेक्सपियर आंतरिक मानवीय संघर्ष—महत्वाकांक्षा, अपराधबोध, नैतिकता और पागलपन—पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि प्रेमचंद बाहरी सामाजिक संघर्ष—गरीबी, असमानता और शोषण—को उजागर करते हैं। इस प्रकार, उनके पात्र मिलकर मानव जीवन को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक दोनों दृष्टियों से समझने में सहायता करते हैं, जिससे उनकी रचनाएँ कालातीत और सार्वभौमिक रूप से महत्वपूर्ण बन जाती हैं।

समालोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

William Shakespeare सार्वभौमिक दृष्टिकोण और गहन मानवीय अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जबकि Munshi Premchand समाज की जमीनी वास्तविकताओं को सामने रखते हैं। दोनों मिलकर समाज की एक समग्र और व्यापक समझ प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्ष (Conclusion)

William Shakespeare और Munshi Premchand के साहित्य में सामाजिक यथार्थवाद का तुलनात्मक अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि साहित्य, समय, स्थान और संस्कृति की सीमाओं से परे जाकर, सामाजिक सत्य और मानवीय अनुभव को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। यद्यपि दोनों लेखक अलग-अलग युगों और साहित्यिक परंपराओं से संबंधित हैं, फिर भी उनमें समाज और मानवीय पीड़ा के प्रति समान संवेदनशीलता पाई जाती है। उनकी रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि साहित्य केवल कलात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक वास्तविकताओं और नैतिक चेतना का दर्पण भी है।

शेक्सपियर सामाजिक यथार्थवाद को अप्रत्यक्ष और प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके नाटक जैसे Macbeth, Hamlet और King Lear महत्वाकांक्षा, सत्ता, भ्रष्टाचार और मानवीय पीड़ा जैसे विषयों का गहन विश्लेषण करते हैं। इन कृतियों के माध्यम से वे यह दर्शाते हैं कि आंतरिक नैतिक संघर्ष और बाहरी सामाजिक दबाव किस प्रकार मानव भाग्य को प्रभावित करते हैं। विशेष रूप से, उनकी रचनाओं में महत्वाकांक्षा और पतन का चित्रण यह स्पष्ट करता है कि सत्ता का दुरुपयोग व्यक्ति और समाज दोनों के विनाश का कारण बनता है।

दूसरी ओर, Munshi Premchand सामाजिक यथार्थवाद को सीधे, यथार्थवादी और भावनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी रचनाएँ सामान्य लोगों—विशेषकर किसानों, मजदूरों और समाज के वंचित वर्गों—के संघर्षों पर केंद्रित हैं। Godaan जैसे उपन्यास और Kafan जैसी कहानियों के माध्यम से उन्होंने गरीबी, जातिगत भेदभाव, शोषण और सामाजिक असमानता को उजागर किया है। उनका साहित्य भारतीय ग्रामीण जीवन में गहराई से निहित है और आम लोगों की कठिन सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को प्रतिबिंबित करता है।

यद्यपि शैली और दृष्टिकोण में भिन्नता है, फिर भी दोनों साहित्यकारों का उद्देश्य अंततः समाज की सच्चाई को उजागर करना है। शेक्सपियर मानव व्यवहार के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक पहलुओं पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं, जबकि प्रेमचंद सामाजिक और आर्थिक यथार्थ को प्रमुखता देते हैं। इसके बावजूद, दोनों अन्याय, पीड़ा, नैतिकता और सत्ता तथा लालच के दुष्परिणाम जैसे सार्वभौमिक विषयों पर एकमत दिखाई देते हैं।

अंततः, William Shakespeare और Munshi Premchand की रचनाएँ आज के आधुनिक युग में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं, क्योंकि असमानता, भ्रष्टाचार, गरीबी और नैतिक संघर्ष जैसी समस्याएँ आज भी वैश्विक समाज में विद्यमान हैं। उनका साहित्य पाठकों को शिक्षित, प्रेरित और सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति संवेदनशील बनाता है। इसलिए, यह तुलनात्मक अध्ययन न केवल साहित्य की समझ को समृद्ध करता है, बल्कि मानव समाज और उसकी निरंतर चुनौतियों के प्रति हमारी जागरूकता को भी गहरा करता है।

संदर्भ

1. Bradley, A. C. (1904). *Shakespearean tragedy*. London: Macmillan and Co.
2. प्रेमचंद, मुंशी। (1936). *गोदान*. नई दिल्ली: सरस्वती प्रेस.
3. प्रेमचंद, मुंशी. (2000). *कफन एण्ड अदर स्टोरीज* [कफन एवं अन्य कहानियाँ]. नई दिल्ली: पेंगुइन बुक्स इंडिया.
4. Shakespeare, William. (2003). *Hamlet*. Cambridge: Cambridge University Press.
5. Shakespeare, William. (2008). *Macbeth*. Oxford: Oxford University Press.
6. Shakespeare, William. (1997). *King Lear*. London: Arden Shakespeare (Bloomsbury Publis hing).
7. शर्मा, रामविलास. (1952). *प्रेमचंद और उनका युग*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

Received: 17.02.2026 | Accepted: 20.02.2026 | Published: 30.03.2026

वसुधैवकुटुम्बकम् से अभिप्रेरित लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर का शासन

डॉ. तेजराम पाल*
trpphi9@gmail.com

सारांश

मातोश्री अहिल्याबाई होल्कर हमारे देश की शासन व्यवस्था को नई दिशा प्रदान करने वाली विदुषी शासिका रही हैं। जीवन में कितना ही दुःख और परेशानी क्यों न हुई हो फिर भी उन्होंने दृढ़ निश्चय से सभी असाध्य कार्य को बड़ी ही सहजता से कर दिखाया है। उन्होंने स्वयं का जीवन-यापन अत्यंत सादगी से निर्वाह किया लेकिन राज्य को उन्होंने बड़ा ही वैभवपूर्ण बनाये रखा। उन्होंने जीवनभर मानव हितैषी कार्य किए उनके ऐसे कार्यों ने उन्हें सम्राट अशोक, दानवीर कर्ण और सम्राट युधिष्ठिर के समकक्ष पहुँचा दिया है। उनका मानना था कि "शिवजी ने मुझे जो दायित्व सौंपा है उसे मुझे निभाना है मेरा काम प्रजा को सुखी रखना है। राज्य के हर कार्य के लिए वह जिम्मेदार है। उसे ईश्वर के घर जवाब देना है।"[1] हम इस शोध-पत्र को मुख्य सात भागों में पूर्ण करने का प्रयास करेंगे - प्रथम वसुधैवकुटुम्बकम् से तात्पर्य, द्वितीय श्री मल्हारराव होल्कर जी का परिचय, तृतीय मातोश्री की पृष्ठभूमि, चतुर्थ मातोश्री अहिल्याबाई होल्कर का जीवन-दर्शन, पंचम मातोश्री अहिल्याबाई होल्कर की शासन व्यवस्था, षष्ठ वर्तमान में मातोश्री अहिल्याबाई होल्कर के शासन से अभिप्रेरिणा की आवश्यकता और सप्तम निष्कर्ष।

वसुधैवकुटुम्बकम् –

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेदों के मूल में भी वसुधैवकुटुम्बकम् का ही भाव निहित है। वेद मंत्रों के दृष्टाओं (ऋषियों) ने सभी जीवों के हित को ध्यान में रखते हुए वैदिक ऋचाओं का वर्णन किया हैं। वसुधैवकुटुम्बकम् से तात्पर्य है कि इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी प्राणी और वनस्पति हम सब एक ही कुटुम्ब हैं अर्थात् एक ही परिवार हैं। इन भावनाओं की जड़े मूलरूप से हमारे वेदों और उपनिषदों में वर्णित हैं। इस भाव से संबंधित 'महोपनिषद्' 6.70 और 'हितोपदेश' 1.70 दोनों ग्रंथों में लगभग एक से मंत्र (श्लोक) प्राप्त होते हैं-

"अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।"[2]

अर्थात् यह मेरा है, यह उसका है, ऐसे मानसिकता संकुचित चित वाले व्यक्तियों की होती है, इसके विपरीत उदार चरित वाले व्यक्तियों के लिए तो सम्पूर्ण धरती ही एक परिवार है। इस भावना में सम्पूर्ण प्राणी तथा वनस्पति के प्रति प्रेम और अपनापन का भाव निहित है। इसमें हम सिर्फ मानव मात्र के लिए नहीं बल्कि सम्पूर्ण प्राणी जगत् के लिए कुटुम्ब का भाव रखते हैं।

मल्हारराव होल्कर परिचय-

श्री खण्डोजी होल्कर जाति धनगर-गडरिया (महाराष्ट्र क्षत्रिय) के घर सन् 1694 में मल्हारराव होल्कर का जन्म हुआ। मल्हारराव जी के पूर्वज दक्षिण के थारू नामक गाँव में रहते थे। बाद में पूना से लगभग 20 कोस की दूरी पर 'होल' नामक गाँव में रहने लगे। "मराठी में 'कर' शब्द का अर्थ अधिवासी और 'होल' नामक गाँव में रहने के कारण इन्हें 'होल्कर' कहा जाने लगा।"[3] महान व्यक्तित्व के धनी मल्हारराव होल्कर का बचपन भी दुःख और पीड़ा से भरा हुआ है, उन्होंने अपने सामर्थ्य से ही मालवा की प्रजा और राज्य में अपना शासन स्थापित किया था। सन् 1725 ई. को श्री मल्हारराव और गौतमाबाई को तिथि विजयादशमी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, उस बालक का नाम खंडेराव रखा गया। श्री खंडेराव में अपने

---

* **दर्शनशास्त्र विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) - 482001**

पिता की तरह शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्या में विशेष रुचि नहीं थी। इनके कुल में श्री खंडेराव जी की पुत्रवधु के रूप में देवी अहिल्याबाई जी का विवाह हुआ था।

मातोश्री की पृष्ठभूमि-

जगत् प्रख्यात् मातोश्री अहिल्याबाई का जन्म सन् 1723 ई. में महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के बीड़ तालुका के चोंट नामक गाँव में रहने वाले श्री मानको जी शिंदे के यहां हुआ था। गौर वर्ण को किसी लड़की के सुन्दरता का मापदण्ड बनाने वालों के अनुसार इस कन्या में वैसा रूप लावण्या नहीं था। इनका शरीर का डील-डौल मध्यम श्रेणी का था, परंतु उनके कमल सदृश मुख पर एक ऐसी तेजोमय ज्योति विराजित थी जो कि उनके हृदय के गुणों को स्वयं प्रकाशित करती थी।

अहिल्याबाई का विवाह श्री मल्हारराव होल्कर के पुत्र खंडेराव होल्कर से सन् 1735 ई. में सम्पन्न हुआ। सन् 1745 ई. को श्री खंडेराव और अहिल्याबाई को एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम मालेराव रखा गया। पुनः सन् 1748 ई. को श्री खंडेराव और अहिल्याबाई को एक पुत्री रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम मुक्ताबाई रखा गया।

मातोश्री अहिल्याबाई का जीवन दर्शन-

उस समय महाराष्ट्र में अधिक पठन-पाठन की रीति प्रचलित नहीं थी, तथापि अहिल्याबाई के पिताजी ने इनको कुछ पढ़ाया था। ये बचपन से ही पाप कर्म से भय खातीं और पुण्य कर्म में मन लगाती थीं। इस छोटी अवस्था में इनमें एक अद्वितीय गुण यह भी था कि जब तक ईश्वर पूजन और पुराण श्रवण न हो जाए, तब तक वे भोजन नहीं करती थीं। विवाह के उपरान्त उनके दैवीय गुणों में निरंतर वृद्धि ही होती गई।

मातोश्री अहिल्याबाई के जीवन में उनके ससुर श्री मल्हारराव होल्कर का गहरा प्रभाव रहा। श्री मल्हारराव होल्कर जी अपनी पुत्रवधु अहिल्याबाई से अपनी पुत्री के समान वात्सल्य रखते थे। जब अहिल्याबाई अपनी ससुराल में लाई गई तब इनकी सास गौतमाबाई एवं ससुर मल्हारराव अपनी पुत्रवधू के मिष्ट भाषण, आचार तथा उनकी धर्मपरायणता को देख अत्यंत प्रसन्न हुए। अहिल्याबाई के प्रति उनका प्रेम नित् नूतन बढ़ने लगा तथा वह समय के साथ और दृढ़ होते गया। पति श्री खंडेराव जी का युद्ध कला में अरुचि को देख और ससुर श्री मल्हारराव जी की हार्दिक इच्छा जान कर स्वयं अहिल्याबाई ने युद्ध कला को सीखा और पतिदेव को भी सीखने में सहायता प्रदान की।

श्री मल्हारराव जी ने अहिल्याबाई जी के गुणों को प्रथम दृष्टि में समझ लिए थे कि उनके पुत्र के लिए सुयोग्य वधु और राज्य के लिए उत्तम संचालिका रहेगी। मातोश्री के विवाह के उपरान्त उनकी मृदुभाषा और कार्यशैली देखकर ही जब भी श्री मल्हारराव जी युद्ध या अन्य कार्य के लिए बाहर जाते तो राज्य की जिम्मेदारी देवी अहिल्याबाई जी को ही सौंपकर जाते। वैसे भी राजकोष की बाग-डोर विवाह के उपरान्त से ही उनको ही दे दी गई थी।

ईश्वर ने जैसे उन्हें राजा हरिश्चंद्र की तरह सिर्फ परीक्षा देने के लिए या प्रभु राम की तरह आदर्श स्थापित करने के लिए ही इस संसार में भेजा हो, क्योंकि मातोश्री के जीवन में संसारिक सुख कम और दैविक दुःख ज्यादा था। "सन् 1754 ई. में श्री खंडेराव जी अपने पिता के साथ खान देश होते हुए अजमेर 'कर' ;ज्ंगद्ध वसुलने गए थे, वहां जाट समुदाय के साथ युद्ध की स्थिति उत्पन्न होने लगी।"[4] अंततः भरतपुर राज्य के डीग के पास कुंभेर के दुर्ग पर जाट समुदाय ने मरहठा फौज के साथ मिलकर युद्ध आरम्भ कर दिया। यह युद्ध अत्यंत विनाशकारी रहा। इस युद्ध में किले के ऊपर से विरोधी सैनिक ने पीछे से श्री खंडेराव जी को तोप गोला दाग दिया जिससे वह युद्ध स्थल पर ही वीरगति को प्राप्त हो गए।

खंडेराव जी की मृत्यु के समाचार से पूरे राज्य में दुःख की पीड़ा व्याप्त हो गई। मातोश्री अहिल्याबाई जी खंडेराव जी के साथ ही सती होना चाहती थी और उसके लिए वह पूर्ण संकल्प भी ले चुकी थी, किन्तु ससुर "श्री मल्हारराव जी के बार-बार प्रार्थना करने तथा समझाने के बाद उन्होंने अपने संकल्प को तोड़ दिया।"[5] शेष जीवन को प्रभु सेवा और राज्य की सेवा में समर्पित कर दिया।

पुत्र शोक में श्री मल्हारराव जी मानसिक रूप से बहुत टूट चुके थे, "एक यात्रा के दौरान अलमपुर में 20 मई सन् 1766 ई. में 73 वर्ष की उम्र में मृत्यु हो गई।"[6] उनकी मृत्यु उपरान्त मातोश्री ने पुत्र मालीराव का राज्याभिषेक कर राज्य की

बाग-डोर स्वयं देवदत्त भीष्म की तरह अपने हाथों में रख राज्य की देखभाल करने लगी। अभी पति और ससुर की मृत्यु के दुःखों से मातोश्री उभर भी नहीं पाई थी कि "पुत्र मालेराव की बीमारी† से 5 अप्रैल सन् 1767 ई. में मात्र 22 वर्ष की अवस्था में मृत्यु हो गई।"[7] जिससे पुनः पूरे राज्य में शोक व्याप्त हो गया।

समय के साथ राज्य में अव्यवस्था बढ़ने लगी। चोर, लुटेरों का आतंक बढने लगा इसे देखते हुए। मातोश्री ने राज्य के पदाधिकारियों की बैठक आयोजित कर घोषणा की कि जो भी मेरे राज्य में इन आतताइयों से राज्य से मुक्ति दिलायेगा उससे अपनी बेटी मुक्ताबाई का विवाह कर दूंगी। उस सभा में उपस्थित एक होनहार युवा यशवंतराव फणसे ने इस कार्य की जिम्मेदारी उठाई और अगले दो वर्ष में ही राज्य को आतताईयों से मुक्त कर दिया। मातोश्री ने भी वचन का पालन करते हुए अपनी प्रिय पुत्री मुक्ताबाई का विवाह यशवंतराव फणसे से सन् 1780 ई. में सम्पन्न किया। जिससे उन्हें एक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई जिसका नाम 'नथ्याबा' रखा।

पर शायद दुःखों की कुदृष्टि मातोश्री का पीछा ही नहीं छोड़ रही थी। उनका लाड़ला नाती 'नथ्याबा' सन् 1790 ई. में क्षय रोग से ग्रसित होकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। "इस शोक में डूबकर पुत्र वियोग में यशवंतराव फणसे का 03.11.1791 को निधन हो गया।"[8] इससे मुक्ताबाई के मन में भी जीवन जीने की इच्छा समाप्त हो गई और उन्होंने सती होने का दृढ़ निश्चय कर वह सती हो गई। इन सभी घटनाओं ने मातोश्री को पूर्ण शोक में डुबों दिया। अंततः "अहिल्याबाई की मृत्यु 13 अगस्त, सन् 1795 में हुई।"[9] वे शासिका के रूप में एक संत थी। "अहिल्याबाई का स्वर्गवास तो हो गया, परन्तु उनकी तेजोमयी प्रभा सूर्य के समान अल्पकाश रहकर धर्मरूपी जीवन का प्रकाश सदा के लिए स्थायी हो गया।"[10] उनका सम्पूर्ण जीवन धर्ममय होने से उनकी कीर्ति आम्र वृक्ष की सदृश विस्तीर्ण रूप से चहुँ ओर फैल गई और आज भी सम्पूर्ण देश में आदर और सम्मान के साथ मातोश्री देवी अहिल्याबाई होल्कर का नाम ससम्मान लिया जाता है।

मातोश्री की शासन व्यवस्था-

मातोश्री ने लगभग 28 वर्षों तक मालवा राज्य में शासन किया। उन्होंने इस छोटे से शासन काल में वह महान कार्य किए जो बड़े-बड़े राजघराने वालों ने सदियों तक शासन करने पर भी नहीं कर पाये। "अहिल्याबाई का शासन 18वीं सदी का सबसे मजबूत एवं टिकाऊ शासन था।"[11] उन्होंने अपने शासन काल में राज्य को समृद्ध और वैभवपूर्ण बनाया साथ ही सम्पूर्ण भारत देश के तीर्थों का जीर्णोद्धार कर धर्म ध्वजा फहरायी। इससे "सम्पूर्ण भारत में अहिल्याबाई को एक ऐसी रानी के रूप में पहचान मिली है, जिन्होंने भारत के अलग-अलग राज्यों में मानवता की सेवा के लिए अनेक कार्य किए थे।"[12] भारत देश के इतिहास में उनके कार्यों की तुलना करने के लिए अन्य कोई और शासिका नहीं दिखाई देती है।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने जिस स्वराज्य की औपचारिक नींव रखी थी उसका मातोश्री के शासन काल में फलीभूत हुआ। मातोश्री अहिल्यबाई के शासनकाल का प्रारम्भ उस समय हुआ जब पूरे भारत में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई थी। उस समय देश के एक बड़े भू-भाग पर मराठों का शासन होने के उपरान्त भी कहीं पर भी शान्ति दिखाई नहीं दे रही थी। छोटे-छोटे राज्य आपस में लड़कर अपने राज्य का धन और सैना को बर्बाद कर रहे थे। उनमें से किसी का भी ध्यान मुगलों द्वारा तोड़े गए मंदिरों और साधन विहीन तीर्थों पर नहीं गया। मातोश्री जब भारत भ्रमण में निकली तब उन्होंने उनकी दुर्दशा को देखते हुए पूरे भारत भूमि के मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया, तीर्थों पर धर्मशालाएं बनवायी और वहां के पुजारियों के जीवन-यापन के लिए सम्पूर्ण व्यवस्थाएं करवायी। "माता अहिल्याबाई की शिवजी पर अथाह आस्था थी, इसलिए उन्होंने कोशिश की कि उनके राज्य में भी हिंदू धर्म का प्रसार हो।"[13] उनके मन में अन्य धर्मों के लिए भी आदर के भाव थे किन्तु वह शिव की आराधना करती थी इसके कारण सनातन धर्म में उनकी ज्यादा आस्था थी।

मातोश्री "अहिल्याबाई ने देश भर में अनेक मंदिरों, भवनों, धर्मशालाओं, कुएँ, बावड़ियों और तालाबों का निर्माण कार्य किया था, जिसकी गणना करना भी एक दुर्लभ कार्य है। इतने विशाल भारत में उनके द्वारा किए कार्य सर्वदूर बिना शिलालेख के भी उनका गुणगान कर रहे हैं।"[14] उन्होंने सम्पूर्ण भारत में धार्मिक और दैविक कार्य करवाए किन्तु उसके लिए अपनी प्रजा से कोई अतिरिक्त 'कर' नहीं लगाया बल्कि यह सब कार्य उन्हें दहेज में प्राप्त ग्राम से होने वाली आय और उनके

---

† कुछ इतिहासकारों के अनुसार मालेराव होलकर की मृत्यु 'विष' से हुई थी।

ससुर जी के द्वारा छोड़ी गई सम्पित्ति (कोष) से ही करवाया। उनका मानना था कि "प्रजा की भुगतान क्षमता से अधिक कर लगाए जाने से जहाँ करों की वसूली सुगमतापूर्वक नहीं हो पाती, वहीं प्रजा में राज्य के प्रति असंतोष भी जन्म लेता है।"[15] राज्य में खुशहाली, समृद्धि और शान्ति तभी स्थापित हो सकती है जब राज्य में एक सुगम्य 'कर' हो और उसका प्रयोग राज्य के सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए हो। राज्य के वासी को किसी आताताई का भय न हो और अपनी मेहनत से अर्जित धन के नष्ट या चोरी हो जाने का भय न हो।

मातोश्री का मानना था कि "जो राजा प्रजा की समस्याओं को दुर्लक्ष्य करता है, उस पर अन्याय और अत्याचार करता है, जो प्रजा का शोषण कर स्वयं मौज करता है, जो स्वार्थ की परितृप्ति में अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है उसके विरूद्ध आवाज उठाने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है।"[16] एक राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा के हित में सभी कार्य करें अगर वह ऐसा नहीं करता है उस राज्य की प्रजा उस राजा के लिए आदर और समर्पण नहीं रखेगी।

मातोश्री शासन से अभिप्रेरिणा- देवी अहिल्याबाई का सम्पूर्ण जीवन शिक्षाप्रद है। जिस प्रकार अनंत वनस्पतियाँ एक ही जल से बढ़ती हैं और एक ही रस से सब जीवों की उत्पित्ति है; और सम्पूर्ण जीवन एक ही पृथ्वी, एक ही सूर्य और एक ही वायु से सधे हैं, जिस प्रकार सब जीवों के आस-पास आकाश एक ही है और संपूर्ण जीव एक ब्रह्म में बसते हैं, उसी प्रकार मनुष्य मात्र के लिये सद्कार्य ही एक मात्र साधन है। निखिलेख महेश्वरी जी कहते हैं कि "अहिल्याबाई के न्याय से प्रभावित होकर प्रजा कहती थी कि उनके राज्य में बकरी और शेर एक घाट पर पानी पीते हैं।"[17] वह अपनी आत्मा की आवाज को सुन उसे भगवान शिव का न्याय मानकर ही प्रतिदिन लोगों की समस्याएँ सुनने के लिए दरबार लगाया करती थीं। वह एक ऐसी शासिका रही जिसके जीवन से प्रभु भक्ति एक पल के लिए भी विरक्त नहीं हुई। सच्ची ईश्वर भक्ति से आत्मा को ईश्वर की ध्वनि सुनाई देती है और बुद्धि सद् कार्यो में संलग्न रहती है। बुद्धि और मन में सद् विचार आते हैं जिससे सद्कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त होती रहती है। ऐसे सद्कार्यों के लिए प्रकृति भी सहायक होती है। सद्कार्य से भय का नाश होता है। शास्त्रों में कहा गया है कि-

"यथाकारी यथाचारी तथा भवति।
साधुकारी साधु भवति, पापाकारी पापी भवति।।

अर्थात् जो जैसा आचरण तथा कर्म करता है वह वैसा ही हो जाता है। पुण्य कर्म करने वाला पुण्यात्मा और पाप करने वाला पापी होता है।"[18] इन बातों का विशेष ध्यान रखते हुए मातोश्री ने अपने राज्य का संरक्षण किया।

निष्कर्ष-

देवी अहिल्याबाई होल्कर का सम्पूर्ण जीवन विपरीत परिस्थितियों में व्यतीत हुआ किन्तु धर्म उनकी आत्मा का सारथी होने के कारण वह कभी भी धर्म पतीत नहीं हुई। उनके शासन करने की नीति आज के युग में धारण करने योग्य है। उनके कार्यों में स्वराज्य के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र मानकर जीवन-पर्यन्त धर्मादि कार्यों को सम्पन्न करती रहीं। उन्होंने राज्य में शासक और प्रजा के मध्य सदा ही संतुलन बनाए रखा। उन्होंने स्वयं को राज्य की शासिका न मानकर ईश्वर के द्वारा नियुक्त संरक्षिका ही माना। मानव हितार्थ कार्यों के साथ ही पर्यावरणीय प्रकृति के संतुलन का भी विशेष ध्यान रखा गया। वह धर्म और अर्थ पुरुषार्थ में निपुण शासिका रही। इतिहास ऐसी महान आत्मा को सदा अपने मुकुट में विराजित करता रहेगा।

संदर्भ

1. चंद्रशेखर, प्रो. ममता. (2024). *युगंधरा अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 143.
2. भट्ट, पं. रामेश्वर (भाषान्तर). (1894). *हितोपदेशः 1.70* (श्री नारायण राम आचार्य, संपादक). दिल्ली: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, पृ. 36.

3. जोशी, गोविंदराम केशवराम. (1916). *अहिल्याबाई होल्कर* (श्यामसंदर दास, संपादक). [Publisher location not specified]: काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मनोरंजन पुस्तकमाला-35, पृ. 02.

4. पाण्डेय, राजेन्द्र. (n.d.). *वीरांगना अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: डायमंड बुक्स, पृ. 38.

5. महाजन, सुमित्रा. (2024). *मातोश्री*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 34.

6. कुमार, नरेन्द्र. (2023). *लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर साम्राज्ञी या संत*. नई दिल्ली: अध्ययन बुक प्रकाशन, पृ. 24.

7. कुमार, नरेन्द्र. (2023). *लोकमाता अहिल्याबाई होल्कर साम्राज्ञी या संत*. नई दिल्ली: अध्ययन बुक प्रकाशन, पृ. 27.

8. नागतोडे, डॉ. किरण. (2024). *कर्मयोगिनी अहिल्याबाई होल्कर* (विनयकुमार वासनिक, अनुवादक). वर्धा: सुधीर प्रकाशन, पृ. 47.

9. गौड़, श्री गणेशदत्ति शर्मा. (1935). *यशवन्तराव होल्कर*. दिल्ली: साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ. 21.

10. जोशी, गोविंदराम केशवराम. (1916). *अहिल्याबाई होल्कर* (श्यामसंदर दास, संपादक). काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मनोरंजन पुस्तकमाला-35, पृ. 103.

11. चंदेल, अरुंधती सिंह. (2024). *शिवकामिनी महादेवी अहिल्याबाई*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 92.

12. महेश्वरी, निखिलेश. (2025). *राष्ट्रसेविका माँ अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 20.

13. चंद्रशेखर, प्रो. ममता. (2024). *युगंधरा अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 134.

14. महेश्वरी, निखिलेश. (2025). *राष्ट्रसेविका माँ अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 135.

15. जावलेकर, अरविंद. (2024). *लोकमाता अहिल्याबाई*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 103.

16. जावलेकर, अरविंद. (2024). *लोकमाता अहिल्याबाई*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 92.

17. महेश्वरी, निखिलेश. (2025). *राष्ट्रसेविका माँ अहिल्याबाई होल्कर*. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन, पृ. 19.

18. जोशी, गोविंदराम केशवराम. (1916). *अहिल्याबाई होल्कर* (श्यामसंदर दास, संपादक). काशी नागरी प्रचारिणी सभा, मनोरंजन पुस्तकमाला-35, पृ. 83.

NOTES FOR AUTHORS

SHODH KHANIJ: A Multidisciplinary Peer Reviewed Journal

1. Submissions

Authors should send all submissions and resubmissions to **shodhkhanij@muditeducation.com** some articles are dealt with by the editor immediately, but most are read by outside referees. For submissions that are sent to referees, we try to complete the evaluation process within one month. Generally, Shodh Khanij operates a double-blind peer review process in which the reviewer's name is withheld from the author and the author's name is withheld from the reviewer. Reviewers may at their own discretion opt to reveal their name to the author in their review, but our standard policy is for both identities to remain concealed.

Absolute technical requirements in the first round are: ample line spacing throughout (1.15), abstract, adequate documentation using the author-date citation system and an alphabetical reference list and a word count on the front page (including all elements in the word count). Regular articles are restricted to an absolute maximum of 8,000 words, including all elements (title page, abstract, notes, references, tables, biographical statement, etc.).

2. Types of articles

In addition to Regular Articles, Shodh Khanij publishes the Viewpoint column with research-based policy articles, Review Essays, Book Review and Special Data Features.

3. The manuscript

The final version of the manuscript should contain, in this order:

(a) title page with name(s) of the author(s), affiliation

(b) Abstract

(c) Main text

(d) List of references

(e) Biographical statement(s)

(f) Tables and figures in separate documents

(g) Notes (either footnotes or endnotes are acceptable)

Authors must check the final version of their manuscripts against these notes before sending it to us.

The text should be left justified, with an ample left margin. Avoid hyphenation. Throughout the manuscripts, set line spacing to 1.15.

The final manuscript should be submitted in Kokila Hindi Unicode Font MS Word for Windows.

4. Language

Shodh Khanij is a Bilingual Journal, i.e. English and हिंदी (Kokila Hindi Unicode Font Size 14). The main objective of an academic journal is to communicate clearly with an international audience.

Elegance in style is a secondary aim: the basic criterion should be clarity of expression. We allow UK as well as US spelling, as long as there is consistency within the article. You are welcome to indicate on the front page whether you prefer UK or US spelling.

5. The abstract

The abstract should be in the range of 200-300 words. For very short articles, a shorter abstract may suffice. The abstract is an important part of the article. It should summarize the actual content of the article; rather than merely relate what subject the article deals with. It is more important to state an interesting finding than to detail the kind of data used: instead of 'the hypothesis was tested', the outcome of the test should be stated. Abstracts should be written

in the present tense and in the third person (This article deals with...) or passive (... is discussed and rejected). Please consider carefully what terms to include in order increasing the visibility of the abstract in electronic searches.

6. Title and headings

The main title of the article should appear at the top of pg. 1, followed by the author's name an institutional affiliation. The title should be short, but informative. All sections of the article (including the introduction) should have principal subheads. The sections are not numbered. This makes it all the more important to distinguish between levels of subheads in the manuscripts – preferably by typographical means.

7. Notes

Notes should be used only where substantive information is conveyed to the reader. Mere literature references should normally not necessitate separate notes; see the section on references below. Notes are numbered with Arabic numerals. Authors should insert notes by using the footnote/endnote function in MS Word.

8. Tables

Each Table should be self-explanatory as far as possible. The heading should be brief, but additional explanatory material may be added in notes which will appear immediately below the Table. Such notes should be clearly set off from the rest of the text. The table should be numbered with a Roman numeral and printed on a separate page.

9. Figures

The same comments apply, except that Figures are numbered with Arabic numerals. Figure headings are also placed below the Figure. Example: Figure 1.

10. References

References should be in a separate alphabetical list; they should not be incorporated in the notes. Use the APA form of reference.

11. Biographical statement

The bio sketch in Shodh Khanij appears immediately after the references. It should be brief and include year of birth, highest academic degree, year achieved, where obtained, position and current institutional affiliation. In addition, authors may indicate their present main research interest or recent (co-)authored or edited books as well as other institutional affiliations which have occupied a major portion of their professional lives. But we are not asking for a complete CV.

12. Proofs and reprints

Author's proofs will be e-mailed directly from the publishers, in pdf format. If the article is co-authored, the proof will normally be sent to the author who submitted the manuscripts. (Corresponding author). If the e-mail address of the corresponding author is likely to change within the next 6–9 months, it is in the author's own interest (as well as ours) to inform us: editor's queries, proofs and pdf reprints will be sent to this e-mail address. All authors (corresponding authors and their co-authors) will receive one PDF copy of their article by email.

13. Copyright

The responsibility for not violating copyright in the quotations of a published article rests with the author(s). It is not necessary to obtain permission for a brief quote from an academic article or book. However, with a long quote or a Figure or a Table, written permission must be obtained. The author must consult the original source to find out whether the copyright is held by the author, the journal or the publisher, and contact the appropriate person or institution. In the event that reprinting requires a fee, we must have written confirmation that the author is prepared to cover the expense. With literary quotations, conditions are much stricter. Even a single verse from a poem may require permission.

MUDIT PUBLICATIONS

ISBN Book & Journals

8329165709

A Multidisciplinary Peer-Reviewed Journal

यू.जी.सी. के नवीन दिशा-निर्देशों के अनुरूप प्रकाशित

SHODH KHANIJ

Impact Factor: 6.875 ISSN: 2394-0654

EDITOR: Dr. Amrit Kumar

CO-EDITOR: Dr. Pankaj K Singh

PADCHINHA

Impact Factor: 8 ISSN: 2231-1351

EDITOR: Dr. Ajay Parmar

CO-EDITOR : Dr. Pankaj K Singh

www.muditeducation.com info@muditeducation.com

स्वामित्व, प्रकाशक: अमृत कुमार, एल 1, ए 19, मोहन गार्डन, उत्तम नगर दिल्ली द्वारा प्रकाशित

और मुद्रक: मुदित शिक्षा संस्था, वर्धा.

प्रधान संपादक : डॉ. अमृत कुमार एवं सह-संपादक : डॉ. पंकज कुमार सिंह

Contact: 9823696685 shodhkhanij@muditeducation.com